नाममात्र भूमि है। इन खेत-मजदूरोंकी संख्या इतनी अधिक होते हुए भी संगठनके अभावसे इनकी अवस्था अत्यन्त शोचनीय है। आज गाँव सुधारके लिए खेत-मजदूर-वर्गकी समस्या बहुत जटिल है और जब तक इनके लिए कामका प्रबन्ध नहीं होगा, न्यूनतम मजदूरी कानूनकी व्यवस्था नहीं होगी तब तक गाँव सुधारका एक बड़ा भारी दायित्व हमारे ऊपर लगा रहेगा। हमारे देशकी अधिक से अधिक स्त्रियां सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक जीवनमें हाथ नहीं बंटा सकती हैं। एक तो उनमें इतनी योग्यता ही नहीं और दूसरे, वातावरण भी उन्हें आगे नहीं बढ़ने देता। इस देशकी स्त्रियोंमें शिक्षा का अभाव है, स्वास्थ्यकी कमी है; जिनकी दृष्टिमें आधुनिकताकी छाप तक नहीं है वे किस प्रकारसे भविष्यके नागरिकोंको उपयुक्त बना सकती हैं? इस लिए स्त्रियोंकी सामाजिक मर्यादा बढ़ानेकी विशेष आवश्यकता है ताकि वे भी विभिन्न समस्याओंको समझ सकें, इनपर ध्यान दे सकें, और हर तरहके पुरुषोंके साथ सहयोग कर सकें। इसके साथ ही साथ शिक्षाका विस्तार तथा सामाजिक सुधारकी विशेष आवश्यकता है।

भारतकी कृषि-समस्यायें और उनका सुधार

अतीत कालमें हमारी आर्थिक स्थिति जैसी भी क्यों न रही हो वर्तमान समय में हमारी जनसंख्या का तीन-चौथाई भाग एक मात्र इसी उद्योगपर ही निर्भर करता है तथा ९०% जनता गाँवोंमें ही रहती है। हमारे आर्थिक जीवन में कृषि इतनी महत्वपूर्ण होते हुए भी यह समस्याओं से भरी हुई है। हमारी कृषि-समस्या बहुमुखी है। अति प्राचीन कालसे जिस रीतिसे खेतीका

सूचीपत्र

सीमित न रहेगा बल्कि भारतीय युक्तराष्ट्र से सम्बन्धित देशीय राज्य में भी उद्योग-धन्धों को आर्थिक मदद देने की योग्यता इसमें रहेगी (२) यह मदद सिर्फ सार्वजनिक परिमित दायित्व कम्पनियों को तथा सहकारी समितियों को प्राप्त होगी। (३) इस संस्था की रकम १० करोड़ रुपयेकी होगी जिसमें ५ करोड़ रुपये कीमतकी शेयरें अभी-अभी जारी की जायेंगी एवं अवशिष्ट बादमें केन्द्रिय सरकार की अनुमति लेकर आवश्यकतानुसार जारी की जायेंगी। (४) इस संस्थाकी शेयरें किसी व्यक्ति को नहीं दी जायेंगी। (५) पूँजी तथा निर्दिष्ट लाभांश देनेकी जिम्मेदारी केन्द्रिय सरकार पर रहेगी। (६) संस्थाका सारा प्रबन्ध एक बोर्डपर रहेगा जिसमें १२ पदाधिकारी रहेंगे। इनमें से ६ केन्द्रिय सरकार तथा रिजर्व बैंक के द्वारा मनोनीत होंगे तथा अवशिष्ट ६ दूसरे शेयरधारियों के प्रतिनिधि होंगे। (७) यह संस्था अपनी प्राप्त हिस्सा पूंजी तथा संचित अधिकोष से ५ गुणा अधिक रकम कर्ज ले सकेगी तथा जनसाधारणसे भी यह ५ सालकी स्थायी अमानत लेगी। (८) यह संस्था उद्योग-धन्धोंको जो कर्ज देगी वह भारतीय रुपया या दूसरे किसी देश का सिक्का हो सकेगा। १ साल में यह संस्था ३ करोड़ रुपया कर्ज मंजूर की है/जिसमें १ करोड़ रुपया सन १९४९ के जून महीने तक दे दिया गया एवं अवशिष्ट हिस्सा दिया जा रहा है। सर्वोच्च कर्ज का परिमाण ४० लाख रुपया है एवं सर्वनिम्न कर्ज का परिमाण २ लाख रुपया है। २५ कम्पनियों को इससे फायदा पहुँचा है जिनमें अधिक से अधिक कम्पनियाँ सिमेंट तथा कपड़े की पैदावार से सम्बन्धित हैं। संस्था के दफ्तर कलकत्ता तथा बम्बई में स्थापित किये गये हैं एवं और दफ्तर मद्रास तथा कानपुर में स्थापित किये जानेवाले हैं। इसे १ साल में २८५५०७ रुपया मुनाफा हुआ है एवं ३½% लाभांश दिया गया है।

विदेशी पूँजीकी महत्ता—विदेशी पूंजी भारतके उद्योग-धन्धोंमें विशेषतः रेल, कोयले, चाय, पाट इत्यादि उद्योगों में अधिक मात्रा में लगी हुई है।

निबन्धावली :	पृष्ठ-संख्या

विदेशी पूंजी की आवश्यकता—हमारी वर्त्तमान आर्थिक स्थितिसे स्पष्ट सिद्ध होता है कि देशमें संचय का परिमाण संतोषजनक नहीं है। पूंजी-बाजार की स्थिति आज इतनी बिगड़ गई है कि सरकारी ऋणपत्र भी अधिक नहीं खरीदे जाते। हमारी भविष्य आर्थिक योजना में यन्त्रों तथा विदेशी कलाविदों की आवश्यकता होगी। विदेशी पूंजी के बारे में सरकार की नवीन नीति निम्न प्रकार है :—(१) वर्त्तमान उद्योग-धन्धों में लगी हुई विदेशी पूंजी पर—जोकि सरकार की औद्योगीक नीति से सहयोग रखती है—सरकार कोई भी ऐसी शर्त नहीं लगायेगी जो भारतीय उद्योगों पर लागू न हो ; (२) विदेशी पूंजी देशमें लाभ कमा सकेगी और साधारणतः विदेश को लाभ भेजने पर कोई रोक नहीं लगायी जायेगी परन्तु विदेशी विनिमय की कठिनाइयों को ध्यानमें रखकर ही इस प्रकार की सुविधा दी जा सकेगी ; (३) साधारणतः उद्योग-धन्धों के स्वामित्व और प्रबन्ध में भारतीय नागरिकों का मुख्य हाथ होगा और विशेष अवस्था में सरकार किसी भी उद्योग को हस्तान्तरित या नियन्त्रित कर सकती है ; यदि आवश्यक योग्यताके भारतीय श्रमिक न मिले तो विदेशी कारखाने विदेशियोंको नौकरी दे सकते हैं, परन्तु, साथ ही साथ ऐसे कामोंके लिये इन कारखानाओंको कुशल भारतीय कलाविद और श्रमिक तैयार करने होंगे; (४) भारतीय उद्योग-धन्धों को उत्साहित करना सरकारकी नीति है लेकिन आज भी और भविष्यमें भी देशके औद्योगीकरणमें विदेशी पूंजीके लिये बहुत बड़ा क्षेत्र रहेगा। सरकार की नवीन नीतिके बारेमें अर्थ-संदेशने लिखा है:— विदेशी और भारतीय पूंजीमें किसी प्रकारका भेद-भाव नहीं किया जायेगा यह आश्वासन बहुत महत्वपूर्ण है क्योंकि अब तक औद्योगिक क्षेत्रोंकी यह जोरदार मांग रही है कि भारतीय पूंजीके विकाशके लिये विदेशी पूंजी पर कड़ी शर्तें लगानी आवश्यक है। उस वक्तव्यने सदाके लिये इस मांगको समाप्त कर दिया है। दूसरा भय विदेशी पूंजीकी राष्ट्रीयकरणका बना हुआ था। सरकारने स्पष्ट घोषित

गाँधीवादी अर्थशास्त्रकी रूपरेखा

भारतीय अर्थ व्यवस्थामें गांधीवादी अर्थशास्त्रकी उपयोगिता—अविभक्त भारतकी ३९ करोड़ जनसंख्यामें ग्रामीणोंकी संख्या ३४ करोड़ है। (ग्रामीणोंकी सामाजिक तथा आर्थिक दुरवस्थाका कारण—भारतकी कृषि समस्याएं तथा गृह-उद्योगकी कमी—गाँव सुधारके सम्बन्धमें निबन्ध देखिये।)

स्वाभाविक तथा शाश्वत अर्थशास्त्रकी रूपरेखा—(क) शोषण तथा आर्थिक विषमताका अभाव,—(ख) उत्पादन रीतिका सरल व सीधी होना,—(ग) जीवनमें उच्चता होना एवं उसमें आवश्यकताओंकी इतनी प्रचुरताका न होना कि रहन सहनका सारा ढाँचा कृत्रिम व परनिर्भर हो जाए,—(घ) उत्पादन, वितरण, व्यापार तथा उपभोगका इस प्रकार नियन्त्रित होना कि क्रय विक्रयकी शक्ति अधिक केन्द्रित न होने पावे—"जब तक हमारी प्रधान आवश्यकताओंकी पूर्ति बिना किसी अन्यके अधिकारोंपर आघात किये न कर सकें तबतक अहिंसाका कोई प्रयोजन नहीं रहता।" (श्रीकुमारप्पाजी) स्वाभाविक अर्थव्यवस्थामें प्रधान आवश्यकताओंकी पूर्त्ति अवश्य होती है जिससे हमारा शरीर सतत स्वस्थ सजीव एवं कार्यक्षम रहे। इसी दृष्टिसे गांधीवादी अर्थव्यवस्थामें खादी तथा गृह-उद्योगका स्थान है।

गांधीवादी अर्थशास्त्रकी मौलिकता—अर्थशास्त्र जनताके जीवनकास्तर ऊँचा करना चाहता है लेकिन वास्तवमें पूंजीवादी अर्थशास्त्रमें अर्थ ही मुख्य स्थान पर आ जाता है, जनताका जीवनस्तर नहीं। गांधीजी

उत्पादन व्यय को घटाने की भी आवश्यकता है। इससे प्रत्येक देश आर्थिक दृष्टि से स्वतन्त्र बन जायेगें। कुछ दिन पहले बृटिश साम्राज्य के अर्थ-सचिवों का जो जलसा लन्दनमें हुआ था उसमें यह निश्चय किया गया कि साम्राज्य के विभिन्न देश प्रतिशत २५ हिस्सा कम सामग्रियां डालर सम्बन्धित देशों से खरीदेगें। हाल में स्टर्लिंग, रुपया आदि कई सिक्कों की विनिमय कीमत घटाई गई है ताकि इन सब देशों का निर्यात व्यापार उत्पादित हो सके। (रुपये का मूल्यह्रास विषयक निबन्ध देखिए)

संरक्षणनीति, शिल्प तथा व्यापार

प्रथम महायुद्ध के पहले भारत सरकार की किसी भी प्रकार की शिल्प संरक्षण नीति नहीं थी। सरकार कभी कभी आयात वाणिज्य पर शुल्क लगाती थी लेकिन वह सिर्फ सरकारी आमदनी बढ़ाने के लिये, उद्योग-धन्धों को संरक्षित करने के लिये नहीं। बृटिश सरकार की तरह सन् १८८२ से लगाकर इस समय तक भारत सरकार की नीति अबाध वाणिज्य की नीति थी। प्रथम महायुद्धके प्रभाव से भारतीय उद्योग-धन्धे कुछ हदतक उत्पादित हुए। सन् १९१९ की भारत शासन विषयक कानून बनाने के लिए कायम की हुई सम्मिलित संस्था ने यह सलाह दी कि शिल्पसंरक्षण के बारे में भारतीय स्वतन्त्रता को मान लेनी चाहिये। इस सलाह के अनुसार सन् १९२२ में एक फिसकल कमीशन नियुक्त हुई। इस कमीशन ने उद्योग-धन्धों को संरक्षित करने के प्रश्न पर गंभीर ध्यान दिया और इसके पक्ष तथा विपक्षकी बातों का पूरा विश्लेषण किया। अन्त में उसका निष्कर्ष यह रहा कि

वास्तवमें अर्थको जनकल्याणका साधन बनाना चाहते थे—"मेरी राय यह है कि बड़े पैमानेपर उद्योगधन्धे दुर्नीतिका स्थान बन जाते हैं। समाजवाद कितना ही शक्तिशाली क्यों न हो, इसको जड़मूलसे उखाड़नेकी शक्ति इसमें नहीं है।" राष्ट्र-नियन्त्रित समाजवाद व्यक्तित्वके विकासके प्रतिकूल है। इसलिए गांधीवादी अर्थशास्त्रमें विकेन्द्रित अर्थव्यवस्थाका समर्थन किया गया है, कारण कि विकेन्द्रित अर्थव्यवस्था व्यक्तित्वके विकासका सहायक है।

गांधीवादी अर्थव्यवस्थामें व्यक्तिका स्थान—अर्थव्यवस्थाके साथ व्यक्तित्वके विकासका गहरा सम्बन्ध है। व्यक्तित्वके विकासका सम्बन्ध अभावकी अधिक अनुभूतिसे नहीं है। उन्नत जीवनस्तरका लक्ष्य भौतिक सम्पत्तिका बाहुल्य नहीं है। गुणात्मक दृष्टिसे व्यक्तिके जीवनका विचार करना चाहिए। "हम तो यही कहेंगे कि गांधीजीके जीवनका मापदण्ड अधिक ऊँचा था क्योंकि उनके जीवनमें उदार, मानवी गुणोंकी सम्पन्नता थी और उनकी भौतिक आवश्यकताएं सरलतासे भरी हुई थीं जबकि (गुणात्मक दृष्टि से) ब्रिटिश टॉमीका जीवन-प्रमाप निम्नकोटीका तथा इयत्तात्मक दृष्टिसे जटिलताके दोषों से परिपूर्ण है अतएव हम अपने राष्ट्रको जो जीवन-स्तर देना चाहते हैं वह सरलताकी दृष्टिसे उन्नत होगा" (कुमारप्पाजी)

गांधीवादी अर्थव्यवस्था में समाज—समाजको जीवनोपयोगी सामग्रियां देना गांधीवादी-योजनाका लक्ष्य है। साथही साथ सारी जनताके लिए पूर्ण विनियोग का प्रबन्ध होना चाहिए, धन वितरण धनोत्पादनकी विधिके अनुकूल होना चाहिए ताकि समाजमें एक ओर विपुल धन संचय और दूसरी ओर शोचनीय-निर्धनता न दिखाई पड़े इसके लिए उत्पादन का ऐसा प्रबन्ध होना चाहिए जिसमें हमारे श्रमके अनन्त साधनोंका पूर्ण उपयोग हो सके।

गांधीजीकी दृष्टिमें स्वतन्त्र भारतका आर्थिक संगठन—आर्थिक दृष्टिसे स्व-राज्य—गांधीजीका कहना है कि यदि हम अपनी पहुंचके भीतरके

जहाज निर्माण शिल्प—प्राचीन कालमें भारतीय जहाज निर्माण शिल्प विशेष महत्वपूर्ण था। पाश्चात्य देशोंमें औद्योगिक क्रान्ति आनेके पहले ईस्ट इंडिया कम्पनी भारत में बनी हुई जहाजोंसे काम लेती थी। लेकिन जबसे पाश्चात्य देशोंमें वैज्ञानिक उन्नतिके कारण यातायात साधनोंमें गम्भीर परिवर्तन हुआ एवं लोहा तथा इस्पातसे जहाजें बनने लगीं तबसे भारतीय जहाज निर्माण शिल्प में हानि पहुंचने लगी कारण, राजनैतिक अवस्था के कारण भारत वैज्ञानिक उत्कर्षके साथ अपनी आर्थिक स्थितिको बदल नहीं सका। इस समयमें भारत में बनी हुई सामग्रियां विदेशी जहाजों पर लद कर बाहर जाती हैं और इससे हमारे व्यापारियोंको काफी नुकसान पहुंचता है। हमारा विदेशी व्यापार बहुत बढ़ा चढ़ा है; सन १९३९ में भी इसकी कीमत ४२९०४६ करोड़ रुपये थी। इसका प्रतिशत ४ हिस्सा मात्र भारतीय जहाजोंमें भेजा या मंगवाया जाता था। समुद्रतटीय व्यापारमें भी विदेशी जहाज कम्पनियोंका प्रभुत्व बहुत दिन तक कायम था जिससे कि सन १९३९ में इसका प्रतिशत २१ या २२ हिस्सा मात्र भारतीय कम्पनियों के हाथमें था।

भारतीय जनमत अनेक दिनोंसे भारतमें जहाज-निर्माण शिल्प कायम करनेके पक्षमें सलाह देता आ रहा है। कभी-कभी यहाँ तक भी कहा गया है कि समुद्रतटीय व्यापारको पूरी तौरसे भारतीय कम्पनियोंके लिये संरक्षित किया जाय। पहली लड़ाईके बाद भारतीय जनमतकी (काफी) इतनी महत्वपूर्ण थी कि सरकार उसे उपेक्षा न कर सकी तथा इसकी उपयोगिताके बारेमें निर्णय करनेके लिये सन् १९२२ में एक कमेटी भी कायम की गई। इस कमेटीकी सलाह निम्नप्रकार थी :—इंडियन मर्केन्टाइल मरीनमें जहाज सम्बन्धी शिक्षाका प्रबन्ध किया जाय तथा समुद्रतटीय व्यापारके नियुक्त जहाजोंमें भारतीयोंके शिक्षाका प्रबन्ध किया जाय; समुद्रतटीय व्यापार भारतीय या भारतमें बनी हुई कम्पनियों के लिए संरक्षित किया जाय; पर-देशीय व्यापारमें हिस्सा लेनेवाली कम्पनियोंको आर्थिक सहायता दी जाय तथा

साधनों से ही अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करने लग जायें तो उन आवश्यक पदार्थों का पर्यवेक्षण हमारे लिए सुगम हो जायेगा। आर्थिक स्व-राज्य तथा खादी—हाथसे कपड़ा उत्पन्न करनेका महत्व हम इस सिद्धान्त पर मानेंगे कि जीवनके लिए प्रारम्भिक आवश्यकताओं को पूरी करनेवाली वस्तुएँ विकेन्द्रित उद्योगों द्वारा पैदा की जा सकें तो अच्छा है। गांधीजीकी व्यक्तिवादी दृष्टि में राष्ट्रीय हस्तक्षेप का सुयोग सबसे कम है और इसलिए भारतीय आर्थिक संगठनको ग्रामकेन्द्रिक बनानेकी आवश्यकता है।

गांधीवादी अर्थशास्त्रमें राष्ट्रचालित पुँजीवाद तथा समाजवादकी तीव्र समालोचना—गांधीजी व्यक्तित्वका विकास चाहते थे, व्यक्तिचालित पूंजीवादका नहीं। व्यक्तित्वके विकास के लिए तथा बेकारी को रोकनेके लिए वे यान्त्रिक उद्योग-धन्धोंको नहीं चाहते थे। उनका कहना था कि जब आवश्यक कार्यके लिए श्रमिकोंकी संख्या कम है तब यन्त्रोंपकरणों को निःसन्देह काममें लाना चाहिए लेकिन जब कार्य के अनुपातसे कार्य निर्वाह करनेवालों की अधिक संख्या है जैसे कि भारतमें, तब यन्त्रोंपकरणोंका प्रयोग बहुतही हानिकारक होगा। यन्त्रोंपकरणों द्वारा अल्पसंख्यक मनुष्योंका जीवन-स्तर ऊँचा हो सकता है एवं उनके लिये आरामका प्रबन्ध भी हो सकता है लेकिन यदि देशकी विराट जनसंख्याके लिए पूर्णविनियोगका प्रबन्ध करना हो तो यंन्त्रोंपकरणोंका प्रयोग सीमित करना पड़ेगा, विकेन्द्रित उद्योग-धन्धे स्थापित करने होंगे एवं छोटे पैमाने पर खेतीका काम शुरू करना होगा। समाजवादी व्यवस्थामें भी ठीक इसी कारणसे यन्त्रोपकरणोंका प्रयोग सीमित रखना होगा। यान्त्रिक सभ्यताके विरुद्धमें गांधीजी का कहना है कि इसमें एक ओर तो धन वितरणकी विषमता आती है, बेकारियां फैलती हैं एवं व्यापारिक संकट बार बार आता रहता है एवं दूसरी ओर व्यक्तिगत जीवन तथा समाजगत जीवन पर इसका असर बहुतही क्षतिकारक होता है। बालशेभिज़म या उग्र साम्यवादके विरुद्धमें गांधीजीका कहना है

कि यह दीर्घ-स्थायी नहीं हो सकता तथा अपने आदर्शमें अटल भी नहीं रह सकता। मेरा तो यह निश्चित विश्वास है कि हिंसाके आधारपर किसी मुख्य आदर्शका संस्थापन नहीं हो सकता।

ग्रामकेन्द्रित गांधीवादी अर्थव्यवस्था और अ-राष्ट्रवाद—अ-राष्ट्रवादियों की तरह गांधीजीका आदर्श भी स्व-राज्य है यानी व्यक्ति-प्रधान राज्य है और यह व्यक्तित्व के पूर्ण विकास होने पर ही सम्भव हो सकता है। गांधीवादी अर्थ-व्यवस्था में उपनिधि-वाद-तत्व यानी ट्रस्टीशीपतत्व—धन वितरणकी विषमता को हटानेके लिए क्रान्तिकारी समाजवादकी आवश्यकता नहीं हैं; व्यक्ति समाजकी सम्पतिका उपनिधि या ट्रस्टी है एवं व्यक्तित्वके विकास होने पर वह इस सम्पति को अपने आप जनकल्याणमें लगा देगा।

गांधीवादी अर्थशास्त्र और विदेशी व्यापार—गांधीजीका कहना है कि हमें आवश्यक वस्तुओंके लिए विदेशियों पर निर्भर नहीं रहना चाहिए और न नित्य प्रतिकी आवश्यक वस्तुओंमें विदेशी व्यापारको कोई स्थान ही रहना चाहिए; विदेशी व्यापारको पूर्णतया उन्हीं वस्तुओं तक सीमित रखना चाहिए जिनकी हमें आवश्यकता नहीं रह जाती। इस प्रकारका अतिरिक्त वस्तुओं पर आश्रित विदेशी व्यापार कभी भी युद्धका कारण नहीं बन सकता। विदेशसे आवश्यक वस्तुओंका क्रय निश्चय ही विदेशियोंको अपने देश पर आधिपत्य करनेके लिए निमंत्रण है—विदेशी आधिपत्यसे साम्राज्यवाद आता है तथा पूंजीवादी लड़ाइयाँ होती रहती है। उद्योग-धन्धों पर आश्रित देश पिछड़े हुए देशोंको कब्जेमें रखना चाहते हैं ताकि उन्हें सस्ता कच्चामाल मिलता रहे तथा उनकी शिल्पजात सामग्रियोंका बाजार बना रहे लेकिन जब एकाधिक देश पूँजीवादी उद्योग-धन्धों पर आश्रित हो जाते हैं तब साम्राज्य तथा बाजारके लिए लड़ाइयाँ शुरु हो जाती हैं यानी युद्ध एक आर्थिक वस्तु है। "जहाँ मृत शरीर होगा वहां गृद्ध भी होंगे ही। गृद्धोंसे मुक्ति पानेका सर्वोत्कृष्ट मार्ग तो मृत शरीरको गाड़ देनेमें है।

विदेशी वस्तुओं द्वारा आवश्यकताओंकी पूर्त्ति ऐसाही मृत शरीरका द्योतक है।"

गांधीवादी मज़दूर नीति—गांधीवादमें वर्ग-संघर्षका स्थान नहीं है एवं यह ट्रष्टीशिपके आधारपर प्रतिष्ठित है। श्रमिकोमें बेकारी रोकनेके लिए गांधीजी मशीनके यथोचित नियंत्रण पर जोर देते थे। गांधीवादी अर्थ-व्यवस्थाका लक्ष्य उत्पत्तिके साधनोंका पूर्ण विकेन्द्रीकरण है जिससे काम करने वाला अपने उत्पादनका स्वयं ही मालिक बन सके—"आज मजदूरों के सामने एक ही ध्येय है, मीलोंके स्वामित्वमें तथा-कथित मालिकोंके साथ बराबरी का हिस्सा प्राप्त करना। जिस तरह पूंजी धन है उसी तरह मेहनत भी धन है। मीलों पर इन दोनों धनपतियोंका स्वामित्व होना चाहिए"। (महादेव देशाई) गांधीवादी आर्थिक योजनामें श्रमिकके अधिकार :—(१) निर्वाह योग्य मज़दूरी, (२) काम करनेकी आरामप्रद सूरतें, (३) सीमित घन्टे, (४) झगड़ोंके समझौतेके लिए उपयुक्त व्यवस्था।

गांधीवादी अर्थव्यवस्थामें पूर्णविनियोग—पूंजीवादी तथा समाजवादी अर्थ-व्यवस्था बेकारीको रोक नहीं सकती और न आर्थिक योजनाके द्वारा ही पूर्णविनियोगका प्रबन्ध हो सकता। गांधीजीने भारतके आर्थिक आयो-जनमें पूर्णविनियोगकी नीति पर बहुत अधिक जोर दिया। "बेरोज़गारीकी सबसे बड़ी बुराई भौतिक नही, नैतिक है। इससे जो आवश्यकता उत्पन्न होती है वह नहीं, परन्तु यह जो नफरत और डर पैदा करती है वह और भी बुरी चीज़ है"। विकेन्द्रित अर्थव्यवस्था के द्वारा पूर्णविनियोग का प्रबन्ध हो सकता है और इसीसे व्यापार चक्र को रोका जा सकता है।

गांधीवादी अर्थव्यवस्था को कायम करनेका एक मात्र उपाय उनका रचनात्मक कार्यक्रम है।

विभाजनका आर्थिक आधार

राजनैतिक कारणोंसे भारत आज हिन्दुस्तान तथा पाकिस्तानमें विभक्त हो चुका है। इसका फल देशके लिये शुभ या अशुभ होगा, जनकल्याण के अनुकूल या प्रतिकूल होगा इस बातका निर्णय अभी नहीं किया जा सकता लेकिन साधारण तौरपर कहा जा सकता है कि वर्त्तमान अन्तर्राष्ट्रीय स्थितिमें प्रत्येक देशको आर्थिक-शक्ति तथा जन-शक्तिकी विशेष आवश्यकता है। इन दोनोंमें एकका अभाव होनेसे ही वह देश निःसन्देह शक्तिहीन हो जावेगा। हमारे जिन अर्थशास्त्रियोंने पाकिस्तानकी आर्थिक उन्नति की सम्भावनाका समर्थन किया है उन्होंने साथ ही साथ यह भी कहा है कि भारत तथा पाकिस्तानमें पूर्ण आर्थिक सहयोगकी आवश्यकता है, इन दोनों देशोंकी अर्थ-व्यवस्था बीते हुए दो सौ वर्षोंसे जिस तरहसे विकसित हो रही है उसमें विभिन्न प्रान्तोंका आर्थिक सम्बन्ध बहुत ही गम्भीर तथा अविच्छिन्न रहा है। इस परिस्थितिमें यदि हटात् इन दोनोंको पृथक कर दिया जाय तो दोनोंके लिए ही इसका फल खराब होगा तथा दोनोंके आर्थिक विकाशके रास्तेपर रुकावटें पहुँचेगी। यह बात केवल देशरक्षा तथा आय-व्ययके विषयोंमें ही लागू नहीं है बल्कि आर्थिक विषयोंमें भी। इस संकीर्ण दृष्टिसे भी विभाजनका नतीजा अनिष्टकारक होगा। आधुनिक समयमें यदि आर्थिक जीवनको चारों ओरसे विकसित करना हो तो उसके लिये कृषि तथा उद्योगधन्धोंकी आवश्यकता है। इस दृष्टिसे भी हमारे देशका एक प्रांत दूसरे प्रांतपर अवलम्बित है। पूर्वी बङ्गालकी पाटकी पैदावार पश्चिम बङ्गालके पाट शिल्पमें खपत होती है; पंजाबकी रुईसे बम्बईमें कपड़ा बनाया जाता है। परन्तु विभाजनके कारण ये सब विभिन्न प्रांत एक दूसरेसे पृथक् हो गये हैं। यदि नए तौरसे इन प्रांतोंमें आर्थिक सम्बन्ध स्थापित न किया जाय तो एक ओर पाट तथा रुईकी

खपत न होगी और दूसरी ओर इसके कई कारखाने बन्द हो जायेंगे। पाकिस्तानकी शिल्प-सम्भावना निःसन्देह कम है, कारण कि खनिज सम्पत्ति अधिकसे अधिक पाकिस्तानकी सीमासे बाहर है। जो भी कुछ क्यों न हो देश जब विभक्त हो गया है तब हमें अपनी आर्थिक सम्पत्तिकी जांच करके ही देखना होगा कि हमारी आर्थिक सम्भावना किस प्रकारकी है। इसके बारेमें कुछ आंकड़े नीचे दिये जा रहे हैं :

सम्पत्ति	भारत	पाकिस्तान
(१) कलकारखानोंकी स्थिति :—		
(क) कपड़ेके कारखाने	३८० कारखाने	९ कारखाने
(ख) पाटके ,,	१०८ ,,	—
(ग) चीनीके ,,	१५६ ,,	१० ,,
(घ) लोहा तथा इस्पात के	१८ ,,	—
(ङ) सीमेंटके ,,	१६ ,,	३ ,,
(च) कागजके ,,	१६ ,,	—
(छ) कांचके ,,	७७ ,,	२ ,,
(२) विभिन्न धन्धोंसे आय :—		
	(रुपया)	(रुपया)
(क) खान प्रभृतिसे	६४१४७६२४	२३५४०८८०
(ख) वस्त्र शिल्पसे	४४८६८१४६०	२७२१८२२३
(ग) धातु या धातु पदार्थों से	६५२४४८३५	१८६३३९७४
(घ) गृह निर्माणसे	७८६६७४६२	१९१७३२७३
(ङ) परिवहनसे	१०४६३५४४७२	१८४७४६७२१
(च) राजस्वसे	२०६२११५१९	३८८०७४७२

(३) कृषि तथा खाद्यान्न :—

	भारत		पाकिस्तान	
(क) पाट	९८३५१९	एकड़	१४०३७००	एकड़
(ख) रुई ✓	१३७७००००	„	१६७००००	„
(ग) चाय ✓	६४१२४३	„	९६६५७	„
(घ) चावल ✓	१७२२९०००	टन	५३७६०००	टन
(ङ) गेहूं ✓	४१९९७४०	„	२७८५२६०	„
(च) चीनी ✓	२६३१०००	„	५१७०००	„
(छ) मुंगफली ✓	२२७४०००	„	नाममात्र	

(४) खनिज सम्पत्ति :—

	भारत		पाकिस्तान	
(क) कोयला	२५०७९४०२	टन	१९८४७६	टन
(ख) पेट्रोल	६५९६८९५१	गेलन	२१११३४२०	गेलन
(ग) क्रोमाइट	५११४	टन	२१८९२	टन
(घ) तांबा	२८८०७६	„	—	
(ङ) लोहा	१४२१७०१	„	—	
(च) मेगनीज	७६६३४१	„	—	
(छ) मेगनेसाईट	२३००२	„	—	
(ज) अबरक	१०८८३४	हन्दर	—	

	भारत	पाकिस्तान
(५) रेल रास्ते	२५९७० मील	१४५४२ मील
(६) साधराण रास्ते	२४६६०५ „	४९८६३ „
(७) जलशक्तिकी सम्भावना	१२४३०० किलोवाट	२८४७००० किलोवाट
(८) आयात-निर्यात वाणिज्य	१६५४८००० टन	२४४१००० टन

इनके अतिरिक्त और भी कुछ आवश्यक आंकड़े नीचे दिये जा रहे हैं :—

	भारत	पाकिस्तान
आयतन	१२५०००० वर्गमील	३३०००० वर्गमील
जन संख्या	३३२७८०००	६६१२२०००

शिक्षितोंकी संख्या (प्रतिशत)	९	५·३
जनसंख्याका दबाव (प्रतिवर्ग मील पर)	२५५	२००
जोतने लायक जमीन	१६६७ लाख एकड़	४२७ लाख एकड़
अनाज पैदा करनेवाली ज०	११८१ ,,	३५८ ,,
ऊसर जमीन	६५२ ,,	२९० ,,

ऊपरके आंकड़ेसे यह बात स्पष्ट हो रही है कि पाकिस्तान आर्थिक दृष्टिसे कमजोर नहीं है। निःसन्देह पाकिस्तानकी शिल्पसम्पत्ति तथा शिल्प-सम्भावना कम है लेकिन कृषिसम्पत्ति पाकिस्तानके हाथमें काफी परिमाणमें है। देश विभक्त होनेपर गेहूं पैदा करनेवाली जमीन अधिक से अधिक पाकिस्तान के हिस्सेमें पड़ी है। १९४४-४५ सालके हिसाबके अनुसार वर्त्तमान पाकिस्तानकी ९९ लाख एकड़ जमीन गेहूंकी पैदाके लिये जोती गई थी और इसमें गेहूंकी पैदावार हुई थी ३५ लाख टन। सिन्ध प्रदेश तथा पश्चिमी पंजाबसे वार्षिक १२८ हजार टन चनेका निर्यात होता है। जौ, ज्वार, बाजरा आदिकी पैदावार पाकिस्तानमें बहुत कम होती है। १९४४-४५ सालके हिसाबके अनुसार पाकिस्तानकी १७८७१०० एकड़ जमीनसे २४५५००० टन तिलहन पैदा हुआ था। मूंगफली पाकिस्तानमें बहुत कम होती है, इसकी पैदावारके बारेमें पृथ्वीके विभिन्न देशोंमें भारत ही प्रधान हिस्सा लेता है। १९४६-४७ सालके हिसाबके अनुसार भारत तथा पाकिस्तानके १९८० हजार एकड़ जमीन पाट उत्पन्न करने योग्य है ; इसमें से १३५८८०० एकड़ जमीन अर्थात् प्रतिशत ७२३० हिस्सा जमीन पाकिस्तान के हिस्सेमें आई है। पाकिस्तानमें लगभग १७ लाख गांठ (एक गांठ = ४०० पाउण्ड) रुईकी उपज होती है। लम्बे रेशेवाली रुईकी पैदावार ज्यादा तर पाकिस्तानमें ही होती है। १९४६-४७ सालमें पश्चिमी पंजाबमें ३० करोड़ रुपये तथा सिन्ध प्रदेशमें १५ करोड़ रुपए कीमतकी रुईकी उपज हुई थी।

१९४४ सालके हिसाबके अनुसार पूर्वी पाकिस्तानको ८० हजार एकड़ जमीनसे ४११९ हजार पाउण्ड चाय पैदा हुई थी। १९३८-३९ सालके हिसाबसे ३८०७०० एकड़ जमीनसे १५६३०० टन तम्बाकूकी उपज होती है। जानवर भी पाकिस्तानमें कम नहीं है। सारे देशकी बकरिओं तथा भेड़ोंकी संख्याका प्रतिशत २५, गाय, भैंस आदि जानवरोंके प्रतिशत ३३ एवं घोड़ा, गधा, ऊंट आदि भारवाही जानवरोंके प्रतिशत ५० पाकिस्तानके हिस्सेमें आये हैं। जलशक्ति पैदा करनेका साधन भी पाकिस्तानके हाथमें अच्छा है। संक्षेपमें पाकिस्तानके हाथमें खाद्यपदार्थ, दूध, मांस तथा कच्चा माल पर्याप्त अंशमें हैं। इस परिस्थितिमें भारत तथा पाकिस्तानका आर्थिक सहयोग होना विशेष आवश्यक है। जब तक ये दोनों राष्ट्र एक दूसरेका विश्वास न कर सकेंगे, तब तक ये दोनों आर्थिक सहयोगके द्वारा अपनी योजनाओंको आगे न बढ़ा सकेंगे, जब तक राजनैतिक तथा साम्प्रदायिक जीवनका विच्छेद हमारे आर्थिक जीवनको भी प्रभावित करता रहेगा, तब तक इन दोनोंमें एककी भी आर्थिक उन्नति नहीं होगी।

सारे देशके लिये जो बात लागू है बंगाल तथा पंजाबके लिये भी वही बात लागू है। बंगाल विभक्त होनेपर पश्चिमी बंगालका आयतन २८२१५ वर्गमील यानी संयुक्त बंगालके प्रतिशत ३६.४ हुआ है। इस प्रांतमें जनसंख्या का दबाव पहले बहुत कम था लेकिन पूर्वी बंगालसे बहुत हिन्दू आनेके कारण अभी पश्चिमी बंगालके प्रति वर्गमील जमीनपर औसतने ७१० आदमी बसते हैं। इनमेंसे प्रतिशत लगभग ५० खेतीका काम करते हैं; प्रतिशत १६ उद्योगधन्धोंमें नियुक्त हैं एवं अवशिष्ट लोग दूसरे कामोंसे गुजारा करते हैं। पूर्वी बंगालमें उद्योगधन्धे कम होनेके कारण ज्यादातर लोग खेतीपर ही निर्भर करते हैं; इसलिये शहरोंमें बसनेवालोंकी संख्या पश्चिमी बंगालमें प्रतिशत २२ तथा पूर्वी बंगालमें प्रतिशत ४ है। पश्चिमी बंगालमें कृषि-सम्पत्ति, वर्षा तथा जोतने योग्य जमीन बहुत कम है एवं सिंचाईका प्रबन्ध

भी अच्छा नहीं है। इन सब कारणोंसे पश्चिमी बंगालकी खाद्य-समस्या एक स्थायी समस्या है और जब तक दामोदर तथा मोर घांटी योजनाओंके द्वारा सिंचाईका पूरा प्रबन्ध नहीं होगा तब तक पश्चिमी बंगालकी यह समस्या हल नहीं होगी। पूर्वी बंगालमें जमीन अधिक उर्वरा है, नदीनाला भी बहुत हैं, वर्षा भी काफी होती है तथा जमीन सलाना दो बार जोती जाती है। कर्णफुली नदीपर जब बांध बन जायगी तो पूर्वी पाकिस्तानमें काफी जल-शक्ति उत्पन्न होने लगेगी। विदेशी व्यापारका बड़ा साधन पाट पाकिस्तानके ही हाथमें है तथा चीनी भी वहां काफी होती है। पूर्वी पाकिस्तानकी शिल्पसम्भावना कम है; इस दृष्टिसे पश्चिमी बंगालकी अवस्था कुछ अच्छी है और उद्योगधन्धोंका बड़ा साधन कोयला भी इसीके हाथमें है। ऊपरकी आलोचनासे यह बात स्पष्ट हो रही है कि राजनैतिक तथा साम्प्रदायिक कारणों से भारत विभक्त होनेपर भी आर्थिक दृष्टिसे एक देश दूसरे देशपर पूरी तौरसे निर्भर करता है। हो सकता है कि भविष्यमें ये दोनों देश आर्थिक दृष्टिसे पूर्णतया पृथक हो जायेंगे। भविष्यके बारेमें निश्चित कुछ कहना असम्भव है लेकिन अभीकी परिस्थितिमें यदि वास्तविक आर्थिक सहयोगकी इच्छा इन दोनों देशोंमें न रहे तो यह क्या पाकिस्तान क्या भारत उभय देशोंके लिये ही हानिकारक होगा।

भारतकी जनसमस्या—क्या भारतकी जनसंख्या अधिक है ?

जनसंख्याकी दृष्टिसे चीन देशके बाद भारतका ही स्थान है लेकिन केवल संख्याके द्वारा किसी देशकी जन सम्पत्तिका विचार नहीं हो सकता। यूरोपके विभिन्न देशोंकी जनसंख्या कम होते हुए भी उनमें योग्यताकी कमी

नहीं है और इसी योग्यताके आधारपर ज्ञान-विज्ञान शिल्प-कला प्रभृतिका तथा उनकी संस्कृतिका गहरा प्रभाव अन्यत्र पड़ रहा है।

जनसंख्याकी दृष्टिसे भारतको देश नहीं कहकर महादेश कहना ही उचित होगा। इस देशमें विभिन्न रंग, विभिन्न ढंगके विभिन्न जाति तथा धर्मके, विभिन्न भाषा बोलनेवाले मनुष्य रहते हैं। गुरखा, पठान, सिख, राजपूतोंसे लेकर आर्य, अनार्य, द्राविड़, मंगोल प्रभृति जातियां इस देशमें दिखाई पड़ती हैं। इनमें किसीके साथ प्राचीन आर्योंका सादृश्य है, किसीके साथ मलाया, सुमात्रा तथा मेडागास्करके अधिवासियोंका सादृश्य है और कोई सेमिटिक, मंगोल आदि जातियोंके साथ सम्बन्ध रखनेवाले मालूम पड़ते हैं। इस प्रकारसे देशी-विदेशी, नवीन-प्राचीन रक्त संमिश्रण तथा सहयोगके द्वारा कई एक शताब्दियोंसे भारतकी जनसम्पत्तिकी रचना हो रही है।

किसी भी देशमें जनसंख्याका दबाव उसका भौगोलिक अवस्थान, धनसम्पत्ति तथा जीवनको निरापद रखनेका प्रबन्ध, रहन सहनका स्तर (दर्जा) आर्थिक सम्पत्ति तथा आर्थिक विकास आदिपर निर्भर करता है। देश यदि समृद्धिशाली हो, देशमें यदि काफी आर्थिक सम्पत्ति रहे तथा आर्थिक विकास की यथेष्ट सम्भावना भी रहे तो जनसंख्या जितनी भी क्यों न बढ़े रहन सहनका स्तर नीचा नहीं होगा। प्रति वर्गमील जमीनपर ५ आदमी रहें या ५०० साथ ही साथ अगर आर्थिक विकास चलता रहे तो उनके जीवन पर इसका कुछ भी प्रतिकूल असर नहीं होगा। प्राकृतिक नियमोंके अनुसार जनसंख्याकी वृद्धि भी सीमित है लेकिन इस सीमारेखाके भीतर जब जनसंख्याकी वृद्धिके साथ साथ आर्थिक विकास नहीं होता तभी सभी समस्यायें आ उपस्थित होती हैं। इंगलैंड तथा वेल्समें प्रति वर्गमील जमीनपर ६८५ मनुष्य रहते हुए भी उनके रहन सहनका दर्जा ऊँचा है। हमारे इस देशमें प्रति वर्गमील जमीनपर कुलमें २५५ मनुष्य रहते हैं और

इसीमें ही हमें माल्थसकी प्रेतात्मा दिखाई दे रही है। इंगलैंडमें उद्योगधन्धोंसे क्रांतिकारी उन्नति होनेके कारण जनसंख्याकी द्रुतगतिसे वृद्धि होनेपर भी किसी भी समस्याका प्रादुर्भाव नहीं हुआ। हमारा आर्थिक विकास नाममात्र हुआ है; इसीलिये यदि जनसंख्या कुछ भी बढ़े तो हमारे लिये वह एक विशाल बोझ हो जाती है।

भारतके ज्यादातर अधिवासियोंको खेतीपर निर्भर करना पड़ता है। दूसरे कामोंके अभावके कारण ही ऐसा करना पड़ता है। इस देशमें प्रतिशत ४४ आदमी परिश्रम करते हैं और अवशिष्ट ५६ आदमी इनके परिश्रमपर निर्भर करते हैं। जो लोग परिश्रम करते हैं उनमें प्रतिशत ६६ या उससे भी अधिक आदमी खेती या कच्चे मालके पैदा करनेमें लगे हैं; प्रतिशत लगभग १० आदमी उद्योग-धन्धोंमें स्थान पाते हैं; यातायातका प्रबन्ध एवं खबरोंका आदान-प्रदानके काममें प्रतिशत १॥ आदमी, व्यापारमें ५, सरकारी नौकरीमें २॥, गृहस्थीके कामोंमें ७ तथा दूसरे कामोंमें ६ आदमी नियुक्त हैं। जो लोग उद्योग-धन्धोंमें काम करते हैं वे भी दूसरी दृष्टिसे कृषिपर ही निर्भर कर रहे हैं। कारण कि हमारे देशमें जो दो चार उद्योग-धन्धे प्रतिष्ठित हुये हैं उनमें कच्चे मालकी पूर्त्ति कृषिसे ही होती है। हमारे व्यापारियोंकी सामग्रियाँ भी ज्यादातर कृषिसे ही पैदा होती हैं। इस प्रकारसे करीब हमारी सारी जनसंख्या कृषिसे ही सम्बन्ध रखनेवाली है। कृषि एक बहुत ही अनिश्चित धन्धा है तथा कृषिमें उल्ले-खनीय कोई उन्नति भी नहीं हुई है। कृषिसे सम्बन्ध नहीं रखनेवाले उद्योग-धन्धोंकी प्रतिष्ठा अभीतक विशेष कुछ नहीं हुई। इन सब कारणोंसे देशके जिधर ही क्यों न देखा जाय दरिद्रताका एक नग्नरूप हमारे नजरोंमें आयेगा।

अब जन्म तथा मृत्युकी संख्याके बारेमें आलोचना की जाय। भारतमें जन्मसंख्या दूसरे देशोंसे अधिक है। इस देशमें प्रति हजारमें ३२ बच्चे

पैदा होते हैं। पाश्चात्य देशोंमें हालैंड, स्पेन, अमेरिकाके संयुक्तराष्ट्र तथा कैनाडा जहां कि जन्मसंख्या सबसे अधिक है वहां इनकी संख्या प्रति हजारमें २२ से २४ तक होती है। इंगलैंडमें जन्मसंख्या प्रति हजारमें कुलमें १६·६, जर्मनीमें १६·२ तथा आस्ट्रेलियामें २०·२ है। एक और उल्लेखनीय बात यह है कि बीते हुए ४० वर्षोंमें इन सब देशोंमें जनसंख्याकी दिनपर दिन कमी होती जा रही है लेकिन इस देशमें इसके बारेमें विशेष कोई परिवर्तन नहीं हुआ। इंगलैंडमें १९११-१२ सालमें जन्मसंख्या २४·१ थी, १९४१-४३' में वह १६·३ हो गई; जर्मनीमें जनसंख्या २२·१ के जगह १६·२ हो गई; स्पेनमें ३१·२ की जगहमें २२·८ हो गई; और भारतमें वह ३८·६ की जगह ३२ हो गई। जनसंख्याकी अधिकताके कारण हमारी दुर्बलता एवं क्षय रोगमें वृद्धि हो रही है। इस देशमें जन्मसंख्या अधिक होनेका कुछ कारण भी है। हमारा देश ग्रीष्म प्रधान होनेके कारण स्त्री-पुरुषोंमें यौवनका विकास जल्द होता है तथा कम उम्रमें शादी होनेके कारण भी जनसंख्या अधिक होती है। दरिद्रताका असर भी इसपर होता है। दरिद्र व्यक्तियोंके लिये रहन सहनका कोई निर्दिष्ट दर्जा भी नहीं है और वे सोचते हैं कि जितने बच्चे पैदा होंगे वे कुछ न कुछ काम या रोजगार करके परिवारको आर्थिक मदद पहुँचायेंगे। इसलिये दरिद्र परिवारमें ज्यादातर बच्चोंकी पल्टन दिखाई पड़ती है, यहां तक कि भीखमंगोंमें भी। मध्यवर्ती परिवारोंमें ऐसा हो नहीं पाता, कारण उन्हें पहले तो रहन सहनपर ध्यान देना पड़ता है और दूसरे बच्चोंकी शिक्षा-दिक्षाका प्रबन्ध करना पड़ता है। पाश्चात्यके जिन सब देशोंमें बच्चोंके लिये बाध्यतामूलक शिक्षाका प्रबन्ध हुआ है उनके लिये भी यह बात लागू है। दरिद्रताके अलावा अज्ञानताके कारण भी मनुष्यमें पाशविक शक्तियां विकसित होकर जन्मसंख्या बढ़ानेमें मदद पहुंचाती हैं।

जनसंख्याकी तरह मृत्यु संख्या भी इस देशमें सबसे अधिक है। प्रति

हजारमें इस देशमें २२ आदमी मरते हैं। इंगलैंडमें प्रति हजारमें मृत्यु संख्या कुलमें १२.१ है, जर्मनीमें १२.६, अमेरिकाके युक्तराष्ट्रमें ११.७, कैनाडामें १० एवं डेनमार्कमें ९.६ है। दरिद्रता एक ओर जैसे जनसंख्या बढ़ाती है दूसरी ओर ठीक वैसे ही मनुष्यकी व्याधि प्रतिरोध करनेकी शक्ति विनष्ट कर देती है। इसीलिये इस देशमें व्याधियोंका ताण्डव नृत्य चल रहा है। विज्ञानके प्रभावसे पाश्चात्य देशोंमें जिन सब व्याधियोंको मूलसे विनष्ट कर दिया गया है उन सब व्याधियोंको आज भी हमारे देशमें काफी शिकार मिलती है। हमारी जनसम्पत्तिका एक उल्लेखनीय हिस्सा है, जो चेचक, मलेरिया, क्षयरोग आदि व्याधियोंसे हरसाल मौतका सामना करता है। हमारे देशमें स्त्री तथा बच्चोंकी मृत्युसंख्या भी काफी है। बहुतसे बच्चे जन्म लेनेके साथ-ही-साथ प्रसवगृह में ही मर जाते हैं और बहुतोंको बचपनमें ही मौतका शिकार बन जाना पड़ता है। वैज्ञानिक प्रसव-व्यवस्थाका अभावही इसका मुख्य कारण है। हमारी स्त्रियोंमें जीवनी शक्तिका बहुत अभाव है। बचपनमें अयत्न एवं यौवनमें अनादर तथा उपेक्षाके कारण अनेक स्त्रियोंमें ही ज्यादा दिन जीनेकी शक्ति नहीं रहती। छोटी उम्रमें शादी होनेके कारण मातृत्वका दायित्व भी उन्हें बहुत जल्दी ग्रहण करना पड़ता है और इससे जीवनशक्ति क्षय हो जाती है। भारतमें लड़की होकर जन्म लेना महापाप है। जिस देशमें माताओंका स्वास्थ्य इतना खराब है उस देशके मनुष्योंमें जो जीवनशक्तिका अभाव होगा इसमें आश्चर्य ही क्या है? इसीलिये इस देशमें औसतपर परमायु कुलमें २७ वर्ष है। ३० वर्ष तक पहुँचते ही प्रौढ़ावस्था शुरू हो जाती है एवं ५५ वर्षके बाद अवसर ग्रहण करनेका समय आ जाता है। पाश्चात्य देशोंमें ३० वर्षके बाद वास्तविक यौवनका प्रारम्भ होता है एवं ५० वर्षके बाद काफी अभिज्ञता प्राप्त होनेपर उन्हें ज्ञान-विज्ञान, शिल्प-साहित्य, राजनीति प्रभृति क्षेत्रोंमें नेतृत्वकी प्राप्ति होती है।

जनसमस्याकी विभिन्न पहलुओंके बारेमें आलोचनाकी गई है। अब आर्थिक स्थितिके साथ जनसंख्याका क्या सम्बन्ध है इसपर विचार किया जाय। अनेक नीतिज्ञोंकी धारणा है कि भारतकी विराट् जनसंख्या इस देशकी दरिद्रताका मूल कारण है। हमारा जितना आर्थिक विकास हुआ है उसके द्वारा इतनी जनसंख्याका जीवन निर्वाह होना कठिन है। अपनी युक्तिके समर्थनमें वे मल्थसके सिद्धांतकी बातें करते हैं। इस युक्तिको हम पूरीतौरसे ग्रहण नहीं करते और बिलकुल उपेक्षा भी नहीं कर सकते। हमारे वर्त्तमान आर्थिक विकासकी दृष्टिसे यदि विचार किया जाय तो वर्त्तमान स्थितिमें हमारी जनसंख्याका जीवन निर्वाह होना कठिन है, यह बात स्पष्ट होगी। बीते हुए ५० वर्षोंमें हमारी जनसंख्या कुछ बढ़ी है लेकिन आर्थिक विकासमें कोई विशेषता नहीं दिखाई पड़ी; इसलिये जनसंख्या जितनी ही क्यों न बढ़े वही आर्थिक व्यवस्थाके लिये बोझ हो जाती है। निःसन्देह हमारे देशमें जन्मसंख्या दूसरे देशोंसे अधिक है लेकिन मृत्युसंख्या भी कम नहीं है; प्रति वर्गमील जमीन पर जनसंख्याका दबाव अनेक देशोंसे कम है; इसपर भी हमारी जनताका आर्थिक कल्याण नहीं हो रहा है, उनके रहन सहनका दर्जा ऊँचा नहीं हो रहा है इसका मूल कारण यह है कि बीते हुए ५० वर्षोंमें विभिन्न कारणोंसे हमारा आर्थिक विकास नहीं हुआ है। आज जो साम्प्रदायिक समस्या, प्रान्तीयतावाद आदि देशके विभिन्न प्रान्तोंमें जहर फैला रहा है, आज जो मनुष्यके साथ मनुष्यका अन्तर स्पष्ट हो रहा है, स्वार्थ संघर्षसे आज अनेक मनुष्योंका दृष्टिकोण जिस प्रकारसे संकुचित हो रहा है इनके पीछे भी जनसमस्याका स्पष्ट प्रभाव दिखाई पड़ रहा है। प्रत्येक सम्प्रदाय आज अपने स्वार्थकी बातें सोच रही है, प्रत्येक प्रान्त आज संकीर्ण दृष्टिसे अपनी उन्नतिकी बातें सोच रहा है चाहे वह कितना ही जातीयता विरोधी क्यों न हो, प्रत्येक देश आज उदार अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टिको छोड़कर आर्थिक जातीयतावादपर ध्यान दे रहा है। ये सब शक्तियां जितनी ही

मानवता विरोधी क्यों न हों यही सत्य हैं, वास्तव हैं, इन्हें अस्वीकार करना असम्भव है। इसपर भी निराशा का कोई कारण नहीं है। वर्तमान स्थिति में हमारी जन-संख्याका दवाव वहुत ही ज्यादा मालूम पड़ता है लेकिन इसमें भी शक नहीं कि हमारे सामने विराट आर्थिक सम्भावना भी है। बीते हुए दो सौ वर्षोंमें पृथ्वीके अनेक देश अपनी आर्थिक सम्पत्तियों का उपयोग कर चुके हैं या कर रहे हैं लेकिन हम इस विषय में उदासीन हैं। अगर हमारी जन समस्याको हल करना हो तो हमें दो कार्रवाइयां करनी पड़ेगी। पहले तो हमें जन-संख्या घटानेकी कोशिश करनी पड़ेगी और दूसरी हमारी विराट आर्थिक सम्भावना का उपयोग करना होगा। जन-संख्या घटानेकी जो समस्या है इस पर चारों ओरसे ध्यान देना चाहिए। जन्मनियंत्रण, जन्मनिरोध, रोगग्रस्त व्यक्तिओंकी जनन शक्तिका विनाश प्रभृति जो सब वैज्ञानिक पद्धतियाँ पाश्चात्य देशोंमें चल रही हैं उन्हें हमें ग्रहण करनी पड़ेगी। जन-समस्या के बारेमें हमारे देशमें एक सुचिन्तित जन-संख्या विषयक योजना ग्रहण करनेकी आवश्यकता है। साथ ही साथ हमें आर्थिक विकास की बातें भी सोचनी पड़ेगी। राजनीतिक कारणोंसे जो सब रुकावटें आज तक हमारा आर्थिक विकास नहीं होने देती थी, देश स्वतंत्र होने पर भी यदि हम आगे न बढ़ सकें तो उन्हें हम किस प्रकारसे दायी कर सकते हैं? आज हमारे आर्थिक विकासका काम पूरी तौरसे हमारे ऊपर आ चुका है। हम यदि इस ओर आगे बढ़ सकें, हमारी कृषिमें यदि वैज्ञानिक रीतिसे सुधार किया जाय, हमारे उद्योग धन्धोंका यदि वास्तविक प्रसार हो सके एवं विभिन्न धन्धोंमे यदि हमारी जन-संख्याका यथार्थ वितरण हो तो हमारे सामने आर्थिक उन्नति की सम्भावना आ जायेगी एवं हम अपनी जनताके जीवन निर्वाह का यथार्थ प्रबन्ध कर सकेंगे। हमें इस प्रवन्धको वास्तव मे सफल करनेके लिये शक्ति इकट्ठी करनी पड़ेगी, आर्थिक उन्नतिके विषय पर हमें ज्यादा ध्यान देना पड़ेगा ताकि जन-कल्याणके लिये हमारे आर्थिक साधनोंका पूर्ण उपयोग हो सके। ऐसा

करने पर ही हमारे साधनों की पूरी सार्थकता होगी, हमारे देशके मनुष्य जो कि आज साधारण प्राणियोंकी तरह जीवन गुजार रहे हैं उन्हें मनुष्यकी तरह जीवन निर्वाह करनेका अधिकार प्राप्त होगा, वे मनुष्यके सम्मानको पुनः प्राप्त कर मनुष्यकी मर्यादा पर पुनः स्थित हो सकेंगे जो कि २०० वर्षोंके विदेशी शासनमें उनसे छीन लिया गया था।

गाँव सुधार

भारतकी अधिक से अधिक जनता देहातोंमें बसती है लेकिन जब हम ग्रामोंकी सदियोंसे जर्जरित दुरवस्थाकी ओर देखते हैं तो हमें हमारे ग्राम जीवनके बारे में गौरव का अनुभव नहीं होता। एक समय हमारा ग्राम-जीवन आदर्श जीवन था, इसमें शान्ति विराजती थी, आर्थिक दृष्टिसे भी यह पर-निर्भर नहीं था। वृटिश शासनके प्रारम्भ कालसे हमारे देशमें आर्थिक अव्य-वस्था शुरु हुई जिससे हमारे उद्योग-धन्धे नष्ट हो गए, सारी जनता कृषि पर निर्भर हो गई, सारे देश पर दरिद्रताका अभियान शुरु हुआ। साथ ही साथ प्राचीन पंचायत व्यवस्था गिरनेके कारण देहातियोंके सामाजिक जीवनमें भी विश्रृंखलता आ उपस्थित हुई। इस समय पाश्चात्यके विभिन्न देश औद्योगिक क्रांतिके सुयोगसे आगे बढ़ रहे थे लेकिन हमारी सामाजिक तथा आर्थिक विश्रृंखलताके कारण हम इससे फायदा नहीं उठा सके। उन्नीसवीं शताब्दीके मध्यभाग से भारतमें यातायात-साधनों की उन्नति हुई एवं नए नए शहर बसाए जाने लगे। इस परिवर्तनके साथ-साथ गांवों से शहरों की ओर जन-

संख्याका प्रवाह आरम्भ हुआ। महत्वाकांक्षी, कुशाग्रबुद्धि तथा स्वस्थ युवक गांवोंको छोड़कर नगरोंमें जाकर बसने लगे, फलतः गांव वीरान हो गए। ग्राम-जीवन निरक्षरता, अज्ञानता तथा संकीर्णताका आधार बन गया। आधुनिक समयमें साम्प्रदायिकता तथा प्रान्तीयताके विशाल वातावरणमें हमारा ग्राम जीवन और भी कुत्सित हो गया है।

हमारे देशमें इस वक्त भी अधिक से अधिक जनता गांवोंमें बसती है परन्तु सामाजिक तथा आर्थिक दबावसे शहरोंकी ओर जन-संख्याका प्रवाह बहना आरम्भ हो गया है जैसे कि औद्योगिक क्रान्तिके बाद पाश्चात्य देशोंमें हुआ था। जल्द ही इन देशोंमें इसके दुष्परिणाम दृष्टि गोचर होने लगे। पहले तो कुछ लोगोंका यह विचार था कि शहरोंमें उचित शिक्षा, सफाई, चिकित्सा आदि बातोंकी सुविधा है। इसका नतीजा यह हुआ कि गांवोंमें अपेक्षाकृत निम्न श्रेणीके स्त्री पुरुष ही रह गये और जातिमें अवनतिके चिह्न स्पष्ट होने लगे। इसीलिये पाश्चात्य देशोंमें "गांवको ओर लौटो" का आन्दोलन चलाया गया। ब्रिटिश सरकारने इंगलैंडमें बड़ी बड़ी जमींदारियोंको खरीदकर शिक्षित तथा स्वस्थ युवकोंको पूंजी तथा जमीन देकर उनका बसाना आरम्भ किया। सच तो यह है कि प्रत्येक देशमें, विशेषतः भारतमें, गांवोंकी जन-संख्या पर ही राष्ट्र-शक्तिका आधार है। यदि गांवोंकी जन-संख्या गिरी हुई दशामें रही तो राष्ट्र-शक्ति क्षीण हुए बिना नहीं रह सकती। इसीलिये सामाजिक, आर्थिक तथा राष्ट्रीय दृष्टिसे गांव सुधारकी आवश्यकता है। पंजाबमें गांव सुधारके विख्यात उद्योगी श्री ब्रायनजीने कहा था कि गांव सुधारके लिये भारतके प्रत्येक गांवमें 'डिनामो' प्रतिष्ठित करनेकी आवश्यकता है। इस 'डिनामो' का मतलब यह समझना चाहिये कि प्रत्येक ग्रामीणमें यदि अपनी अवस्थाको सुधारनेकी इच्छा आ जाये तो वह सिर्फ अपनी गलतियोंको ही नहीं समझ सकेगा बल्कि इनको दूर करनेके लिये भी प्रयत्न करेगा।

भारतमें शताब्दियोंके शोषणके कारण गांवोंकी दशा अत्यन्त शोचनीय हो गई है। आज हमारे गांवोंकी दशा ऐसी है कि जो ग्रामीण कुछ पढ़-लिख जाता है वह सदैवके लिए गांव छोड़कर शहरमें जा बसता है। जमींदार शहरोंके आकर्षणसे अपनी जमींदारियोंको छोड़कर दूर शहरोंमें जा बसे हैं एवं जमींदारीकी सारी पैदा शहरोंमें व्यय करते हैं। भारतीय गांवोंकी पूँजी तथा मस्तिष्क इस तरहसे बाहर चले जानेके कारण गांव सब प्रकारसे निर्धन होता जा रहा है। शहरोंमें जो लोग आते हैं उनकी भी आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं होती है, विशेषतः शिक्षित मध्यमवर्ग की, जहां बेकारी फैल रही है। इसलिये शहरोंमें जाकर हमारे प्रथम श्रेणीके व्यक्ति निस्तेज और शक्ति हीन हो गये हैं। सारी जाति पर इसका गहरा असर पड़ा है। आज देश स्वतन्त्र होनेपर भी आशाकी रोशनी दिखाई नहीं पड़ती। इसका मुख्य कारण तो यह है कि हमारे प्रथम श्रेणीके व्यक्ति आर्थिक अभावके कारण शक्ति हीन तथा पुरुषार्थ हीन हो गये हैं और गांवोंमें द्वितीय और तृतीय श्रेणीके लोग ही शेष रह गये हैं एवं गांवोंके साथ शहरोंका सम्बन्ध दिन पर दिन नष्ट होता जा रहा है।

गांव सुधारकी समस्या बहुत जटिल तथा बहुमुखी है। इसलिये गांव-सुधार-योजना व्यापक होनी चाहिये ताकि ग्रामीणोंके पारिवारिक, सामाजिक, राजनैतिक तथा आर्थिक जीवन इसमें शामिल हो सके। गांवो में मनुष्यकी छांटन रह जानेके कारण रूढ़ियोंकी प्रबलता ईर्षा, द्वेष, भाग्यवाद आदि प्रबल हो चुके हैं। इस स्थितिको सुधारनेके लिये समाजकी जो सब त्रुटियां ग्रामीणोंको पीछेकी ओर खींच रही है उनका अन्त करना होगा। उत्तराधिकार-कानून, भूमि-व्यवस्था, सामुहिक-परिवार पर्दा-प्रथा, जाति-भेद प्रभृतिको सुधारनेकी या उनका अन्त करनेकी आवश्यकता है लेकिन सबसे पहले ग्रामीणोंकी निरक्षरताको दूर करनी होगी ताकि वे इन सब सुधारों में सहयोग दे सके। निरक्षरतासे दरिद्रता बढ़ती है, मितव्ययिताका अभाव होता है, जोताई-बोआईके काममें

रुकावटें आती हैं, संक्षेपमें निरक्षरताके कारण ग्रामोद्धारका काम सफल नहीं हो सकता। परन्तु यह शिक्षा ऐसी नहीं होनी चाहिये जिससे जनसाधारण निकम्मे और कल्पना-प्रवण बन जाये। जिस शिक्षासे मनुष्यमें स्वतंत्र बननेकी इच्छा प्रबल नहीं होती वह शिक्षा अशिक्षा है। शिक्षा तो ऐसी होनी चाहिए जिससे एक ओर मानवताका विकास हो सके, नैतिक चरित्र संगठित हो सके एवं दूसरी ओर मनुष्य स्वावलम्बी हो सके। यह शिक्षा सिर्फ बच्चोंको ही नहीं बल्कि प्राप्त वयस्क स्त्री पुरुषोंको भी मिलनी चाहिए।

गांव सुधारके लिये संगठन तथा परिवर्तनकी आवश्यकता है। संगठन बढ़ानेके लिये ग्रामीणोंके साथ आदर्श नागरिकोंका तथा सरकारी पदाधिकारियोंका घनिष्ट सम्बन्ध स्थापित होना चाहिये ताकि ग्रामीण इनकी जीवन पद्धतिको अपना सके। नवयुवकोंको भी इसके बारेमें अपना दायित्व समझना चाहिए। संगठनका काम समाजके निम्नवर्गसे नहीं हो सकता, इसके लिये प्रेरणा तथा आदर्श समाजके प्रथम वर्गसे आनेकी आवश्यकता है। ग्रामीणोंमें अगर प्रेरणा आ जाये, आदर्शके द्वारा यदि वे उत्साहित हो जायें तो उसके बाद वे अपने आप गांव सुधारका उत्तरदायित्व ले सकेंगे। संगठनके अतिरिक्त गृहस्थीमें भी परिवर्तनकी आवश्यकता है। भारतके किसी भी प्रान्तमे, किसी भी गांवमें जाय न क्यों, ग्रामीणोंमे रहन सहनका कोई दर्जा ही नजरमें नहीं आता। आर्थिक अव्यवस्था इस स्थितिके लिये कुछ हद तक दायी है लेकिन जिनकी आर्थिक अवस्था अच्छी है उनका भी जीवन स्तर बहुत नीचा है। ग्रामीणगण जिस तरहके घरोंमें रहते हैं उनमें न तो हवा ही खेलती है और न रोशनी ही पहुँचती है। गृह-निर्माण पद्धतिमें त्रुटियां रहनेके कारण ही ऐसा होता है। देहातोंमें जगहकी कमी नहीं है तो भी ये एक दूसरेसे सटाकर अपना घर बनाते हैं जिससे कि हवा और रोशनी घरोंमें प्रवेश नहीं कर सके। शिक्षाका विस्तार होने पर ही ग्रामीणोंकी दृष्टिमें परिवर्तन सम्भव होगा। ग्रामीणोंमें सफाईका भी अभाव है—सिर्फ शारीरिक सफाई ही नहीं बल्कि

घरकी, सारे गृहस्थोंकी, सारे गांवकी। सफाई रखनेके लिए पैसेकी जितनी आवश्यकता नहीं है उससे अधिक रुचि तथा सौंदर्य-बोधकी है। हमारे ग्रामीणोंमें इन दोनोंका अभाव है। गांवोंमें कूड़ा कचरा गिरानेका कोई निर्दिष्ट प्रबन्ध नहीं है। दूषित जल बाहर निकालनेके लिये भी कोई व्यवस्था नजरमें नहीं आती। टट्टी, पेशाबके लिये भी बहुत कम गांवमें पृथक बन्दोबस्त है इसलिये प्रत्येक गांवमें विभिन्न प्रकारकी बिमारियां फैली रहती हैं और मृत्यु-संख्या भी अधिक है। पीनेके पानीके लिये गांववासियों को कुआं तलाव, नाला आदि पर निर्भर करना पड़ता है इनको किस तरहसे साफ रखना चाहिये इसके बारेमें भी उन्हें जानकारी नहीं है। संक्षेपमें रहन-सहन किस प्रकारका होना चाहिये इसके बारेमें हमारे ग्रामीणों को कम अनुभव है।

गांव सुधारकी सबसे बड़ी समस्या तो आर्थिक समस्या है। गांवमें जमींदारी के अतिरिक्त यथेष्ट आयके साधन, ऊंचे दर्जे का सामाजिक जीवन, मानसिक विकास तथा स्वास्थ्यप्रद मनोरंजनके साधन उपलब्ध नहीं हैं। आज देशमें आर्थिक योजनाओं की बहुत चर्चा है परन्तु गांवोंको समृद्धिशाली बनाने की ओर अभी तक पूरा ध्यान नहीं दिया जा रहा है। ज्यादातर ग्रामीण खेती पर निर्भर हैं, लेकिन खेतीकी अवस्था कोई अच्छी नहीं है। इसको सुधारनेके लिये जिन सब साधनोंकी आवश्यकता है उनमें रकमकी पूर्ति, बिखरे हुए खेतों को इकट्ठा करना, खेतों को आर्थिक दृष्टि से उपयोगी बनाना, सिंचाईका प्रबन्ध करना, ऊसर भूमिका उपयोग करना, भूमि स्वत्वमें परिवर्तन करना, यातायात तथा संदेश साधनों का आयोजन करना, जमीनका कटाव रोकना, शस्य-आलोडन करना, खाद तथा उन्नत बीजोंकी पूर्ति बढ़ाना, उन्नत मशिनें तथा औजारोंका प्रयोग करना प्रभृति विशेष उल्लेखनीय हैं लेकिन अभी तक इन सब विषयोंमें काफी कमजोरियां नजरमें आवेंगी। इन सबको यदि सहकारके आधार पर सहकारी समितियोंके मार्फत

सुधारनेका प्रबन्ध किया जाय तो इस समस्याका हल किया जा सकता है। साथ ही साथ मौसमी कारखाने जो कि खेतीकी पैदावारको कच्चे मालके रूपमें काममें लाते हैं छोटे पैमाने पर वे गाँवोंमें स्थापित हों। यह भी सहकारी समितियोंके द्वारा हो सकता है। इसके अलावा ये समितियां उपजको बड़ी-बड़ी मंडियोंमें बेचनेका प्रबन्ध करेंगी, खेती तथा गृहस्थोंके लिये जरूरी सामग्रियां खरीद सकेंगी, सहकारी खेतीका प्रबन्ध करेंगी, गृह-उद्योग कायम करेंगी, पंच फैसलेका सारा काम भी इन समितियों पर सौंपा जा सकेगा। ग्रामीणोंके रहन सहनमें परिवर्तन करनेका, शिक्षाके विस्तारका। दवादारूका तथा सफाईका सारा प्रबन्ध भी इनके द्वारा करवाया जा सकेगा। इस प्रकारसे यदि प्रत्येक गाँवके लिए या कई एक गाँवोंके लिए सहकारी समितियां कायम की जायँ एवं ग्रामिणोंके सामाजिक तथा आर्थिक जीवनके पुनरुद्धारका दायित्व इनपर सौंप दिया जाय तो गाँव सुधारका काम द्रुत गति से आगे बढ़ सकेगा।

आज देशमें आर्थिक योजनाओंकी बहुत चर्चा है; परन्तु गाँवोंको समृद्धिशाली बनानेकी ओर जब तक ध्यान नहीं दिया जाता है तबतक राष्ट्रकी अवनतिको हम नहीं रोक सकेंगे। गाँवोंको समृद्धिशाली बनानेके लिए सिर्फ कृषि-सुधारसे काम नहीं चलेगा बल्कि हमें अपनी भावी औद्योगिक संगठनकी रूपरेखाको बदलनी होगी। सरकारको ऐसी व्यवस्था करनी होगी कि मौसमी कारखाने जो कि खेतीकी पैदावारका उपयोग कर सकेंगे, गृह-उद्योगकी तरह गाँवोंमें ही स्थापित किए जायं ताकि बढ़ती जन-संख्या गृह-उद्योगसे जीवन-निर्वाह कर सके। केवल गृह-उद्योग पुनःस्थापित करनेसे ही गाँवोंकी आर्थिक समस्याका समाधान नहीं होगा। इसका कारण यह है कि इनमें अपेक्षाकृत थोड़े ही लोग काम पा सकते हैं। आज हमारे गावोंमें जन-संख्या बढ़नेके कारण भूमिका अकाल हो गया है एवं उन खेत-मजदूरोंकी संख्या दिन पर दिन बढ़ती जा रही है जिनके पास या तो तनिक भी भूमि नहीं है अथवा

काम चला आ रहा है उसमें अभी तक विशेष परिवर्त्तन नहीं हुआ; जमीन घेरने की जो रीति पाश्चात्य देशोंमें बहुत दिन पहले शुरू हुई थी वह अभी भी हमारे देशवासियों के लिये अपरिचित है ; जोते हुए खेतोंकी ओर ध्यान देने से जमीन की असंख्य छोटी-छोटी टुकड़ियाँ दिखाई पड़ती है और इनका आयतन भी दिन पर दिन छोटा होता जाता है ; सिंचाई का पूरा प्रबन्ध न होनेके कारण जमीनकी उर्वरता नष्ट होती जा रही है। यूरोपके विभिन्न देशोंमें वैज्ञानिक रीतिसे जमीनकी उन्नति होने के कारण जमीन की कीमत बढ़ गई है ; आज यदि वे सिर्फ प्राकृतिक शक्ति पर निभर करते रहते तो जमीन की कीमत बढ़ना तो दूर रहा बल्कि वह दिन पर दिन घटती ही जाती। हमारे देशमें जमीन की स्थायी उन्नति का कुछ भी प्रबन्ध नहीं हुआ है। साथ ही साथ उत्पादन रीति एवं आवश्यकीय औज़ारों में भी कुछ सुधार नहीं हुआ है। हमारे किसानों की निपुणता भी दूसरे देशोंके किसानों की निपुणता से कम है। इसके लिये हम प्राकृतिक कारणोंका पूरा दोष नहीं दे सकते। बम्बई के धारवाड़ प्रांत में रोज़ाना पाँच आने मज़दूरी पर मज़दूरीन कुल में ५० पाउन्ड रुई संग्रह करती थी ; काम के अनुपात से मज़दूरी निश्चित होने पर वही रोज़ाना करीब १५० पाउन्ड रुई संग्रह करने लगी। कृषि-मज़दूरों को साल भर पूरा काम भी नहीं मिलता ; ज्यादा तर उनका समय बेकार जाता है। हमारे बहुत से गृह-उद्योग नष्ट होने के कारण यह समस्या और भी गम्भीर हो रही है। दूसरे उद्योग धन्धोंके अभाव से हमारी बढ़ती हुई जनसंख्या पूरी तौर से कृषि पर ही निर्भर है। जाति प्रथा, सम्मिलित परिवार, उत्तराधिकार कानून आदि सामाजिक कारणों से अधिकांश मनुष्यों की काम करने की प्रेरणा कम हो जाती है। पूँजी के अभाव से बहुत से किसान कृषिकी उन्नतिके बारे में सोच भी नहीं सकते और जिनके पास कुछ आर्थिक साधन हैं वे भी निरक्षरता के कारण वैज्ञानिक आविष्कारों को काम में नहीं ला सकते।

ऊपर की समस्याएँ हमारे लिये नई नहीं हैं ; पाश्चात्य देशोंमें भी कृषि क्रांतिके पहले ये सब समस्याएँ कम या अधिक रूपमें दिखाई पड़ती थीं लेकिन कृषि क्रान्ति शुरू होने के पहले ही ये हल हो चुकी थीं, चाहे वे अपने आप, या संस्कार के द्वारा या विदेशी अभियान के द्वारा इसलिये जब इन सब देशोंमें कृषि क्रांति शुरू हुई तब इन्हें इन सब समस्याओं का सामना नहीं करना पड़ा था। इसलिये इन सब देशोंको कृषि में आमूल परिवर्त्तन हो सका था—किसानों को आज़ादी मिली, जमीन तथा लगान के बारे में जो सब कानून थे उनमें परिवर्त्तन हुये, छोटे-छोटे खेतोंकी जगह खेतोंकी चकबन्दी हुई, नए औज़ारों से नए तरीकों से खेतीका काम शुरू हुआ। यदि उनको सामाजिक तथा आर्थिक संगठन की कुरीतियां लगी हुई होती तो कृषि क्रांति कभी भी सम्भव नहीं हुई होती। आज अमेरिका, रूस प्रभृति देशोंमें बड़े पैमाने पर जमीन जोती जा रही है। हमारी कृषिमें यदि क्रांति लानी हो तो उसके लिये सबसे पहले इन सब कुरीतियों तथा रुकावटों को नष्ट कर देना पड़ेगा। इस विषयपर ध्यान नहीं देने के कारण बीते हुए दो सौ वर्षोंमें कृषि सुधार के लिये जो भी कुछ कार्रवाइयां हुई हैं वे सफल न हो सकीं। पाश्चात्य देशोंके कृषि क्रांति से हमें जो शिक्षा मिली है उन्हें हम कामयाब न कर सके। इसीलिये दूसरे विषयों में कितनी ही गवेषणा क्यों न हो कृषि के सुधार में उसका कुछ भी असर नहीं होता।

यह तो कृषिकी मुख्य समस्या है ; अब कृषि की कुछ विशेष समस्याओं पर ध्यान देना चाहिये। ये त्रुटियां निम्न प्रकार हैं :—

(१) जमीन की समस्याएँ :—

(क) जमीन की उर्वरता में कमी, (ख) जमीन का घटाव, (ग) आवश्यक प्राकृतिक तथा कृत्रिम खादकी कमी, (घ) सिंचाई के प्रबंध का अभाव, (ङ) छोटे और बिखरे हुए खेत—ये अधिकांश में बेमुनाफे

के हैं और इनके विभिन्न उत्पादन साधनों का समुचित उपयोग नहीं हो पाता, (च) दोष युक्त भूमि-स्वत्व पद्धति ।

(२) किसानों का स्वास्थ, उनकी निरक्षरता और उनके शरीर तथा मन पर आर्थिक तथा सामाजिक व्यवस्था का प्रभाव ।

(३) कृषिमें पूंजीकी समस्या :—

(क) अत्यधिक तथा पुराना कर्ज, (ख) रक़म के लिये महाजनों पर निर्भर, (ग) पूँजी प्राप्त करने के साधनोंकी कमी, (घ) अच्छे औजारों का अभाव, (ङ) बैल आदि पशुओं की कमजोरी, (च) दोषयुक्त बीजों का उपयोग, इत्यादि

(४) संगठन में त्रुटियां :—

(क) किसानोंमें संगठनका अभाव, (ख) कृषि-नियंत्रण तथा आयोजनकी कमी, (ग) उपजको बाजारमें लानेकी दोषयुक्त पद्धति, (घ) अच्छे यातायात साधनों की कमी, (ङ) गांवोंके सामूहिक जीवनमें शिथिलता का आविर्भाव, इत्यादि ।

कृषि व्यवस्थामें भूमि प्रधान साधन है इसलिये हमें इस पर सबसे पहले ध्यान देना चाहिये । एक ओर हमें भूमि की उर्वरता बढ़ानी होगी और दूसरी ओर हमें प्रत्येक किसानको 'आर्थिक-जोत' देनी होगी जिससे उनका जीवन निर्वाह हो सके । जमीनमें खाद देकर उर्वरता बढ़ाने पर ही समस्याका समाधान हो सकता है । देशमें कम खर्चमें रसायनिक उपायोंसे खाद बनाने का प्रबन्ध जिस प्रकार हो सके उस पर राष्ट्रको ध्यान देना चाहिये । भूमिपर बढ़ते हुए भारके लिए गहरी खेती आवश्यक है ; इसलिये भी कृत्रिम खादोंकी पैदावार होनी चाहिए । साथ ही साथ कृषकको यह सिखानेकी आवश्यकता है कि वह घरके सारे अवशिष्ट पदार्थों और मलोंको उचित परिवर्त्तनके बाद जमीनमें डालें । इससे न केवल आस पासका वातावरण शुद्ध रहेगा वरन्

भूमिकी पदावार भी बढ़ेगी। हमारे देशकी अधिकांश जमीनमें पानीका हिस्सा बहुत कम है। इसलिये हमें वर्षापर पूरीतौरसे निर्भर रहना पड़ता है। भारत नदी-मातृक देश होते हुये भी जल सिंचाई तथा निकाशके प्रबंध से वंचित है, इसलिए मौसमी वायु पर हमारी कृषि पूर्णतया आश्रित है। मौसमी वायु बहुत ही अनिश्चित होनेके कारण हमारे खेतोंमें हानि पहुँचती है; साथ ही साथ हमारी जल-सम्पत्तिकी बर्बादी होती है। इसका प्रतिशत ६ हिस्सा ही वर्त्तमानमें सफल हो रहा है। हमारे सामने सिन्ध तथा पंजाबके वे उदाहरण हैं जहाँ कि सिंचाईका प्रबन्ध होने पर ऊसर जमीनमें भी काफी तादादमें फसल होने लगी है। दूसरे प्रान्तोंमें जहाँ पर जमीनमें प्राकृतिक उर्वरता है वहाँ अगर सिंचाईका प्रबन्ध हो जाय तो कृषिमें क्रान्ति-कारी परिवर्त्तन होगा। पश्चिमी बंगालमें अगर दामोदार घाटी योजना सफल हो जाय तो उम्मीद की जाती है कि उससे १० लाख एकड़ जमीनमें सिंचाईका प्रबन्ध होगा, १ करोड़ ८ लाख मन ज्यादा फसल मिलेगी, जाड़ेके समय ५ करोड़ रुपयेकी फसल प्राप्त होगी, ३ लाख किलोवाट जल विद्युत पैदा होगी एवं कलकत्तेकी बन्दरगाहकी भी काफी उन्नति होगी। इस तरहसे अगर सारे देशमें सिंचाई एवं विद्युत् उत्पादन प्रबन्ध हो जाय तो हमारी कृषि तथा शिल्पके सुधारमें एक उल्लेखनीय मदद पहुँचेगी।

इस देशमें जितनी जमीन है उसमें प्रतिशत २२ हिस्सा जमीन जोतनेके काबिल नहीं समझी जाती लेकिन इस समय जमीनको बेकार रखना कोई गौरवकी बात नहीं है, विशेष कर जब हमारे देशमें अनाजकी इतनी कमी है। जर्मनी, अमेरिका प्रभृति देशोंमें काफी जमीन जोतनेके अयोग्य थी लेकिन विज्ञानकी सहायतासे वहाँ आज तिल मात्र भी जमीन बेकार नहीं मिलेगी। हमारे देशमें बेकार जमीन कम होते हुए भी हम उन्हें अभी तक पूरी तौरसे कामयाब नहीं कर सके हैं। कुछ दिनोंसे किसी-किसी प्रान्तीय सरकारका इस पर ध्यान गया है। संयुक्त प्रांत तथा पश्चिमी बंगालमें इन

सब जमीनोंको जोतनेका काम शुरू हुआ है लेकिन इसमें प्रेरणाका अभाव दिखाई पड़ रहा है। अगर अपनी खाद्य स्थितिको सुधारनी है तो हमें सारी बेकार जमीनोंको मशीनोंके प्रयोगसे जोतने पर ध्यान देना होगा।

उत्तराधिकार कानूनके प्रभावसे तथा सम्मिलित परिवार टूटनेके कारण सारी जमीन छोटे-छोटे टुकड़ोंमें खंडित तथा विभक्त हो रही है। इस प्रकारसे आज एक-एक किसानके हाथमें इतनी कम जमीन है जिससे एक परिवारका भरण-पोषण नहीं हो सकता। १९३१ सालमें बम्बई प्रान्तमें एक-एक किसानके हाथमें औसत पर कुलमें १६.८ एकड़ जमीन थी; दूसरे प्रान्तोंमें विशेषतः बंगाल, बिहार एवं संयुक्त प्रान्तमें एक-एक किसानके हाथमें इसका चौथाई हिस्सा जमीन भी नहीं थी। इस स्थितिके साथ अगर रूसकी कृषिकी तुलना की जाय तो देख सकते हैं कि रूस देशमें सबसे छोटा खेत ६०० एकड़ पर है एवं सबसे बड़े खेतका आयतन ५००० एकड़ है औसत पर एक-एक खेतका आयतन लगभग १६०० एकड़ है। सिर्फ इतने बड़े-बड़े खेतोंमें ही आधुनिक तरीकेसे खेतीका काम चल सकता है। हमारे देशमें कमसे कम इतनी जमीन प्रत्येक किसानको मिलनी चाहिए जिससे वे जीवन निर्वाह की आवश्यकीय सामग्रियाँ प्राप्त कर सकें। बेशक सारे देशके किसानोंको समान जमीन देनेकी जरूरत नहीं है। जहाँकी जमीन अधिक उर्वरा है वहाँ कम जमीनसे भी काम चल सकता है। किस प्रान्तमें किसानको कितनी जमीन देनी चाहिए इस बातको तय करनेके पहले हमें जमीनकी उर्वरता, साधारण परिवारकी जनसंख्या एवं जमीनकी उपयोगिता पर ध्यान देना पड़ेगा। इसको सफल करनेके लिए या तो "ज्येष्ठताके नियम" के द्वारा, जिससे सबसे बड़ा लड़का भूमिका अधिकारी होता है वर्त्तमान कानूनोंमें परिवर्तन करना होगा या फिर किसी अन्य युक्तिका आयोजन करना होगा जिससे की भूमिका विभाजन तथा उपविभाजन होना बन्द हो जाय। सहकारी समितियाँ भी ठोस चक-बन्द जोतोंका निर्माण कर सकती हैं।

भूमि-स्वत्व पद्धतियोंमें भी कुछ परिवर्त्तनकी आवश्यकता है। हमारे देशके लिये सबसे अच्छी पद्धति कृषक-स्वत्व-पद्धति है। जमींदारी बंदोबस्त या ताल्लुकेदारी पद्धतिको चालू रखना अब उचित नहीं है। यह सुधार कई वर्षोंसे अपेक्षित है; वास्तवमें इन परिवर्त्तनको कामयाब करनेमें कुछ असुविधाएँ जरूर आवेंगी; क्षति पूर्त्तिका सवाल ही सबसे अधिक जटिलताको सृष्टि करेगा; लेकिन निकट भविष्यमें यदि जमींदारी प्रथाका अंत करना व्यवहारिक न हो, तो कम-से-कम कृषकका भूमि-स्वत्व अवश्य सुरक्षित होना चाहिए। पुनः कुछ प्रान्तोंमें कई प्रकारकी भूमि-स्वत्व पद्धतियां हैं, जो सरल बनाई जानी चाहिए।

सिर्फ जमीनकी समस्याओंका हल करने पर ही कृषिमें सुधार नहीं होगा, साथ ही साथ किसानोंकी निपुणता बढ़ानेके लिए हमें प्रयत्न करना पड़ेगा। इसके बारेमें हमें दो विषयों पर ध्यान देना पड़ेगा—एक, किसानकी निपुणता और दूसरा, जमीनके साथ उसका सम्बन्ध। हमारे किसान दरिद्र तथा निरक्षर हैं इसलिये वे जमीनकी स्थायी उन्नतिकी बातें सोच नहीं सकते और न सोचनेका साधन ही उनके पास है। जिन प्रान्तोंमें जमींदारी प्रथा प्रचलित है वहां भी जमींदार सिर्फ खजानेके साथ सम्बन्ध रखते हैं, कृषिकी उन्नतिके साथ नहीं। यूरोप तथा अमेरिकाके जमींदारों तथा हमारे जमींदारों में इस विषयमें कितना ही न अन्तर है। उन सब देशोंमें जमींदार तथा राष्ट्रकी चेष्टासे कृषिकी बहुत जल्द उन्नति सम्भव हुई है। हमारे देशमें जमीनके शोषण करनेवालोंका अभाव नहीं है; लेकिन जमीनकी उन्नतिके साथ ये लोग सम्बन्ध नहीं रखते। जहां पर जमींदारी प्रथा नहीं है वहां पर भी शोषण करनेवालोंका अभाव नहीं है। इस स्थितिको अगर सुधारनी हो तो एक ओर किसानोंमें उपयुक्त शिक्षाका प्रसार करना होगा एवं दूसरी ओर इन सब मध्यस्थ शोषकोंको हटा कर किसानोंको दाय मुक्त करना होगा। आज जमींदारी बन्दोबस्त हटा देनेकी बात गहरी तौर पर सोची जा रही है।

इसमें कुछ असुविधाएँ भी जरूर आ रही हैं लेकिन जब भूमि पूरा दायित्व किसानों पर आ जायगा तो वे इसका सुधार करने पर अधिक ध्यान दे सकेंगे।

किसानोंके हाथमें रक़मका अभाव होनेके कारण भी कृषिमें बहुत-सी समस्याएँ आ जाती हैं। किसानको कर्ज तो प्रत्येक कृषि प्रधान देशमें लेना ही पड़ता है, लेकिन हमारे कृषि ऋणकी विशेषता यह है कि किसान अपनी दरिद्रताके कारण जितना कर्ज लेता, कृषिके सुधारके लिए उतना नहीं। कर्जके लिए वे साहुकारों पर निर्भर करते हैं। इस व्यवस्थामें कृषकों पर हर तरहके अत्याचार होते रहते हैं। १९२९ की विश्व मन्दीके बाद वेदखलीके मामले तथा भूमिका ज़बरन विक्रय काफ़ी बढ़ गया और एक भूमिहीन कृषक-वर्गका उन्मेष दिखाई दिया जोकि सामाजिक स्थायित्व तथा देशकी शान्तिके लिए बहुत बड़ा खतरा है। अमेरिकाके युक्तराष्ट्रमें विभिन्न प्रान्तोंमें भूमि-बैंक प्रतिष्ठित होने पर कृषक-सम्प्रदाय साहुकारों पर निर्भर नहीं करती हैं; जर्मनी में सहकार आन्दोलन के द्वारा इस समस्याका हल किया गया है। भारत में कुछ सहकारी समितियाँ जरूर कायम की गई हैं लेकिन इनकी जड़ नीचे तक नहीं पहुंच सकी। इस समस्याका अगर हल करना हो तो एक ओर देशके विभिन्न प्रान्तों में कृषि-बैंक प्रतिष्ठित करना होगा ताकि किसानोंको कम व्याज पर काफी रक़म मिल सके और दूसरी ओर कृषिमें ऐसी उन्नति करनी होगी जिससे सिर्फ जीवन निर्वाह करने के लिए कर्ज लेनेकी ज़रूरत न पड़े। आज किसान जितना भी कर्ज लेता है वह सारा उसके जीवन निर्वाह करने में ही खतम हो जाता है। कृषि यदि लाभदायक पेशा बन जाय तो उन्हें जीवन निर्वाह करने के लिए कर्ज लेनेकी आवश्यकता न रहेगी और सारी रक़म वे कृषिकी उन्नति करने में लगा सकेंगे।

अब किसानोंकी वास्तविक रक़म के बारे में दो एक बातें कही जाय। हमारे किसान उन पुराने औज़ारों को काममें ला रहे हैं जो उन्हें उनके

पूर्वजों से प्राप्त हुए हैं। यह बात अवश्य माननी पड़ेगी कि हमारी कृषिकी वर्त्तमान प्रणाली में नई सुधारी हुई भूमि के अतिरिक्त भारी मशीनों तथा यांत्रिक हलों के लिए कोई स्थान नहीं। इसलिए हमें उन्हीं तरीकों का उपयोग करना चाहिए जिसमें पूंजीकी बचत हो और श्रमका अधिक से अधिक उपयोग हो। किन्तु इसका यह अर्थ कभी नहीं होता कि हम उन्नत औजारोंका उपयोग कभी और कहीं भी न करें। जब कृषिका वातावरण बदल जायेगा, जब बड़े पैमाने पर जोतनेका काम शुरू होगा तो मशिनों तथा यांत्रिक हलोंका पूर्ण उपयोग हो सकेगा। भारत में संसार की पशु संख्या का सब से बड़ा भाग रहता है लेकिन दुःख इस बातका है कि हमारी जनता की तरह हमारे पशु भी भूखे रहते हैं। अतः उनकी स्वास्थ्य-क्षीणता होती जा रही है एवं वंश वृद्धि भी अधिक नहीं होती। पशु-उत्पत्ति ठीक चारा-दाना एवं भोजन तथा वैज्ञानिक पालन पोषण से बढ़ायी जा सकती है। प्रत्येक ग्राममें सार्वजनिक चरागाह के लिए कुछ जगह रक्षित होनी चाहिए और विशेष प्रकार की घास बोनी चाहिए। वंश-वृद्धि करनेवाले सांड़ ग्राम जनता को बिना लागत के या कम मूल्य पर मिलने चाहिये। देशसे खलों को निर्यात बंद होनी चाहिए। जो गांव सड़कों द्वारा शहरों से जुड़े हुए हैं वहां मिश्रित-कृषि कायम करनी चाहिए।

किसानों में संगठन का भी काफी अभाव है। इसलिए उन्हें बहुत से मध्यस्थ व्यक्तियों के हाथमें पड़ना पड़ता है। यदि अपनी सामग्रियोंको वे मंडियों में बेच सकें तो उन्हें अच्छी कीमत मिल सकती है लेकिन अभी उनकी जैसी स्थिति है उसमें वे मंडियों के साथ बहुत कम सम्बन्ध रख सकते हैं। एक तो वे देहातों में रहते हैं और दूसरा यातायात का साधन भी काफी नहीं है। हमारे यहां रेलोंकी तथा सड़कोंकी लम्बाई देशके परिमाण तथा आबादी को देखते हुए बहुत ही नगण्य है। अब तक रेल-निर्माण-नीति यह थी कि विदेश के बन्दरगाहों को पासके स्थानों से जोड़

दिया जाय जिससे कि देशका विदेशी व्यापार बढ़े। यदि इन खर्चीली लाइनों के स्थानपर भारत में रेलोंका जाल बिछ जाता तो देशका आन्तरिक व्यापार बहुत बढ़ जाता। इसके अलावा एक एक किसानकी उपज भी इतनी कम होती है कि उसको मंडियोमें लानेमें काफी खर्च पड़ जाता है। इसलिए वे उपजको या तो व्यापारियोंको या साहूकारोंको बेच देते हैं। किसानोंमें यदि संगठन किया जाय, और सहकारी विक्रय समितियां प्रतिष्ठित हो सकें तो इन सब मध्यस्थ व्यक्तिओंके हाथोंसे उन्हें मुक्ति मिल सकती है और वे अपनी सारी सामग्रियां इकट्ठी करके बड़ी बड़ी मंडिओंमें उपयुक्त कीमतपर बेच सकते हैं। साथ ही साथ यातायातका आधुनिक तथा सस्ता प्रबन्ध भी हमें करना चाहिए। अन्तिम प्रयत्न सामूहिक ग्राम जीवनको पुनर्जीवित करनेके लिए करना चाहिए। हमारे प्राचीन ग्राम जीवनमें कई प्रकारकी सहकारिताएँ थीं किन्तु अब वे लुप्त तथा कालगत हो गई हैं। भारतके किसी किसी प्रान्तमें ग्राम पंचायत फिरसे कायम करनेका प्रबन्ध हुआ है लेकिन इनमें योग्य व्यक्तियोंका अभाव हमें हरवक्त मालूम पड़ता है। सरकारी कर्मचारी छोटेसे बड़े तक सब कोई अपनेको मालिक समझ बैठे हैं; इसलिए जनताके साथ उनका वास्तविक सम्बन्ध नहीं है। गांवोंमें शिक्षितोंकी संख्या भी कम होती जा रही है। इस स्थितिमें गांवोंका पुनर्निर्माण कौन करे? वास्तवमें यदि ग्रामशाला, ग्राम सहकार समिति तथा ग्राम पंचायत योग्य रीतिपर संगठित की जा सके तो ग्राम सुधार की समस्या काफी सुलझ सकती है।

हमारी खाद्य-समस्या—क्या हम खाद्यान्न के बारे में पूर्ण स्वतंत्र बन सकते हैं?

"आते ही (खाद्य-मन्त्री बननेके बाद) मैंने देखा कि पूज्य गांधीजीने जो-कुछ पहले कहा था वही ठीक है। उन्होंने कहा था कि विदेशोंपर हम बहुत भरोसा नहीं कर सकते, क्योंकि वहांसे अन्न लानेमें हजारों अड़चनें पड़ सकती हैं। हमारे लिए अपने देश और अपने लोगोंपर ही भरोसा करना ठीक है। पर हुआ इसके सर्वथा उल्टा ही। पीछले दो वर्षोंमें अन्तरिम मन्त्री-मण्डल बननेके बादसे हम और भी अधिक विदेशोंपर निर्भर हो गये हैं।"

—आत्मकथा, डा० राजेन्द्रप्रसाद

भारत कृषि प्रधान देश है फिर भी इस देशमें खाद्यपदार्थोंकी बहुत कमी है। सन १९४२ के दुर्भिक्षके समयसे जो खाद्य समस्या शुरू हुई है वह आज भी समाप्त नहीं हुई। सन १९४२ के मार्च महीने तक हमारी खाद्य समस्या सिर्फ कृषिसे उत्पादित वस्तुओंकी कीमत बढ़ानेकी ही समस्या थी; कारण १९२९ के व्यापारिक संकटके समयसे लगाकर १९४२ तक खाद्यपदार्थोंकी कीमत गिरी हुई थी। इस स्थितिसे किसानोंको जो आर्थिक क्षति हो रही थी सरकार भी उसका अन्त करना चाहती थी। इस मन्दीका असर हमारे देशपर सबसे अधिक हुआ था। सन १९४२ से जो समस्या शुरू हुई वह और भी जटिल तथा भीषण है। अन्न संकट हमारे लिए कोई नई अभिज्ञता नहीं है; भारतमें अंगरेजी राज कायम होनेके बादसे इस देशमें बहुतसे दुर्भिक्ष पड़े हैं। पहली लड़ाईके वक्त भी पैदावार कम हो जानेके कारण हमारी खाद्यस्थिति नाजुक हो चुकी थी लेकिन वितरणका प्रबन्ध ठीक था। इसलिए अन्न संकट इतना जटिल नहीं हो पाया जितना कि दूसरी लड़ाईके वक्त हुआ। प्रायः साधारण समयमें भी हमारी अन्नकी

पुर्ति प्रयोजनसे कुछ कम रहती थी और इसलिए हर साल हमें वर्मा, थाईलैंड हिन्द चीन, प्रभृति देशोंसे चावल मंगवाना पड़ता था। दूसरी लड़ाईमें जब ये सब देश जापानियोंके कब्जेमें चले गए तो चावलकी आयात बन्द हो गई ; साथ ही साथ विक्रयकी अव्यवस्था, चोरबाजारका आविर्भाव, संग्रह एवं वितरणमें सरकारी दुर्नीतियोंके कारण हमारी खाद्यस्थिति बेहद खराब हो गई।

लड़ाईके पहलेको साधारण स्थितिमे हमारे देशमें खाद्यपदार्थोंको पूर्ति प्रयोजन से कुछ कम थी परन्तु सम्पूर्ण पृथ्वीकी प्राप्ति प्रयोजनके लिए अपर्याप्त नहीं थी वल्कि आवश्यकतासे अधिक प्राप्ति होनेके कारण हरवक्त मन्दीकी समस्या बनी रहती थी। इसलिए कभी-कभी पैदावारको भी रोक देना पड़ता था। अमेरिकाके युक्त राष्ट्रमें पहली लड़ाईके बादसे गेहूँकी पैदावार बहुत बढ़ गई थी। १९०९-१३ सालोंमें औसतपर ४८० लाख एकड़ जमीन गेहूंकी पैदाके लिए जोती जाती थी। १९१९ सालमें ७३० लाख एकड़ जमीनमें गेहूं की पैदावार होती थी। इस समय सामग्रियोंकी कीमत साधारणसे दुगुनी हो चुकी थी परन्तु यूरोपमें पैदावार कम होनेके कारण गेहूंकी काफी खपत वहां पर होती थी। १९२० सालके बाद यूरोपमें पैदावार शुरू होनेके कारण अमेरिकासे गेहूंका निर्यात कम हो गया और खेतीमें मन्दी शुरू हुई। सन १९३२ में वह मन्दी हद तक पहुंच गई। युक्तराष्ट्रके बारेमें जो बातें कही गई हैं वे कनाडा, आर्जेनटाइन प्रभृति कृषि प्रधान देशोंके लिए भी लागू हैं। सिर्फ इतना ही नहीं वल्कि इसके बाद भी खाद्य पदार्थोंकी पैदावार बढ़ती रही। सन १९२२-२६ में औसतपर प्रति वर्ष सारी पृथ्वीमें १६९२८००० टन गेहूं मौजूद था। सन १९३२ में, २७८१५००० टन गेहूं एवं १९४० में ३५७३५००० टन गेहूं मौजूद था। सन १९२५ से लगाकर १९३७ सालतक फसल नष्ट हो जानेके कारण पैदावार कुछ कम हुई थी लेकिन इन चन्द सालोंको छोड़कर १९४२ साल तक

सारी पृथ्वीकी खाद्यस्थिति अच्छी थी। हमारे देशमें इन सब वर्षोंमें खाद्यपदार्थोंकी प्राप्ति कुछ कम होनेपर भी कीमत बहुत कम थी एवं कभी-कभी विदेशोंसे आये हुये खाद्यपदार्थोंपर आयात-कर लगानेकी जरूरत पड़ती थी। परन्तु सबसे दुःखकी बात यह है कि सारी पृथ्वीमें जब अनाजकी पैदावार बढ़नेके कारण मन्दी चल रही थी उस वक्त भी अनेक देशोंमें—भारत भी उनमें एक देश था—दरिद्रताके कारण अनेकोंको पूरी खाद्य सामग्रियाँ नहीं मिलती थी। इस प्रकारसे लड़ाईके पहलेकी खाद्य समस्याएँ कुछ दूसरे ही प्रकारकी थीं।

लड़ाई शुरू होनेके बादसे खाद्य समस्याका रूप पलट गया। एक ओर तो मुद्रा प्रसारके कारण कुछ व्यक्तियोंकी आमदनी बढ़ती गई एवं खाद्य-पदार्थोंकी कीमत भी बिना रुकावटके बढ़ती गई और दूसरी ओर पैदावार तथा विक्रयके प्रबन्धमें विश्रृंखला होनेके कारण उपज घटती गई। दूसरे देशोंमें लड़ाईके समय पैदावारकी कमी जरूर हुई लेकिन विक्रयका उपयुक्त प्रबन्ध किये जाने पर खाद्य समस्या इतनी जटिल नहीं हो सकी। भारतमें जो अन्न संकट आनेवाला था भारत सरकारने बहुत दिन तक उस पर ध्यान नहीं दिया। १९४२ साल तक मुद्रास्फीति एवं सरकारी खरीदोंके कारण अनाजकी कीमत बढ़ती रही। खाद्य पदार्थोंका मूल्य बांध देनेकी कोशिश सरकारकी तरफसे हुई थी लेकिन कामयाबी न मिलनेके कारण सरकारने उस कोशिशको छोड़ दिया। सन १९३५ में बर्माके अंग्रेजोंके हाथसे निकल जाने पर हमारी खाद्य स्थिति और भी बिगड़ गई। प्रति वर्ष हम बर्मासे १० लाख टनसे भी अधिक चावल मंगवाते थे। इनका आयात बन्द हो चुका एवं लड़ाई जितनी भारतके नजदीक आती रही उतना ही सरकार भारतके पूर्वी प्रान्तोंसे अनाज हटाने लगी। सारे देशमें चोर-व्यापारी तथा पदस्थ सरकारी कर्मचारियोंने लूट मचा दी। सभ्यता पर गर्व करनेवाली बीसवीं सदीमें व्यभिचारकी एक नग्नमूर्ति हमारे सामने दिखाई पड़ी एवं इसके ताण्डव नृत्यसे हम

देशकी निर्दोष जनताका बड़ा एक हिस्सा कीट-पतंगोंकी तरह मौतका निशाना बना। सभ्यताके इतिहासमें इस प्रकारकी कुत्सित घटनाओंकी संख्या इनीगिनी ही है।

बहुत युक्ति विचार तथा आलोचनाके बाद भारत सरकारने १९४३ सालमें खाद्यस्थितिके बारेमें सलाह देनेके लिये एक कमिटी बैठाई और इसकी सलाहके अनुसार एक स्थूल खाद्यनीति ग्रहण किया जिसकी उल्लेखनीय बातें निम्न प्रकारकी थीं:—(क) दूसरे देशोंसे खाद्यपदार्थोंकी आयात जहां तक हो सके बढ़ाना एवं भविष्यकी नाजुक स्थितिके लिये ५ लाख टन अनाज मौजूद रखना ; (ख) देशमें पैदावार बढ़ानेके लिये यथा रीति प्रबन्ध करना, जैसे किसानोंको हर तरहसे प्रोत्साहित करना, कच्चे मालकी पैदावार घटाकर उसी जमीनपर अनाज पैदा करना, सिंचाईका प्रबन्ध करना, इत्यादि। इसी नीति के अनुसार सरकार ने "अधिक अन्न उपजाओ" का प्रचार शुरू किया ; (ग) केन्द्रवर्त्ती सरकार के निर्देशानुसार एक मौलिक आर्थिक योजना ग्रहण करना ; (घ) खाद्य-पदार्थों की कीमत बांध देना ; (ङ) बड़े-बड़े शहरों में खाद्य पदार्थों के विक्रय पर नियंत्रण लगाना।

*　　　　*　　　　*

दूसरी लड़ाई का अन्त हो चुका है लेकिन अभी तक खाद्य समस्या का अन्त नहीं हुआ। सारी पृथ्वी पर आज जो अन्न संकट चल रहा है हमारी समस्या उस में शामिल होते हुए भी अनेक देशों से अधिक जटिल बन गई है। लड़ाई के बाद के प्रथम साल में कहीं तो बाढ़ के कारण और कहीं वर्षा के अभाव के कारण अनाज की पैदावार यों ही कम हुई थी ; इसके अलावा झड़ तूफ़ान से फसलको काफी हानि पहुंची। इस समय विदेशों से अनाज नहीं आता था। इन कारणों से १९४५-४६ साल में हमारे देश में वर्त्तमान रहन सहन के हिसाब से ८० लाख टन अनाज की कमी थी। अन्तरराष्ट्रीय खाद्य स्थिति पर विचार करने के लिए इस समय

एक अन्तरराष्ट्रीय खाद्य-संस्था कायम की गई। इस पर भी हमारी खाद्य-स्थिति नहीं सुधरी। १९४६ साल के अन्त में बड़े बड़े शहरों में नियंत्रित खाद्य विक्रय का प्रबन्ध किया गया। इस साल भी हमारी अनाज की उपज ४० लाख टन कम थी जिसमें १७ लाख टन की पूर्ति बाहर से हुई। १९४७ साल में भी हमारी खाद्य स्थिति में कोई उल्लेखनीय परिवर्तन नहीं हुआ।

भारत विभक्त होनेपर हमारी खाद्य स्थिति और भी बिगड़ गई। भारत में १७२ लाख टन चावल तथा ४१ लाख टन गेहूं की पैदावार होती है; पाकिस्तान में इनकी पैदावार ५३ लाख टन एवं २७ लाख टन क्रमशः है। पूर्वी पाकिस्तान चावल तथा पाट के लिए एवं पश्चिमी पंजाब गेहूं तथा रुई के पैदावार के लिए विख्यात है। इन दोनों प्रान्तों के भारत से निकल जाने से हमारी खाद्य एवं कच्चे माल की पैदावार कम हो गई है। सिंचाई का जो कुछ प्रबन्ध हुआ था वह भी अधिकतर पाकिस्तान के हिस्से में ही पड़ा है। इस प्रकारसे खाद्य पदार्थों की दृष्टि से विभाजन का नतीजा हमारे लिए अच्छा नहीं हुआ।

अनाज की पैदावार बढ़ाने के लिए सरकार ने जो कुछ कार्रवाइयों की उसका काफी प्रचार किया गया है परन्तु इससे सफलता कितनी हुई यह विचारणीय बात है। १९४३ साल से लगाकर पिछले साल तक केन्द्रीय तथा प्रान्तीय सरकारों ने इस काम में लगभग २१ करोड़ रुपया खर्च किया लेकिन इससे सफलता क्या हुई? सन १९४७ के अप्रैल महीने में एक प्रेस नोट में सरकार ने बताया कि भारत में ६४० लाख टन खाद्य पदार्थों की जरूरत है एवं ५६० लाख टन की पैदावार होती है। खाद्य दफ्तर का कहना है कि बीते हुए ४ वर्षों में खाद्य पदार्थोंकी पैदावार १२० लाख टन बढ़ी है। अगर यह आंकड़ा ठीक हो तो हमारे यहाँ खाद्य वस्तुओंकी कमी न होनी चाहिए, बल्कि कुछ बचत ही होनी चाहिए। आंकड़े के द्वारा वास्तविक

स्थितिका अनुमान नहीं हो सकता, क्योंकि सरकार के आंकड़े के बावजूद भी हमें हरसाल काफी तायदाद में खाद्य सामग्रीयां बाहर से मंगानी पड़ती है। निकट भविष्य में आयात घटने की या पैदावार बढ़ने की कोई भी उम्मीद नहीं है। जिन खेतों में कच्चे माल की पैदावार होती है वहां अनाज की पैदावार भी हो सकती है या नहीं इसके बारेमें जाँच करने के लिए सरकार ने एक कमिटि कायम कि थी। इस कमिटिका निष्कर्ष ऐसा है कि अगर इस प्रकार परिवर्त्तन किया जाय तो उससे कच्चे मालकी पैदावारमें काफी हानि होगी एवं अनाज की पैदावारमें भी आशानुरूप सफलता नहीं होगी। सिर्फ यही नहीं बल्कि हमारे सामने कच्चे मालकी पैदावार बढ़ाने की भी समस्या है। देश विभक्त होनेके सबब भारतमें रूई, पाट प्रभृति कच्चे मालोंकी काफी कमी हो चुकी है जिससे अनेक कारखानोंके लिए उत्पादन बढ़ाना या लगातार काम करना असम्भव हो रहा है। इसलिए जोताई, बोआईमें इस प्रकारका परिवर्त्तन करना असम्भव नहीं होगा और न करनी ही चाहिए। खाद्य पदार्थों की पैदावार यदि बढ़ानी हो तो हमारे सामने दो रास्ते हैं—एक, कृषिका सुधार करना एवं दूसरा, बेकार जमीनोंको जोतनेका प्रबन्ध करना। कृषिके सुधारके लिए हमें कृषि-योजना ग्रहण करनी होगी जिसमें कृषिकी विभिन्न समस्याओं पर ध्यान दिया गया है। बेकार जमीनोंको जोतनेकी एक जटिल समस्या भी हमारे सामने है। जिस देशमें खपतके अनुपातसे पैदावार बहुत कम होती है उसमें जमीन बेकार रखना कोई गौरवकी बात नहीं। भारतमें लगभग ८८० लाख एकड़ जमीन बेकार है। इसके अलावा और भी बहुत-सी जमीनें हैं जहां घास आदि होती हैं या मामूली-से जंगल हैं। ऐसी जमीन भारतके विभिन्न प्रान्तोंमें, जैसे कि पूर्वी पञ्जाब, संयुक्त प्रान्त, बिहार, आसाम, उड़ीसा, मध्यप्रान्त, मद्रास एजेन्सी, मालवा, तथा विन्ध्य प्रदेशमें दिखाई पड़ेगी। खाद्य नीतिपर सलाह देनेवाली समितिकी राय यह है कि निकट भविष्यमें १०० लाख टन अनाजकी पैदा बढ़ानी होगी जिसमें सिंचाईके

प्रबन्धसे ४० लाख टनकी वृद्धि होगी। विभिन्न प्रान्तोंकी कृषि योजनाओं से ३० लाख टन एवं शेष ३० लाख टन बेकार जमीनोंको जोतकर बढ़ाई जा सकेगी। सरकारकी तरफसे बताया गया है कि संयुक्त प्रान्त एवं पश्चिमी बङ्गाल में बेकार जमीनोंको जोतनेका काम आरम्भ हो गया है। परन्तु इस प्रकारसे जितनी जमीनें अभी तक जोती गई हैं उनसे हमारे अन्न संकटका सुलझाव नहीं होगा। हमारी पुरानी जमीनोंकी उर्वरता दिन पर दिन घटती जा रही हैं; बेकार जमीनें जिस तरहसे जोती जा रही हैं उनसे सिर्फ इस कमीको दूर की जा सकती है, उससे ज्यादा कुछ नहीं। इस विषय पर यदि सरकार गम्भीरतापूर्वक ध्यान दे एवं सुचिन्तित आर्थिक योजनाओंको कार्यान्वित कर सके तो हमारे अन्न संकटका सुलझाव हो सकता है। सरकारका कहना है कि १९५१ साल तक हम इस विषयमें आत्म-निर्भर बन जायेंगे एवं बाहर से खाद्यान्न मंगानेकी कुछ भी आवश्यकता न रहेगी। परन्तु इतने जल्द स्वतन्त्र बननेकी सम्भावना कम है। अभी तक कागजी कारवाइयोंको छोड़ कर कोई उल्लेखनीय काम नहीं हुआ। इसमें सरकारी दफ्तरोंकी काफी त्रुटियाँ हैं। वास्तवमें जब काम शुरू होगा उसके बाद भी सिंचाईका प्रबन्ध करनेमें, आर्थिक योजनाओंको कार्यरूप देनेमें एवं बेकार जमीनोंको जोतने योग्य बनाने में कुछ समय जरूर लगेगा। हालमें सरकारने रुपयेकी कीमत घटानेका जो निश्चय किया है उससे डालरकी कीमत लगभग ४४ प्रतिशत बढ़ गई है एवं अमेरिकासे जो खाद्य-सामग्रियाँ आती थीं उनका आयात शायद बिलकुल बन्द हो जायेगी, या उन पर हमें अधिक कीमत देनी पड़ेगी इससे हमारी अन्न समस्या और भी जटिल होगी। इन सब बातोंको महसूस करते हुए यदि अभीसे काम शुरू किया जाय तो उम्मीद है कि पाँच-दस वर्षोंमें हम खाद्यान्नके बारेमें स्वतन्त्र बन सकेंगे।

दामोदर घाटी-योजना

भारतके कृषि-सुधारके इतिहासमें दामोदर घाटी-योजना एक नया अध्याय जोड़ रही है। अब तक अनेक नदियों पर सिंचाईके उद्देश्यसे बाँध, बाँधे गये हैं; कुछ तो बाढ़ नियन्त्रणकी दृष्टिसे और कुछ विद्युत-शक्ति उत्पादन करनेके लिये। दामोदर घाटी-योजना आधुनिक सिंचाई व्यवस्थाके मूल सिद्धान्तके आधार पर बनाई गई है। सिंचाई, बाढ़-नियन्त्रण, विद्युत-शक्ति उत्पादन, जहाजरानी आदि सारी बातें इस बहुमुखी योजनामें सम्मिलित हैं। इस बहुमुखी योजनाके कार्यान्वित होनेपर न केवल दामोदर नदी-क्षेत्र निवासियोंके आर्थिक जीवनमें ही क्रान्तिकारी परिवर्त्तन होगा, बल्कि सारे देशकी आर्थिक काया तक पलट जायेगी एवं हमारी जनताका जीवन-स्तर ऊँचा करनेमें यह विशेष रूपसे सहायक होगी।

दामोदर नदी का उद्गम और बहाव का विवरण देते हुए अर्थ-सन्देश ने लिखा है :—दामोदर घाटी का उद्गम छोटा नागपुर प्रांत में पालामऊ और राँची जिले से घिरे हुए पठार में है। यह पठार कई नदियों का उद्गम-स्थान है। दामोदर के अतिरिक्त यहाँ से निम्न नदियाँ निकलती हैं—उत्तर की ओर बहनेवाली औरङ्गा और उत्तरी कोयल; दक्षिण की ओर बहनेवाली दक्षिणी कोयल, कारो और सांख; पूर्व की ओर बहनेवाली चाराकर, कोनोर, कांची और करकरी। इसी पठार के घने जङ्गलों की गहरी घाटियों से निकल कर दामोदर पालामऊ जिले में लगभग २५ मील बहने के पश्चात् हजारीबाग जिले में प्रवेश करती है। कुछ मील और आगे बढ़ने पर इसमें उत्तर से आनेवाली कोनोर नदी भी आ मिलती है। लगभग ३५ मील और आगे बढ़ने के पश्चात् यह बिहार-प्रांत की अपनी यात्रा समाप्त कर देती है। ठीक बंगाल-प्रांत में प्रवेश करने के स्थान पर

इसमें उत्तर से बड़ी वेगवती सहायक नदी बाराकर आ मिलती है। यहां तक दामोदर की घाटी समुद्र तलसे लगभग १३२६ से ७१३ फीट ऊँची रहती है। बाराकर नदी के मिलनेके पश्चात् दामोदर का बहाव कुछ फैलना आरम्भ होता है और रानीगंज तथा बर्दमान के बीच वह धीमी और विस्तृत नदी बन जाती है। हुगली पहुँचते-पहुँचते जल की मात्रा यद्यपि बढ़ जाती है, तथापि नदी की गति शिथिल और गहराई कम हो जाती है। दामोदर ३३६ मील लम्बी है, जिसमें से इसका १८० मील मार्ग बिहार-प्रांत में और १५६ मील बंगाल-प्रांत में है। लगभग ८५०० वर्गमील में दामोदर और उसकी सहायक नदियों का क्षेत्र फैला हुआ है।

जल सम्पत्ति किसी भी देशके लिए आर्थिक दृष्टिसे गौरव की वस्तु होती है यदि उस जल सम्पत्तिका पूरी तौरसे प्रयोग हो। परन्तु, वास्तव में दामोदर नदी ने अबतक बिहार और बंगाल में संहारका ही कार्य किया है। प्रत्येक वर्षा-ऋतु में दामोदर नदी अतिरिक्त मात्रा में बालू लाकर मैदानी क्षेत्र में जमा कर देती है अतः जब बाढ़ आती है इससे इस क्षेत्र के निवासियों को, विशेष करके बर्दमान जिलेके निवासिओं को, काफी हानि पहुँचती है। दामोदर नदी में अधिक बाढ़ आनेके कई कारण हैं। जिस क्षेत्रमें इस नदी का बहाव है वहाँ हर साल वर्षा-ऋतु में अधिक वर्षा होती है जिस को बालू से भरी हुई दामोदर की तली बहाकर ले जाने में समर्थ नहीं होती और नदी अपने स्वाभाविक मार्ग को छोड़कर आस-पासकी जमीन को बहाना शुरू कर देती है। इस क्षेत्रमें न झील हैं और न घने बन हैं जो कि पानी को रोक सकें। दामोदर तथा उसकी सहायक नदियों की घाटिओं में जो भी बन थे वह भी नष्ट हो चुके हैं। अतः जलवेग रोकने का कोई साधन अब नहीं है।

एक समय वह था जबकि आर्थिक दृष्टिसे अमेरिका के टेनेसी क्षेत्र

निवासियों की अवस्था दामोदर क्षेत्र निवासिओं की अवस्था से कोई अच्छी नहीं थी, लेकिन विज्ञान के द्वारा इस नदीको जिस प्रकार से टेनेसी-क्षेत्र निवासिओंके जीवनका दर्जा ऊँचा करनेके काममें लगाया गया है और जिससे आज पृथ्वी के इस प्रांत में सारे वीरान-क्षेत्र उर्वर क्षेत्रों में परिवर्त्तित हो चुके हैं यह वास्तवमें वैज्ञानिक तथा यांत्रिक साधना के चरम सफलता को सूचित कर रही हैं। इस क्रांतिकारी परिवर्त्तन के कारण इनके भौतिक जीवन की धारा बिलकुल बदल गई है और आज वे कह सकते हैं कि न तो दरिद्रता कोई दैविक घटना ही है और न रोग-शोक आदि शयतानके द्वारा किये जाने योग्य हैं। टेनेसी नदी उत्तरी अमेरिका के सात पश्चिमी रियासतोंमें से बहकर मिसिसिपी नदीमें मिलती है। इसकी पांच सहायक पहाड़ी नदियां हैं। टेनेसी घाटी-योजना कोई एकांगी योजना नहीं है; यह एक बहुमुखी योजना है जिसका लक्ष्य सिर्फ बाढ़ नियन्त्रण करना ही नहीं है बल्कि सिचाई तथा जलशक्ति उत्पादन भी इसमें सामिल हैं तथा जल, भूमि, वन, खनिजपदार्थ—इन सबको इकट्ठा करके, परस्पर सम्बन्धित करके टेनेसी-निवासिओं के जीवनका दर्जा ऊँचा करना, उनको सुख-समृद्धि बढ़ानी ही इसका मूल लक्ष्य रहा है। इस नैतिक आधार पर यह योजना बनी है। लगभग १७५००० एकड़ जमीन इसके लिए साफ की गई है जहां कि आज विज्ञान और यान्त्रिक कौशल के द्वारा २१ बांध बांधे गए हैं। इसमें १९४४ ईसवी तक लगभग ७०० मिलियन डालर रकम व्यय हो चुकी है। यह पूंजी-विनियोग कितना सफल हुआ है उसका श्रेष्ठ निदर्शन वहां के खेतों में, पशु-शालाओं में, कल-कारखानों में, सामाजिक उन्नति में पाया जाता है। यह सारा प्रबन्ध टेनेसी-भूमि को एक नया जीवन प्रदान किया है। जहां एक समय जमीन का कटाव होता था, जमीन खाईयां और टीले से भरी हुई थी वहां जमीन आज जोतने योग्य तथा उर्वर बन चुकी है। इस प्रांत में आज वैज्ञानिक रीति से पैदावार

होती है। इस घाटी का लगभग ५४ भाग वन से आच्छादित है और इस वन-सम्पत्ति पर आधारित उद्योगधन्धों से वार्षिक लगभग ११२ मिलियन डालर कीमत की पैदावार होती है। इस विराट परिवर्तन के पीछे काम कर रही है मनुष्यकी चिन्तन शक्ति जिसके द्वारा इस प्रांतके निवासिओं के जीवन में इतना गहरा परिवर्त्तन सम्भव हुआ है। "बाढ़ भरी टेनेसी के स्थान पर नियन्त्रित नहरें, ऊसर भूमिके स्थान पर उपजाऊ खेत, नदी-घाटिओं के स्थानपर जहाजरानी के योग्य जलमार्ग, धूम्र-भट्टियों के स्थान पर विद्युत-यन्त्रों द्वारा सुसज्जित रसोईघर और कमरे, भूख और महामारी की जगह पोषक पदार्थ और आरोग्य-केन्द्र, ऊबड़-खाबड़ मार्गों के स्थान पर मोटर और रेलगाड़ी की सुविधा, सारांश में दुखी एवं कष्टसाध्य जीवन सुखी एवं समृद्धिशील जीवन में परिवर्त्तित कर दिया गया है।" यह सारा परिवर्त्तन टेनेसी-घाटी-व्यवस्था के फलस्वरूप है।

हमारी दामोदर नदी टेनेसी नदीसे कोई कम नहीं है, लेकिन अभी तक इसका उपयोग नहीं किया गया है। इसलिये प्रकृतिका यह दान हमारे लिये हानिकारक हो रहा है। भारतके पश्चिमी प्रान्तोंमें जो अभी पाकिस्तानमें शामिल हैं सिचाईका कुछ प्रबन्ध हुआ था। इसका तथा इस प्रकारके दूसरे मामूली प्रयत्नोंका लक्ष्य था बहते हुए पानीको नहरोंके जरिये खेतों तक पहुंचा देना, किन्तु अब इस प्रकारके योजनाओंकी सम्भावना कम है। दक्षिण भारतकी नदियोंकी तरह अब हमें वर्षा ऋतुमें नदियोंके बर्बाद होने वाले पानीको सुरक्षित स्थानमें रखना होगा और आगामी वर्षातक वह सिंचाई के कामें लाया जायगा। हैदराबादमें इस प्रकारकी एक छोटी योजना है जिससे नदीका उमड़नेवाला जल निजाम सागर तथा हुसेन सागरमें सुरक्षित किया जाता है। यह प्रबन्ध होनेपर नदीमें बाढ़ नहीं आती। दामोदरघाटी योजनासे भी यह उद्देश्य सिद्ध होगा। इसके अलावा इससे बिजली की पैदा

की जा सकेगी जिसके द्वारा कृषि, गृह-उद्योग, कारखानों तथा यातायात साधनोंको सुविधा होगी।

इस जल सम्पत्ति पर हमारी दृष्टि १९३७ ईसवीमें आकर्षित हुई थी। सन १९४५ में प्रथम दामोदर-योजना-सम्मेलन बुलाया गया। यह सम्मेलन एक बहुमुखी योजना तैयार करनेका तथा प्रारम्भिक आयोजन करनेका निश्चय किया। सम्मेलनके निर्णयके अनुसार इस योजनाके बारेमें सलाह देनेके लिए अमेरिकाके एक विशेषज्ञ इंजीनियर-मण्डलको बुलाया गया। इनके रिपोर्टके आधार पर योजनाके संगठन सम्बन्धी निर्णय किए गए। सन १९४७ के जनवरी महीनेमें जो शेष सम्मेलन हुआ था वह इस योजनाके इतिहासमें अत्यन्त महत्वपूर्ण था। इस सम्मेलनका सिद्धान्त निम्न-प्रकार था :—

(१) केन्द्रीय कानून द्वारा दामोदर घाटी-कारपोरेशनकी प्रतिष्ठा की जाय।

(२) जिन स्थानोंमें सुरक्षित जलाशय बनेंगे तथा बांध बँधवाये जायेंगे वहाँसे हटायी हुई जनताको फिरसे यथार्थ परिस्थितिमें बसाया जाय।

(३) योजना पर लगाए जानेवाले ५५ करोड़ रुपयेके व्ययके वितरणके सम्बन्धमें सम्मेलनने निम्न प्रकार सलाह दी है :—

(क) विद्युत-शक्ति उत्पादनके निर्माण कार्यपर जो रकम लगेगी वह केन्द्रीय सरकार तथा बंगाल और बिहारकी प्रान्तीय सरकारें बाँट लें।

(ख) सिंचाई-निर्माण-कार्य पर जो व्यय हो उसे बिहार और बंगालकी प्रान्तीय सरकारें बाँट लें।

(ग) बाढ़-नियंत्रण-कार्य पर जो पुँजी-व्यय होगी उसे केन्द्रीय और बंगालको सरकारें आधा-आधि बाँट लें ; परन्तु भविष्यमें केन्द्रका इस प्रकारके व्ययसे कोई सम्बन्ध न होगा।

दामोदर घाटी-योजना सफल होने पर हमें निम्न प्रकारकी सुविधाएँ होंगी :—

(क) प्रतिवर्ष दामोदर घाटीके किसी-न-किसी भागमें बाढ़ आती ही रहती है। इनको रोकनेके लिए उत्तरी दामोदर तथा बराकर पर बाँध बाँधनेकी योजना बनाई गई है। निम्न स्थानोंपर बाँध निर्मित करनेका निश्चय किया गया है :—(१) बराकर नदीके बलपाल स्थान पर, (२) दामोदर नदीके ऊपर सानोलापुर स्थान पर, (३) देवलबारी बराकर पर, (४) तिलैया बराकर पर, (५) अय्यर दामोदरपर, (६) बोकारो- बोकारो नदी पर, (७) मध्य कोनार पर। इन बाँधों द्वारा १०५७५००० एकड़ क्षेत्रके ३/४ हिस्सेका जलप्रवाह नियंत्रित होगा और इनमें आज तक आई हुई बाढ़से दुगुनी बाढ़ नियंत्रण करनेकी क्षमता रहेगी।

(ख) ये सात बाँधें केवल बाढ़ नियंत्रणमें ही मदद नहीं करेंगी बल्कि समस्त दामोदर-घाटीको विद्युन्मय बना देंगी। इनके अलावा एक और बाँध सिर्फ जलशक्ति उत्पन्न करनेके लिए निर्मित की जायगी। इससे लगभग ३००००० किलोवट विद्युत-शक्ति उत्पन्न की जा सकेगी।

(ग) बिहार और बंगालकी नदियोंकी स्थिति ऐसी है कि वर्षाऋतुमें उनमें पानी अत्यधिक होता है और पानीके बहावसे बालू कटकर नदियोंके तल पर जमा हो जाती है, लेकिन शीतऋतुमें ये प्रायः सूख जाती हैं। इसलिए इन प्रान्तोंकी वास्तविक समस्या यह है कि इन नदियोंको इस प्रकारसे नियंत्रित किया जाय ताकि इनमें बराबर ही समान रूपसे पानी बहता रहे— न तो कभी बाढ़ आवे और न पानी सूख जाय। दामोदर नदी पर सात जलकुंड ऐसे स्थानों पर और इतनी ऊँचाई पर बनाए जावेंगे कि बाढ़का निय-

त्रण तो होगा ही साथ-ही-साथ खेतीको भी हर वक्त पर्याप्त पानी मिल सकेगा। इससे लगभग १० लाख एकड़ जमीनमें सिंचाईका प्रबन्ध होगा एवं एक करोड़ आठ लाख मन अधिक उपज मिलेगी। शीत-ऋतुमें भी सिंचाईके प्रबन्धसे लगभग ५ करोड़ रुपयेकी उपज मिलेगी। अब तक इस क्षेत्रमें कभी वर्षाकी अत्यधिकताके कारण और कभी पानीकी कमीसे फसल खराब होती रही है; दामोदर-घाटीकी बहुमुखी योजनाके कार्यान्वित होनेसे छोटानागपुर तथा पश्चिमी बंगालका चेहरा तक पलट जायेगा।

(घ) साधारणतः प्रत्येक नदी—दामोदर भी इनमें सामिल है—वर्षाऋतुमें अत्यधिक बालू मैदानी क्षेत्रमें लाकर जमा कर देती है अतः धीरे-धीरे नदीकी तली भर जाती है। बादमें यह बालू हुगली नदीमें आ जाती है। अगर यह व्यवस्था चलती रही तो हुगली नदीका मुंह भी बन्द हो जायेगा एवं यह कलकत्तेकी बन्दरगाहके लिए खतरा हो जावेगा। दामोदर घाटी-योजनाका सफल प्रयोग होने पर इस बन्दरगाहका स्थितिकाल बढ़ जायेगा।

(ङ) एक समय भारतमें नौका संचालन समृद्ध अवस्थामें था। सस्ते दर पर भारी माल ढोनेके लिये नौका आज भी सर्वोत्तम साधन मानी गई है। इस बातके प्रमाण भी मिलते हैं कि ईष्ट इंडिया कम्पनीके ज़मानेमें खानोंसे कोयला नौका द्वारा कलकत्ते तक पहुंचाया जाता था। गत सौ वर्षोंमें नौका यातायातकी अवहेलना ही नहीं की गई है बल्कि जान बूझकर उसकी प्रगति रोकी गई है। दामोदर घाटी-योजनामें एक प्रस्ताव यह है कि दुर्गापुरसे लगाकर रघुनाथपुर तक एक नहर बनाई जाय ताकि दामोदरके साथ हुगली नदीका संयोग स्थापित हो जाय। इसमें नौका संचालनकी उन्नति होगी एवं रेल पर दबाव बहुत कम हो जायेगी

'अर्थ सन्देश' के शब्दोंमें इस निबन्धकी समाप्ति की जाय:—

बाढ़ नियन्त्रण, विद्युत-शक्ति-उत्पादन, सिंचाई और नौका संचालन—

ये दामोदर घाटी-योजनाके चार प्रमुख अंग हैं। इस प्रकारकी बहुमुखी योजना टेनेसी व्यवस्थाको छोड़कर संसारमें दूसरा प्रयोग है, जिसमें प्रकृति-प्रदत्त नदी, वन भूमि और खनिज-सम्पत्तिको एक इकाई मानकर विज्ञान और यंत्रकौशल द्वारा मानव-सेवाके लिए मनुष्य और प्रकृतिमें तारतम्य स्थापित करनेका सफल प्रयत्न किया है। योजनाकी महानता उसके उत्तुंग बांधोंमें नहीं, प्रकृति पर विजय पानेमें नहीं बल्कि उसकी वास्तविक महानता है घाटीके सत्तर लाख निवासियोंकी दरिद्रता, रोग और अज्ञानताकी शृंखला तोड़नेमें। दामोदर घाटीके बाढ़, अकालमें भूख और महामारीके कारण किसानोंका जीवन स्रोत सूख चुका है। योजना इस सूखे स्रोतको पुनः प्लावित करने में सफल होगी, इसमें सन्देह नहीं। आज जो दामोदरके जलमें निर्धनता मूर्त्तमान् मालूम पड़ती है, योजना के कार्यान्वित होने पर वह सुख और समृद्धि का प्रतीक बन जायगी।

जमींदारी-प्रणाली का भविष्य-आगे क्या ?

जमींदारी प्रणालीकी-समाप्ति का प्रश्न अब वादविवादका विषय नहीं रह गया। अब तो यह बात मान ली गई है कि जमींदारी-प्रणाली समाप्त हो जायगी। विभिन्न प्रान्तों में आज ऐसे कानून बनाये जा रहे हैं जिनसे इस प्रणालीका अंत हो जाय और इसके स्थान पर ऐसी भूमि-प्रणाली का निर्माण हो जिससे किसानों तथा सारे देशका आर्थिक उद्धार हो।

भारत में जमींदारी प्रणालीका इतिहास बड़ा विचित्र है। बंगाल में जिस वक्त, इस्ट इंडिया कम्पनी का शासन कायम हुआ उस वक्त उसकी आर्थिक अवस्था

खराब हो चुकी थी और शासनका काम चलाने के लिए उन्हें रुपये की जरूरत थी लेकिन एक नए देशके जनसाधारण से लगान वसूल करना उनके लिए आसान नहीं था। न तो वे इस देशकी भाषाही जानते थे और न इस प्रान्तके विभिन्न इलाकों से परिचित ही थे। यातायात का कोई अच्छा प्रबन्ध भी उस वक्त नहीं था और न उन्हे इस देश से किसी प्रकारकी अभिज्ञताही थी। इस समय भारतीय राजनीति मे विशृंखला चल रही थी। इसके सुयोगसे बहुत से छोटे बड़े लोग जमींदार बन बैठे। इंगलैन्डकी जमींदारी प्रथासे परिचित होनेके कारण इष्ट इन्डिया कम्पनी समझ नहीं सकी कि ये लोग वास्तवमे जमींदार हैं या नही और न समझने का अवसर ही उन्हें मिला। आसानी से लगान का संग्रह करने की उन्हें आवश्यकता थी। कम्पनी ने पहले पंचवार्षिक तथा दशवार्षिक बन्दोबस्त किया परन्तु उन्हें इस में सफलता नहीं प्राप्त हुई। इस लिए सन १७९३ साल में लार्ड कार्नवालिस ने हमारे देश में जमींदारी प्रणाली की नींव डाली। इस में जमींदार को जमीन का मालिक बना दिया गया—जमींदार लगान संग्रह करें और उसका ९⁄१० हिस्सा सरकार को दें ऐसा निश्चित हुआ। वर्तमान समय में यह व्यवस्था बंगाल, बिहार, उड़ीसा, बनारस तथा उत्तर मद्रास में प्रचलित है। जमींदारी प्रथा कायम होने के बाद करीब ५० साल तक जमींदार को इससे विशेष फायदा नहीं था; १९ शताब्दी के मध्यभाग से यातायात का आधुनिक प्रबन्ध होने लगा, सामाजिक राजनीतिक तथा आर्थिक परिवर्तनों के कारण जमीन की कीमत एकाएक बढ़ने लगी। जमींदार लोग इससे फायदा उठाने लगे। जमींदार जो लगान सरकार को देते थे वह पहले से ही निश्चित थी परन्तु जमींदार जमीनपर कितना लगान लगायेगा इसके बारेमें कोई निश्चित विधान नहीं था। इसलिए जिससे जमींदारों को अधिक लगान प्राप्त होती थी उसीको वे जमीन दे देते थे। लालच में पड़कर पुराने किसानों को हटाने में वे जरा भी नहीं हिचकिचाते थे। इस प्रकार से किसानों की चरम दुर्दशा होने

लगी और कृषिको भी काफी हानि पहुँची। जमींदारी प्रणाली को कायम करने में सरकार का पहला लक्ष्य था आसानी से मालगुजारी वसूल करना एवं दूसरा लक्ष्य कृषिका सुधार था। मालगुजारी प्राप्त करने में सरकार को खर्च में बहुत कमी हो गई परन्तु दूसरा उद्देश्य सिद्ध नहीं हुआ। कम्पनी ने सोचा था कि विलायत के जमींदारों की तरह इस देश के जमींदारगन भी कृषि की उन्नति में हाथ बँटावेंगे।

जमींदारों के इस अत्याचार से किसानों को बचाना विशेष जरूरी हुआ इसलिए सन १८५९ तथा १८८५ में बंगाल में दो कानूनें बनाई गईं जिनसे उन किसानों का दखल मान लिया गया जो कि १२ वर्षों से लगातार जमीन को जोतते थे। जब तक ये मालगुजारी देते रहेंगे तब तक जमींदार उनको हटा नहीं सकेगा। इन कानूनों के द्वारा जमीनपर किसानों का अधिकार तो हो गया लेकिन विक्रय का अधिकार नहीं। सन् १९२८ के एक कानून के द्वारा विक्रय का अधिकार भी मान लिया गया लेकिन जिस कीमत में जमीन बिकेगी उसका पाँचवाँ हिस्सा जमींदार को मिलेगा तथा जमींदार उसका विक्रय मूल्य देकर उस जमीन को खरीद भी सकेगा। सन् १९३८ के एक कानून के द्वारा इन बाधाओं का अन्त कर दिया गया। अब किसान बिना किसी रुकावट के जमीन को खरीद भी सकता है और बेच भी। मालगुजारी वसूल करने के अलावा अब जमींदार का और कोई काम नहीं रहा; किसान ही जमीन का वास्तविक मालिक हो गया।

इस प्रकार से किसानों के रक्षा का प्रबन्ध तो हुआ लेकिन जमींदारी प्रथा से समाज को जो विराट क्षति होती रही उसका अन्त नहीं हुआ। बीते हुए डेढ़सौ वर्षों में जमीन की कीमत सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक कारणों से बहुत बढ़ चुकी है, और इससे जमींदार ही फायदा उठा रहा है।

वास्तव मे, सामाजिक कारणों से जमीन की जो कीमत बढ़ी है वह समाज सेवामें ही लगानी चाहिए। इस विषयपर सलाह देने के लिये बंगाल सरकार ने सन १९३८ में एक कमीशन नियुक्त किया ; यह फ्लाउड कमीशन के नाम से प्रसिद्ध है। इस कमीशन का कहना यह है कि वर्त्तमान व्यवस्था इतनी अधिक त्रुटियों से भरी है कि इसको आमूल परिवर्तन करने के अतिरिक्त इसको सुधारने का अन्य कोई उपाय नहीं है। आगे चलकर कमीशन ने बताया कि सन १७९३ में जमींदारी प्रथाके समर्थन में काफी युक्तियाँ थीं परन्तु इन डेढ़सौ वर्षों में स्थिति बिलकुल बदल चुकी है। वास्तव में अन्यत्रवासी जमींदार कृषि की उन्नतिपर कुछ भी ध्यान नहीं देते ; सिर्फ इतना ही नहीं बल्कि अव्यवस्था तथा पारस्परिक झगड़ों के कारण बड़े-बड़े जमींदारों की रियासतें कोर्ट आव वार्डस् के अधिकार में चली जाती हैं। सुव्यवस्थित रूपसे जमींदार अपनी जमींदारी का प्रबन्ध नहीं कर पाते। उनका स्वार्थ तो काश्तकारों से रुपया वसूल करने का होता है। जमींदारों तथा उनके काश्तकारों में सीधा सम्बन्ध भी नहीं रहता ; एक दल मध्यस्थ व्यक्ति कृषिका शोषण करने में लगा है। इनकी संख्या दिन पर दिन बढ़ रही है और किसानों की संख्या दिन पर दिन घटती जा रही है। जमीन की कीमत बढ़ने का फायदा भी जमींदारगण उठाते हैं ; इससे भी सरकार को कई करोड़ रुपये का नुकसान पड़ता है। रैय्यतवारी इलाके में स्थिति अच्छी बताई गई है क्योंकि यहां सरकार के साथ किसानों का प्रत्यक्ष सम्बन्ध रहने के कारण सरकार को भी नुकसान नहीं पहुँचता है और न किसानों का ही उतना शोषण होता है। इन सब कारणों से कमीशन के संख्याधिक सदस्योंने जमींदारी प्रथा को उठा देने की सलाह दी हैं। परन्तु इस कमीशन के दूसरे कई सदस्य संख्याधिक सदस्यों के साथ सहमत नहीं हो सके। उनका कहना यह है कि बंगाल के किसानों की दुर्दशा के लिये सिर्फ जमींदारी प्रथा ही दायी नहीं है। इस दुर्दशा का कारण तो जनसंख्या की

वृद्धि, हमारे उत्तराधिकार कानून, गृह-उद्योग की कमी, कृषिमें सुधार का अभाव, प्रभृति है। इसलिए जब तक इन विषयोंपर ध्यान नहीं दिया जायेगा तब तक सिर्फ जमींदारी प्रणाली को उठाने से ही समस्या का हल नहीं होगा। आगे चलकर इन्होंने बताया है कि जमींदारी प्रथासे कृषि की उन्नति सम्भव नहीं हुई है; जमींदार की जगहपर, यदि राष्ट्र का अधिकार हो जाय तो भी कृषिकी उन्नति तब तक नहीं होगी जब तककी राष्ट्र इस विषयपर गम्भीरतापूर्वक ध्यान न दे। सन १९३८ की कानून से किसान ही जमीन का वास्तविक मालिक है, जमींदार नहीं। इसपर भी यदि कृषिकी उन्नति न हो तो उसके लिए जमींदार किस प्रकार से दोषी हो सकता है? लगान वसूल करने में भी जमींदार को विशेष असुविधाओं का सामना करना पड़ता है, यहां तक की कई सालों का लगान बाकी भी पड़ा रहता है। इन सब कारणों से अनेक जमींदार चाहते हैं कि उन्हें उपयुक्त क्षतिपूर्ति मिल जाय तो जमींदारी को उठा देना ही उनके लिए बेहतर होगा।

चाहे जो हो पर जमींदारी प्रणाली की समाप्ति तो एक सर्वमान्य बात हो गई है। श्री मनीलाल नानावती लिखते हैं, "जमींदारी को समाप्त करना ही स्वतः सुधार की उद्देश्य पूर्ति नहीं है बल्कि यह कृषि उन्नति बढ़ाने में तथा भूमि वितरण को अधिक न्याययुक्त बनाने का एक अनिवार्य साधन है।" परन्तु इसकी समाप्ति के रास्ते में कई असुविधाएं हैं। जमींदारी प्रथा उठ जानेपर लगान वसूली से लेकर हरेक प्रबन्ध सरकार को करना पड़ेगा; जमीन की उन्नति का पूरा उत्तरदायित्व भी उन्हींपर रहेगा। इसकी समाप्ति में सबसे बड़ी समस्या तो क्षतिपूर्ति की है। समाजवादियों का यह मत है कि जमींदारों को बिना क्षतिपूर्ति दिए ही उनसे अधिकार लेने चाहिये। जिन जमींदारों ने जमीन की उन्नति के लिये कुछ प्रबन्ध किया है सिर्फ उन्हीं को क्षतिपूर्ति मिलनी चाहिये। कोई-कोई ऐसी मतका

भी देते हैं कि जमींदारी को जमींदारों के हाथ से छीनकर कोर्ट आव वर्ड-शके हाथमें दे देनी चाहिये और इसके लिये जमींदारों को १५ वर्षतक कुछ भत्ता मिलनी चाहिये। फ्लाउड कमीशन के सदस्यगण क्षतिपूर्त्ति के बारेमें सहमत न हो सके परन्तु १९३५ के भारत शासन विधान की २९९ धाराके अनुसार जमींदारों को क्षतिपूर्त्ति देनी ही होगी। इस कमीशन के मतानुसार वास्तविक लाभका १५ गुना रुपया देने से बंगाल के जमींदारों की आधुनिक आय लगभग आधी रह जायगी। कुछ दिनों से बिहार, मद्रास तथा पश्चिमी बंगाल में जमींदारी प्रथा को उठा देने की बात चल रही है। प्रांतीय सरकारों का विचार ऐसा था कि दीर्घ मियादी बांड या ऋण-पत्र जारी करके क्षतिपूर्त्ति कर देंगे। परन्तु कानून के अनुसार प्रांतीय सरकार ऐसा नहीं कर सकती। यदि जमींदारी को उठाना है तो क्षतिपूर्त्ति के लिए नकद रुपया देना पड़ेगा जो कि किसी भी प्रांतीय सरकार के लिए सम्भव नहीं है। भारत सरकार वर्तमान आर्थिक स्थितिमें प्रांतीय सरकारों को आर्थिक सहायता नहीं दे सकती। इधर जमींदारी प्रणाली उठाई जा रही है, इस अफवाह के फैलने के कारण जमींदारों के लिए भी लगान वसूल करना कठिन हो गया है। किसी-किसी प्रांत में अनाज की उपज बढ़ाने के लिए खेती के कामोंपर सरकारी नियन्त्रण लगाने के प्रबन्ध किये जा रहे हैं; अगर ऐसा हो गया तो जमींदारों की मर्यादा को और भी हानि पहुँचेगी और उनके लिए लगान वसूल करना और भी मुश्किल हो जायेगा। इससे तो यह बेहतर होगा कि जबतक वास्तव में जमींदारी प्रथा को उठा देना सम्भव नहीं हो तब तक उन्हें जमीन की उन्नति के लिए उत्साहित करना चाहिए ताकि अनाज की उपज बढ़ाने में वे भी पूरी तौर से मदद पहुँचा सकें।

जमींदारी-प्रणाली की समाप्ति होने पर यह प्रश्न हमारे सामने आयेगा कि जमींदारी के पश्चात् कौनसी भूमि प्रणाली स्थापित की जाय जिससे कृषि-धन्धों की उन्नति हो एवं किसानों की आर्थिक दशा भी सुधरे। इस

सुधार के लिए तीन प्रणालियाँ हमारे सामने हैं—(१) सामूहिक खेती-प्रणाली, (२) सहकारी खेती-प्रणाली और (३) वैयक्तिक-स्वामित्व खेती-प्रणाली। सामूहिक खेती-प्रणाली रूस में अवश्य सफल हुई है परन्तु इसका निर्माण हमारे देश की परिस्थिति के अनुकूल नहीं होगा। हमारे देश में वैयक्तिक-स्वामित्व-अधिकार व्यक्तियों में इतना दृढ़ है कि काश्तकार सामूहिक खेती-प्रणाली के पक्ष में कदापि नहीं हो सकते। परन्तु हमारे देश की ऊसर भूमि अभी किसी व्यक्ति के अधिकार में नहीं है ; इन जमीनों को यदि सामूहिक खेती-प्रणाली के रूप में परिणत कर दी जाय तो इसमें किसी को भी आपत्ति करने का अवसर नहीं होगा। किसी-किसी देश में सहकारी खेती को भी कुछ सफलता मिली है परन्तु हमारे देशमें सहकारितामें अभीतक पर्याप्त सफलता प्राप्त नहीं हो सकी है। इसलिए जाँचके रूपमें यह प्रणाली स्थापित कर दी जा सकती है, व्यापक रूपसे नहीं। इस प्रकार से यदि इसमें सफलता हो तो इसकी विस्तृत स्थापना पर विचार हो सकता है। इस स्थितिमें हमारे विचार में जमींदारी के स्थान पर वैयक्तिक-भूमि प्रणाली की स्थापना होनी चाहिए। इससे किसानों में कृषि-उन्नति-कार्य में उत्साह बढ़ेगा और कृषि पदार्थों की उपज में पर्याप्त वृद्धि होगी। वैयक्तिक-भूमि-प्रणाली हमारे देशकी प्रथाके तथा मानव प्रकृतिके अनुकूल भी होगी और इसमें कोई ऐसी बात भी नहीं होगी जिसको चालू करने में किसी बात का जोखम समझा जायगा।

प्रश्न यह है—कृषक-भू-स्वामित्व-प्रणाली का कैसे विकास किया जाय और कैसे इसे सुदृढ़ नींव पर खड़ा किया जाय ? इस विषय में श्री मनीलाल नानावटी ने निम्नप्रकार सलाह दी है :—
(१) सारी भूमि पर सरकार का स्वामित्व घोषित करना, भूमि में मध्यग-हितों का उन्मूलन, भूमि केवल वास्तवमें जोतनेवालों को मौरूसी हक पर देना, परन्तु उन्हें भी भूमि बेचने तथा विभाजित कर देनेका अधिकार

न देना । (२) प्रत्येक खेत एक आर्थिक इकाई तथा जहां तक हो सके, एक चकमें हो । (३) कृषक को जहां तक हो खेतपर या उसके निकट रखना (४) भूमिको अनुत्पादक ऋणके लिए प्रतिभूति रूप देने पर प्रतिबन्ध लगाना । (५) भूमि वही जोते जिसका उसपर स्वामित्व है अथवा मौरूसी हक है । (६) बटाई प्रथा का अन्त करके उसके स्थानपर नकद लगान को, जो सरकारी लगान के कुछ अँशके अनुपात में होगा, खेती संगठित करना तथा लगान को मूल्यस्तर से सम्बन्धित करना । (७) भूमिपर क्रमशः वर्धमान लगान लगाना, अलाभकारी खेतों पर कम अथवा बिलकुल लगान न लगाना, एवं अधिक आयवाले मनुष्यों से कृषि-आय-कर द्वारा राजस्व में वृद्धि करना । (८) उपज के आधार पर भूमि के मूल्य का पट्टा बन्द करना ।

भारत में औद्योगिक विकास

पृथ्वी के शिल्प प्रधान देशोंमें भारत का स्थान आठवां है, लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि भारत में वास्तविक औद्योगिक विकास हो सका है जिससे वह पाश्चात्य के शिल्प प्रधान देशों का मुकाबला कर सके। हमारे यहां सिर्फ उपभोग सामग्रियां पैदा करनेवाले कुछ कारखानें प्रतिष्ठित हुए हैं लेकिन औजार, रसायनिक सामग्रियां प्रभृति अभी भी हमें दूसरे देशों से मंगानी पड़ती है । हमारे अधिकांश कारखानें बहुत ही छोटे पैमानेपर हैं या गृह-उद्योग के तौर पर हैं । उद्योगधन्धोंमें हमारी जन-

संख्या का प्रतिशत १० व्यक्ति काम करते हैं जिनमें की कारखानों में प्रतिशत १॥ व्यक्ति ही नियुक्त हैं।

भारतमें ब्रिटिश-शासन कायम होनेके पहले बहुतसे कारखाने थे। परन्तु उस वक्तके कारखानोंके साथ आधुनिक कारखानोंकी तुलना नहीं की जा सकती। जिस समय पृथ्वीके सारे देश कृषि प्रधान थे उस समय भारतके कारखानोंमें अनेक प्रकारकी सामग्रियां तैयार होती थीं तथा बाहर भेजी जाती थीं। ईस्ट इण्डिया कम्पनीने हमारी सामग्रियां यूरोपमें भेजकर फायदा उठानेका प्रबन्ध किया एवं हमारे उद्योग-धन्धोंको उत्साहित भी किया। जबसे इंगलैन्डमें औद्योगिक क्रान्ति शुरू हुई तबसे ब्रिटिश नीति बदल गई। साथ-ही-साथ ईस्ट इण्डिया कम्पनीकी वाणिज्य नीति भी बदल गई और वह हमारे उद्योग-धन्धोंको दबानेमें लग गई। उस समय हमारे देश की राजनीतिक स्थिति बहुत ही नाजुक थी; इसलिए राष्ट्रीय सरकार उद्योग-धन्धोंको मदद पहुंचानेके लिए या पाश्चात्य देशोंकी औद्योगिक क्रान्तिसे फायदा उठानेके लिए आगे न बढ़ सकी। भारतको अनाज तथा कच्चा माल पैदा करनेवाला देश बनाना ही कम्पनीका लक्ष्य हुआ। उन्नीसवीं शताब्दीके उत्तरार्धमें ब्रिटिश सरकारने आर्थिक विषयोंमें हस्तक्षेप करनेकी नीतिको छोड़ दिया। भारतपर इसका गहरा असर हुआ और भारत सरकारको भी इसी नीतिका अनुगमन करना पड़ा। इस नीतिसे इंगलैन्डमें उद्योग-धन्धोंका काफी विकास हुआ परन्तु भारतकी समस्याका समाधान नहीं हुआ। उन्नीसवीं शताब्दीके अन्तमें मद्रास सरकारने उद्योग-धन्धोंके प्रति कुछ सहानु-भूति दिखाई एवं दो एक कारखाने भी खुलवाई। बीसवीं शताब्दीके आरम्भमें लार्ड कर्जनने भी उद्योग-धन्धोंको उत्साहित करनेकी नीतिको ग्रहण किया एवं सन् १९०५ में एक शिल्प तथा व्यापारिक दफ्तर भारत सरकारके अधीनमें खोला गया। सन् १९०६ में मद्रासमें एक प्रान्तीय शिल्प दफ्तर स्थापित हुआ लेकिन भारत मंत्रीने भारत सरकारको तथा मद्रासके प्रान्तीय

सरकारकी इस नीतिका अनुमोदन नहीं किया वल्कि विरोधपूर्ण समालोचना किया। इस पर भारत सरकार तथा प्रान्तीय सरकारको उद्योग-धन्धोंसे हाथ समेट लेना पड़ा एवं मद्रासमें सरकारको उद्योगसे जो एलुमिनियमकी फैक्टरी स्थापित हुई थी वह भी उठानी पड़ी। इस प्रकारसे जब पहली लड़ाई शुरू हुई तब हमारे देशमें केवल कुछ पाटके तथा कपड़ेके कारखाने थे एवं १९०७ सालमें टाटाका कारखाना स्थापित हुआ था।

पहली लड़ाई शुरू होनेके बाद उद्योग-धन्धोंमें कुछ उन्नति हुई। बम्बईमें कपड़ेके विभिन्न कारखाने, कागज बनानेके कारखाने, फल्यक्स एवं तेल निकालनेवाले कारखानोंमें कुछ वृद्धि हुई। बंगालके पाटके कारखानों एवं कोयलेकी खानों पर, एवं मद्रासके चमड़ा, साबुन प्रभृतिके कारखानों पर भी लड़ाईका असर पड़ा। संयुक्त प्रान्त तथा पंजाबके गृह-उद्योग भी युद्धकालीन मांगसे प्रभावित हुए। परन्तु लड़ाई के सुयोगसे भारत को जितनी सुविधाएँ मील सकती थीं उतनी न मिलीं, कारण शिल्पके कई एक साधनोंकी कमी हमारे देशमें थी। औजार तथा रासायनिक सामग्रियां, शक्ति पैदा करनेके साधन तथा निपूण कारिगरोंके अभावसे हम लड़ाईसे पूरा फायदा नहीं उठा सके। औद्योगिक विकाशके बारेमें सरकारने भी कोई सुस्पष्ट नीति ग्रहण नहीं की। इस कारणसे नए उद्योग-धन्धोंका भविष्य अनिश्चित रहा। सरकारने सोचा था कि लड़ाई जल्द ही खतम हो जायेगी लेकिन वास्तवमें यह अधिक समय तक चलती रही। इसलिए पहले पहल भारतमें उद्योग-धन्धोंको कायम करनेकी बात सरकारको सूझी और भारतकी शिल्प सम्भावनाकी जांच करनेके लिए एक औद्योगिक समिति कायम हुई। इस समितिके निष्कर्ष निम्न प्रकारके थे :—(१) केन्द्रवर्त्ती तथा प्रांतीय सरकारोंके अधीनमें एक-एक शिल्पदफ्तर स्थापित करना चाहिए और जो सामग्रियां भारतमें बनती हैं सरकारको अपने व्यवहारके लिए उन्हें विदेशसे नहीं मंगानी चाहिए। (२) भारतमें औद्योगिक शिक्षाका पूरा प्रबन्ध होना

चाहिए। (३) भारतकी आर्थिक सम्भावनाओंको कामयाब करके देशको आर्थिक दृष्टिसे स्वतंत्र बनाना चाहिए ताकि विदेशसे जहां तक हो सके कम सामग्रियां मंगानी पड़े। इसके लिये उद्योग-धन्धोंमें सरकारको आर्थिक-मदद पहुंचानी चाहिए तथा दूसरी सुयोग सुविधाएं भी देनी चाहिए। सन् १९१९ के अप्रेलसे लगा कर १९२० के मार्च महीने तक भारतमें विभिन्न प्रकारकी बहुत-सी कम्पनियां स्थापित हुईं। पहली लड़ाईके वक्त औद्योगिक उन्नतिके बारेमें भारत सरकारमें जो जोश पैदा हुआ था वह स्थायी नहीं हुआ। एक ओर तो यूरोपमें स्वाभाविक परिस्थिति पुनः कायम हो जानेसे यूरोपके देशोंमें बनी हुई सामग्रियां हमारे देशमें हमारी सामग्रियोंके साथ प्रतिस्पर्द्धा करने लगीं एवं दूसरी ओर औद्योगिक विकासके बारेमें भारतकी विदेशी हुकुमत उदासीन बन गई। मुद्रा-विनिमय-दरकी घटबढ़से भी हमारी आर्थिक स्थिति प्रभावित होने लगी। इन सब कारणोंसे जो सब उद्योग-धन्धे प्रतिष्ठित हो चुके थे उन्हें संरक्षित करनेकी आवश्यकता हुई। इस विषयपर सलाह देनेके लिए भारत सरकार ने एक शुल्क समिति कायम किया और इसके सिद्धांतके अनुसार एक संरक्षण नीति ग्रहण किया जिसका उद्देश्य चुने-चुने उद्योग-धन्धोंको सुरक्षित करना था। किसी उद्योग-धन्धोंको संरक्षित किया जायेगा या नहीं इसके बारेमें टेरीफ बोर्ड या शुल्क-संस्था सरकारको सलाह देगी एवं इसके बाद आखरी सिद्धांत सरकार ग्रहण करेगी। जब किसी उद्योगके लिये शुल्क-संस्था संरक्षणका अनुमोदन करेगी तब सबसे पहले शुल्क-संस्थाको यह देखना होगा कि उसके व्यवहारमें आनेवाला कच्चामाल, कारीगर प्रभृति इस देशमें पर्याप्त हैं या नहीं एवं उत्पादन-वस्तुकी खपत इस देशमें हो सकती है या नहीं। इस संस्थाको साथ ही साथ यह भी सोचना होगा कि जिस शिल्पको संरक्षित करनेकी सलाह वह दे रही है वह अन्त दिनोंमें विदेशमें बनी हुई सामग्रियोंके साथ प्रतिस्पर्धा कर सकेगा या नहीं। सरकारकी इस नीतिमें ऐसी बहुतसी

कमजोरियां थीं जिनके आधार पर सरकारने बहुतसे जरूरी उद्योग-धन्धोंको एक न एक बहाना लगाकर संरक्षित करना नामंजूर किया। जो उद्योग धन्धे पहले ही प्रतिष्ठित हो चुके थे सिर्फ उन्हें कुछ मदद मिली एवं संरक्षणनीतिके सुयोगसे चीनीके कुछ कारखाने संस्थापित हुए।

जब दूसरी लड़ाई शुरू हुई तब फिरसे औद्योगिक स्थिति पर सरकार-की नजर पड़ी। पहली लड़ाईके बीस साल बाद दूसरी लड़ाई शुरू हुई लेकिन अतीतकी ओर हम जब देखते हैं तो औद्योगिक विकाशके बारेमें कोई विशेषता हमारी नजर में नहीं आती। उपभोगसामग्री पैदा करने वाले कई उद्योग धन्धे हमारे देशमें प्रतिष्ठित हो चुके हैं लेकिन मौलिक शिल्प हमारे देशमें एक भी नहीं है। जब पूर्वी देशमें लड़ाई शुरू होकर घरके नज़दीक आ पहुंची एवं बाहरसे मौलिक सामग्रियों की आयात बिलकुल बन्द हो गई तब हमारी कमजोरी और भी स्पष्ट हुई। नया उद्योग प्रतिष्ठित होना तो दूर रहा पुराने उद्योग-धन्धों का भी जीर्णोद्धार होना मुश्किल हो गया। सबसे दुःखकी बात तो यह है कि जब लड़ाईके सुयोगसे अष्ट्रेलिया, कैनाडा प्रभृति देशोंमें आर्थिक विकाश द्रुतगतिसे होने लगा तब भी भारतकी अवस्थामें कोई परिवर्त्तन नहीं हुआ। पूर्वी प्रदेशमें जो लड़ाई चल रही थी उसमें मदद पहुँ-चानेके लिए भारत ही केन्द्रवर्त्ती देश था एवं इसी वजहसे पूर्वी देशोंका एक आम जलसा भी यहां हुआ था। इसवक्त अमेरिका और इंगलैन्ड इन दोनों देशोंसे शिल्पविशेषज्ञोंका आगमन भारतमें हुआ था। इन्होंने भी भारतमें मौलिक शिल्प प्रतिष्ठित करनेकी सलाह दी परन्तु विदेशी हुकूमत पर इन सब बातोंका कुछ भी असर नहीं हुआ। सरकारकी युद्धोत्तर औद्योगिक नीति क्या होगी इस पर अनेक शिल्पपतियोंने प्रश्न उठाया तब सरकारने यह सूचित किया कि जो शिल्प लड़ाई के वक्त लड़ाईमें मदद पहुंचानेके लिए संस्थापित होंगे जरूरत पड़ने पर लड़ाई के अंतमें उन्हें संरक्षित किया जावेगा। इस पर लड़ाई में मदद पहुंचाने वाले कई एक छोटे छोटे उद्योगधन्धे इस देशमें शुरू हुए।

हमारे पुराने उद्योगधन्धों पर लड़ाईका असर जरूर पड़ा और इनका उत्पादन भी जहांतक हो सका बढ़ाया गया। सूती, रेशमी तथा ऊनी-कपड़े, तांतके कपड़े तथा चमड़ेकी पैदावार जहांतक हुई बढ़ाई गई एवं लड़ाईके लिए जरूरी नए ढंगके कुछ कपड़े भी यहां बनने लगे। इस वक्त यूरोपसे कपड़ेकी निर्यात बन्द होनेके कारण आस्ट्रेलिया, न्युजिलैन्ड, दक्षिणी अफ्रिका एवं और भी कई देशोंमें हमारे कपड़ेका निर्यात शुरू हुआ। भारतमें बने हुए सारे ऊनी कपड़ों को सरकारने खरीद लिया। लोहा तथा इस्पातकी तैयारी भी बहुत ज्यादा बढ़ाई गई, नए ढंगके इस्पात, मालगाड़ी तथा युद्धके लिए आवश्यक अन्य कई सामग्रियां भारतमें बनने लगीं एवं कई एक रासायनिक उद्योगोंकी प्रतिष्ठा हुई। विभिन्न प्रकारकी कांच की सामग्रियां, दवाइयां, कागज, छोटे छोटे हथियार, साधारण औजार, बिजलीका सरंजाम प्रभृतिकी भी पैदावार शुरू हुई। रसायनिक शिल्पमें कई एक कारखाने प्रतिष्ठित हुए लेकिन वे हमारी जरूरतके अनुसार रासायनिक सामग्रियां तैयार नहीं कर सकते। [illegible] विशाखापट्टममें जहाज बनानेका तथा मरम्मत करनेका कारखाना एवं बंगलोर में हिन्दुस्तान विमान-कम्पनी खोली गई।

लड़ाईके वक्त हमारे पुराने कारखानोंमें मालकी तैयारी जरूर बढ़ी लेकिन नए कारखाने इने गिने ही संस्थापित हो पाये। मशीनोंके अभावसे हमारे सारे पुराने कारखानोंकी अवस्था खराब होने लगी एवं सारे पुर्जे कमजोर होने के कारण उत्पादनमें कमी होने लगी। युद्धोत्तर समयमें उत्पादन घट जानेके अन्य कई कारण भी आ उपस्थित हुए। इस सम्बन्धमें कच्चे मालकी कमी एवं यातायात साधनोंकी असुविधाएं उल्लेखनीय हैं। रहन सहनका खर्चा बढ़नेके कारण श्रमिकों में असंतोष फैल गया जिससे हड़तालोंकी संख्या बहुत बढ़ गई एवं इससे भी उत्पादनमें हानि पहुंची। देशका [illegible] भारतकी आर्थिक त्रुटियोंसे भरा हुआ है। उद्योगधन्धोंके बारेमें सरकारी नीति बहुत दिनों तक अस्पष्ट रही एवं पदाधिकारी व्यक्तियोंके समाजवादी भाषणोंसे पूंजीपतियों

का मन भी खट्टा पड़ गया। इसका असर इतना गहरा हुआ कि आज सरकारकी औद्योगिक नीति सुस्पष्ट होने पर भी पूंजीपतियों को भरोसा नहीं होता। १९४७ के दिसम्बर महीनेमें भारतसरकारने एक औद्योगिक सभा की जिसके सिद्धांतके अनुसार श्रमिक तथा मालिकों में त्रैवार्षिक शिल्पशान्ति का समझौता हुआ था एवं उत्पादन बढ़ानेके लिए सरकारने एक "शीघ्र-योजना" एवं एक "भविष्य योजना" ग्रहण किया लेकिन इनसे भी आशानुरूप फल नहीं निकला।

देशके स्वतंत्र होनेके बाद पहले सालमें औद्योगिक विस्तारके लिए भारत सरकारने जो कुछ किया उसके बारेमें दो तक बातें कह कर इस निबन्ध को समाप्त किया जायेगा। सन १९४८ के मार्च महीनेमें भारतमें बनी हुई ८ हजार टनकी जहाज जल ऊपा पहले पहल सिन्धियाके कारखानेसे समुद्रमें उतारी गई। भारतमें कमसे कम बीसलाख टन वजनकी जहाजें होनी चाहिए इस कमीको पूरी करनेके लिऐ वार्षिक ५० हजार टनकी जहाजें बनानी भारत सरकारका उद्देश्य है। बंगालोरके कारखानेमें अभीतक मरम्मत तथा पूर्जा जोड़नेकाही काम होता है। भारत सरकारने अमेरिकाकी एक कम्पनीके साथ बन्दोबस्त किया है ताकि आगामी दो वर्षोंमें कमसे कम ३० हवाई-जहाजें भारतमें बन सकें। टूटी-फूटी मोटर गाड़ियोंको मरम्मत करनेके लिए भारतमें सात कारखानें काम कर रहे हैं। कलकत्ता तथा बम्बईमें मोटर गाड़ी तैयार करनेके लिए दो कारखानें स्थापित किए गए हैं एवं उम्मीद है कि आगामी ६ वर्षोंमें भारतमें मोटर गाड़ियां बनने लग जायेंगी। टाटाके कारखानेमें रोलर बनाना शुरु होगया है। भारतमें वार्षिक ६२ हजार साईकल गाड़ियां, १५०० सिलाईकी मशीनें, १२ लाख लालटेन बत्तियां, बिजलीकी मोटरें प्रभृति बनने लगी हैं। इस्पातका एक नया कारखाना तथा कोयलेकी खानों से खनिज तेल निकालनेके लिऐ मशिनोंके कई कारखाने खुलने वाले हैं। सिन्द्रीमें खाद बनाने वाला एक कारखाना स्थापित हुआ है और उम्मीद

है कि आगामी दो वर्षोंमें यह कारखाना वार्षिक ३॥ लाख टन एमोनियम सल्फेट तैयार कर सकेगा। इस प्रकारसे औद्योगिक विकासका कुछ कुछ काम चल रहा है परन्तु जब तक भारत सरकार एक निर्दिष्ट आर्थिक योजनाके आधार पर आगे बढ़नेका प्रयत्न नहीं करेगी तब तक हमारी विराट आर्थिक सम्भावना पूरी तौरसे कामयाब नहीं हो सकेगी।

भारतीय उद्योग-धन्धोंमें रकमकी पूर्त्ति—औद्योगिक पूँजी विनियोग संस्था—विदेशी पूँजीकी महत्ता

हमारे उद्योग-धन्धोंमें वर्तमान समयमें निम्न स्थानोंसे ,रकमकी पूर्ति होती है:—(१) मैनेजिंग एजेन्ट या प्रबन्ध अभिकर्त्ता, (२) बैंक, (३) अमानत, (४) शेअर, (५) ऋणपत्र। बैंकोंसे अल्पमियादी तथा मध्यमियादी रकम पायी जा सकती है, दीर्घमियादी नहीं। अतीतमें औद्योगिक बैंक प्रतिष्ठित करनेकी चेष्टा विफल हुई। अनेक शिल्पपतियोंको बैंकसे कर्ज लेना पसन्द भी नहीं क्योंकि इससे एक ओर तो कच्चामाल या कोई सामान बैंकके पास बन्धक रखना पड़ता है एवं दूसरी ओर इनपर बैंकका कुछ दबाव भी रहता है। सार्वजनिक अमानतें यानी पब्लिक डिपोजिट सिर्फ अहमदाबाद एवं कुछ इलाक

बम्बईमें प्रचलित है। आधुनिक समयमें स्थापित किये गये उद्योग-धन्धोंमें शेअरी रकम तथा ऋणपत्रोंकी अधिकता है।

भारतीय उद्योग-धन्धोंमें प्रबन्ध अभिकर्त्ताओंका स्थान—जिनमें उद्योग-धन्धोंमें शेअरी मूलधन अधिक है वहाँ भी प्रबन्ध अभिकर्त्ताका प्रभाव ज्यादा रहता है। जिसवक्त भारतमें आधुनिक उद्योग धन्धोंकी शुरुवात हुई उसवक्त भारतमें राजनैतिक विश्रृंखला चल रही थी; उस वक्त बंगालमें अंग्रेज प्रबन्ध अभिकर्त्ताओंकी रकमसे पाटके कारखानें तथा बम्बईप्रांतमें भारतीय प्रबन्ध अभिकर्त्ताओंकी रकमसे कपड़ेके कई कारखानें स्थापित हुए थे। प्रबन्ध अभिकर्त्ताओंने उद्योग-धन्धोंको स्थापित ही नहीं किया बल्कि प्रारम्भकालमें सारी रकम लगाई तथा इनकी सारी जोखम सारा प्रबन्ध अपने पर लेलिया। दूसरे जो लोग इन धन्धोंकी शेयरोंको खरीदते थे वे भी इन्हीं की महाजनी पर। बैंकोंसे उद्योग-धन्धोंको जो अल्प तथा मध्यम मियादी रकम मिलती है वह भी प्रबन्ध अभिकर्त्ताओंके जिम्मेपर। पाश्चात्य देशोंमें कम्पनीके मूल संस्थापक कम्पनी चालू होने पर उससे सम्बन्ध नही रखते हैं लेकिन हमारे देशकी करीब सारी कम्पनियां प्रत्येक विषयमे प्रबन्ध अभिकर्त्ताओंके बलपर ही अवलम्बित होती हैं। इनका संस्थापन, इनके लिए रकम संग्रह, इनका प्रबन्ध, मंदीके समय इनका संरक्षण आदि सारे काम इन्हींको करना पड़ता है। इसलिए दोषगुणोंसे भरे हुए प्रबन्ध अभिकर्त्ताओं पर हमारे उद्योग-धन्धोंको अभितक निर्भर करना पड़ता है।

प्रबन्ध अभिकर्त्ताओंके द्वारा उद्योग-धन्धे स्थापित किये जानेमें कुछ त्रुटियाँ दिखाई पड़ने लगीं। इनका कारबार ज्यादातर पारिवारिक होनेके कारण अनेक क्षेत्रोंमें कमजोरियां दिखाई पड़ने लगीं। अधिकसे अधिक शेअर इन्हींके हाथोंमें रहनेके कारण प्रबन्धका पूरा दायित्व इन्हीं पर आ पड़ता है। बाहरी जो

लोग शेयर खरीदते हैं वे ज्यादातर प्रबन्ध अभिकर्त्ताओंके अपने या परिचित व्यक्ति होते हैं। कई क्षेत्रोंमें प्रबन्ध अभिकर्त्ताओंने ऐसे धन्धे शुरु किये जो अन्तमें लाभदायक नहीं हुए। इसके अलावा एक कम्पनीकी रकम दूसरेमें लगा देना तो बहुतही मामूली बात है। इन त्रुटियों को हटानेके लिए सन १९३६ में कम्पनी कानूनमें मौलिक परिवर्तन किया गया जिससे कोई भी बैंक प्रबन्ध अभिकर्त्ताओं के साथ सम्बन्धित नहीं रह सकती। दूसरी कम्पनियोंमें भी इनका प्रबन्ध २० सालसे अधिक काल तक जारी नहीं रहेगा परन्तु इनको फिरसे शेयरधारीगण प्रबन्ध अभिकर्त्ताके स्थान पर नियुक्त कर सकेंगे। प्रबन्ध अभिकर्त्ताओंकी दस्तूरी, उनके दफ्तर का खर्चा, एक कम्पनी की रकम दूसरी कम्पनी में लगाने का अधिकार आदि पर इस कानून के द्वारा नियंत्रण लगाया गया है।

वर्त्तमान व्यवस्था में कितनी भी त्रुटियां क्यों न रहें अभी हमारी स्थिति जैसी है उसमें उद्योग-धन्धोंको आगे बढ़ाने का काम इन सब पूंजीपतियों के सहयोग पर ही अवलम्बित रहेगा कारण हमारे देश में न तो कम्पनी संस्थापक ही हैं और न रकम लगानेवालों की संख्या ही अधिक है। इसलिए किसी भी उद्योग-धन्धों को क्यों न देखा जाय, वहीं ही आदि से अन्त तक प्रबन्ध अभिकर्त्ताओं का प्रभाव दिखाई पड़ेगा।

औद्योगिक अर्थ-विनियोग संस्था—कुछ दिन पहले सरकारने उद्योग-धन्धोंमें मध्यम तथा दीर्घ मुद्दती आर्थिक मदद पहुंचाने के लिए इस संस्था की स्थापना किया है। उम्मीद किया जाता है कि अर्थ-प्रबन्धके बारेमें यह संस्था उद्योग-धन्धोंको काफी मदद पहुंचानेमें सफल सिद्ध होगी एवं इससे भारतीय उद्योग-धन्धोंका द्रुत विकास तथा जीर्णोद्धार सम्भव होगा। इस संस्था के बारे में मुख्य बातें इस प्रकार की हैं—(१) इस संस्था का क्षेत्र सिर्फ प्रान्तों में

जानकारों का कहना है कि देशमें लगभग हजार करोड़ रुपये की विदेशी पूंजी सरकारी तथा अर्द्ध सरकारी कामोंमें तथा और एक हजार करोड़ की विदेशी पूँजी व्यापार तथा उद्योगधन्धों में लगी हुई है।

विदेशी पूंजी से असुविधा—इन उद्योगों के द्वारा करोड़ों रुपया प्रति वर्ष औद्योगिक लाभ के रूप में भारत से बाहर जाता है। इनके द्वारा स्वदेशी उद्योगों के विकाश में बाधा पड़ी है। सन् १९१२ में अल्फ्रेड च्याटरटन ने कहा है कि यदि भारतीय उद्योग-धन्धों को संरक्षित किया जाय तो उससे भारतीयगण लाभ न उठा सकेंगे कारण विदेशी पूंजी तथा संगठन भारत में आता रहेगा। सन् १९१८ में विदेशी पूंजी के विरुद्ध में मालवीयजीने अपना विचार प्रकट किया। सन् १९२५ में फिर विदेशी पूंजी समिति के भारतीय सदस्यों ने सम्मति प्रकट की कि भारतीय उद्योग-धन्धों का विकास विदेशी पूंजी की अपेक्षा भारतीय पूंजी के द्वारा ही किया जाय। सलाहकार योजना बोर्ड ने कुछ दिन पहले विदेशी पूंजी के बारे में लिखा है कि औद्योगीकरण के लिए भारतमें ही पूँजी प्राप्त हो सकेगी ··· निःसंदेह औद्योगिक कलाविदों और पूंजीगत मालकी आवश्यकता अवश्य होगी परन्तु उपर्युक्त कार्यों के अतिरिक्त विदेशी पूंजी को स्थान नहीं मिलना चाहिए।

विदेशी पूंजीसे भारत को क्षति:—(१) औद्योगीकरण का अधिकांश लाभ विदेशियों को होता है (२) विदेशी पूंजीवाद हमारे राजनैतिक प्रगति में बाधा उपस्थित करता है एवं भविष्य में भी राष्ट्रीय स्वतन्त्रता का घातक बन सकता है, (३) विदेशी पूंजीपति भारतीयों को औद्योगिक कला-कौशल सीखने का सुविधा नहीं देते, (४) विदेशी पूंजी से आर्थिक विकाश होने पर राष्ट्रीय आयका ज्यादातर हिस्सा विदेश में जाता रहता है एवं जनता के जीवन-स्तर में वृद्धि करनी कठिन हो जाती है, (५) विदेशी पूंजी के विनियोग से अन्तर्राष्ट्रीय लेन-देन की समानता तो होती ही नहीं बल्कि यह हरवक्त ही देशके प्रतिकूल बनी रहती है।

किया है कि इस सम्बन्धमें उसकी ६ अप्रैल १९४८ को घोषित औद्योगिक नीतिका ही अनुसरण किया जावेगा। यदि किसी उद्योगका राष्ट्रीयकरण हुआ भी तो उसके मालिकको चाहे वह भारतीय हो, चाहे विदेशी उचित क्षति पूर्ण मिलेगा।

अन्तर्राष्ट्रीय बैंकसे ऋण—भारत अपनी आर्थिक योजनाओंको कार्यान्वित बनानेके लिये इस बैंकसे ऋण लिया है। बैंकके सीमित साधनों और ऋण नियम सम्बन्धी अड़चनोंके कारण हमें बैंकसे बहुत अधिक आशा नहीं रखनी चाहिये। वह कुछ विशिष्ट योजनाओंके लिये अर्थ दे सकेगा परन्तु राष्ट्रीय पुनर्निर्माणकी सम्पूर्ण योजनाओंके लिये उस पर निर्भर रहना उचित न होगा। कुछ दिन पहले रुपयेका जो मूल्य ह्रास किया गया है उससे डालरकी कीमत बढ़ गई है एवं हम जो विदेशी कर्ज लेंगे उसमें प्रतिशत ३० रुपया ज्यादा देना पड़ेगा और इसलिये विदेशी पूंजीके प्रति हमारा आकर्षण कम हो जायगा। साथ ही साथ हमें इस विषय पर ध्यान रखना पड़ेगा कि रुपयेका विनिमय दर घट जाने के कारण हमारे आयात वाणिज्यमें जो रुकावट पहुंचेगी, उससे बचनेके लिये विदेशी पूंजीपतिगण सरकारकी नवीन नीतिके सुयोगसे भारतमें रकम लगाकर कारखाने स्थापित करेंगे एवं कोई-कोई क्षेत्रमें इनकी प्रतियोगितासे हमारे उद्योग-धन्धोंको हानि पहुंचनेकी सम्भावना है; इन विषयों पर सरकारकी सचेतन दृष्टि रहनेकी आवश्यकता है।

हमारी आर्थिक योजना—उसका लक्ष्य और आधार

वर्तमान समयमें आर्थिक-योजनाके सम्बन्धमें इतनी आलोचनाएँ हो चुकी हैं कि साधारण व्यक्ति भी इन शब्दोंसे परिचित हैं। किसी राष्ट्रके साम

परिचित होना एक बात है पर इसके बारेमें पूरी जानकारी रखनी बिल्कुल दूसरी बात है। इसलिये आर्थिक योजनाके मूल सिद्धान्तों पर प्रकाश डालने की चेष्टा की जाती है। पहली लड़ाईके पहले राष्ट्रीय सरकार आर्थिक व्यवस्थामें ज्यादातर हस्तक्षेप नहीं करती थी लेकिन अब आर्थिक उद्देश्य को सफल करनेके लिये आर्थिक व्यवस्थाको एक विशेष रीतिसे अपने प्रयोजनके अनुसार संगठित करने का प्रयत्न कर रही है। पूंजीवादी आर्थिक व्यवस्था बाधाहीन प्रतियोगिता के आधार पर स्थित है एवं इस में सिर्फ वही पूंजीपति सफल हो सकते हैं जिनके पास आर्थिक साधनों का बाहुल्य है। पूंजीवादी व्यवस्था में उत्पादन धर्म की दृष्टि से सिर्फ बेचने ही के लिये सामग्रियां बनाई जाती हैं और बेचने का उद्देश्य सिर्फ मुनाफा करना ही होता है, जनता के जीवन का स्तर ऊँचा उठाना नहीं। इस विषय में जड़ मूल से परिवर्तन करना आर्थिक योजना का लक्ष्य है। आर्थिक योजना कायम करने के बाद भी सामग्रियां पैदा होंगी लेकिन सिर्फ मुनाफा करना इस पैदावार का लक्ष्य नहीं होगा। इसमें सिर्फ ऐसी सामग्रियाँ बनायी जायेंगी जो वास्तवमें जनकल्याण के लिये सहायक हो सकें। इसके अलावा बहुत सी चीजें जल्द खतम हो जानेवाली हैं, जैसे कि खनिज सम्पत्ति। इससे अगर पूरा फायदा उठाना हो तो इनकी बर्बादी रोकनी होगी और आर्थिक योजना के अनुसार इनको इस तरह से काम में लगाना होगा जिससे ये ज्यादा दिन तक चल सकें। यही आर्थिक योजनाका लक्ष्य है। इस में सामग्रियों के उपभोग से लगाकर पैदावार, रकम विनियोग, व्यापारिक प्रबन्ध तथा आयका विभाजन आदि प्रत्येक विषय में राष्ट्रीय सरकार एक विशेष उद्देश्य को सामने रखकर हस्तक्षेप करती है। वर्तमान स्थिति में आर्थिक योजना सिर्फ आर्थिक दृष्टि से ही नहीं बल्कि जनकल्याण की दृष्टि से भी विशेष जरूरी है।

आज हमें राजनैतिक स्वतन्त्रता प्राप्त होनेके बाद आर्थिक स्वतन्त्रता पर

ध्यान देना पड़ेगा और इसके लिये एक विशेष आर्थिक योजना ग्रहण करनी पड़ेगी। बेकारी की समस्या का समाधान करना तथा पूर्ण विनियोग प्राप्त करना इस योजनाका लक्ष्य होना चाहिये। अब प्रश्न यह है कि हमारी आर्थिक योजना की रूपरेखा क्या होगी? यह प्रश्न हमारे लिये दूसरे देशों कि अपेक्षा अधिकतर जटिल तथा महत्वपूर्ण है कारण पूर्ण विनियोग को कायम करने के साथ ही साथ हमें देखना होगा कि हमारी विभिन्न सम्पत्तियों का यथार्थ उपयोग हो रहा है या नहीं और विभिन्न प्रान्तों की आर्थिक उन्नति हो रही है या नहीं। सन् १९४२ से लगाकर अभीतक हमारे सामने कई एक आर्थिक योजनायें रखी गई जिनमें निम्नलिखित योजनायें उल्लेखनीय हैं :— (१) बम्बई योजना, (२) भारत सरकार की १०००—करोड़ रुपये की कृषि योजना, (३) साम्यवादी योजना, (४) गान्धीवादी योजना, (५) दशवार्षिक सहकारी आर्थिक योजना, (६) भारत सरकारके द्वारा नियुक्त आर्थिक योजना के बारेमें सलाह देनेवाली समितिकी योजना, (७) राष्ट्रीय योजना समिति की योजना, (८) राष्ट्रीय महासभा के द्वारा नियुक्त आर्थिक कार्यक्रम समिति की आर्थिक योजना।

इनमें किसी किसीमें कृषिको महत्व दिया गया है और किसी किसीमें उद्योग-धन्धोंको, लेकिन हमारे लिये वही आर्थिक योजना सबसे अधिक उपयोगी होगी जिसमें इन दोनों का समन्वय किया जाएगा। कृषि तथा शिल्प दोनोंही हमारे लिए विशेष आवश्यकीय हैं। हमारी वर्तमान स्थितिमें हमें जहां तक हो सके आर्थिक स्वतन्त्रता प्राप्त करनी होगी। सिर्फ कृषिकी उन्नतिसे ही हमें पूर्ण विनियोग प्राप्त हो सकता है लेकिन उससे देशकी आर्थिक सबलता नहीं हो सकती। इसलिए उद्योग-धन्धोंका विस्तार विशेष जरूरी है। हम अपनी बढ़ती जन संख्या को अगर उद्योग-धन्धोंकी ओर आकर्षित कर सकें तो हम कृषिमें भी अच्छ सुधार कर सकेंगे। सबसे बड़ी दुःखकी बात तो

यह है कि हमारा देश कृषि प्रधान होते हुए भी हम अनाज की आवश्यकता की पूर्त्तिके लिए दूसरों के मुखापेक्षी हैं और हमारी कृषिके सामने विभिन्न प्रकारकी समस्याएं उपस्थित हैं। औद्योगिक विकास होने पर जैसे एक ओर बेकारी की समस्या हल हो जावेगी वैसे ही दूसरी ओर कृषिमें भी जल्द उन्नति हो सकेगी। वास्तवमें कृषि तथा शिल्प एक दूसरे पर अवलम्बित हैं।

आर्थिक योजनाके बारेमें राष्ट्रीय योजना समितिने जो तथ्यपूर्ण विवरणसूची हमारे सामने रक्खी है उनमें हमारी विभिन्न समस्याओं पर पूर्ण प्रकाश डाला गया है। वे इतने तथ्यपूर्ण हैं कि संक्षेपमें उनकी आलोचना असम्भव है लेकिन साधारण तौर पर हमारे सारे आर्थिक साधनोंका उपयोग करते हुए जनताका रहन-सहन का दर्जा ऊंचा करना, देशको आर्थिक दृष्टिसे स्वतन्त्र बनाना ही उनका लक्ष्य है। यह समिति जब कायम की गई थी उस वक्त देश आजाद नहीं था; उस वक्त देश के विचारशील विशेषज्ञों को लेकर राष्ट्रीय महासभा ने इस समितिको आर्थिक सुझाव देनेके लिए कायम किया था। आज शासन सत्ता राष्ट्रीय महासभा के हाथमें आ चुकी है। अब इस समितिके सिद्धान्तों के अनुसार सरकारी नीतिको कार्यान्वित करनेमें किसी प्रकारकी असुविधाओं का सामना नहीं करना पड़ेगा।

सन् १९४६ में भारत सरकार ने आर्थिक योजनाके बारेमें सलाह देनेके लिए जो समिति बनाई थी उसके सिद्धान्त पर ध्यान देने लायक कई एक बातें हैं। इस समिति ने पहले ही आर्थिक योजना के लक्ष्य पर ध्यान दिया है। हमारी आर्थिक योजना का लक्ष्य निम्न प्रकार होना चाहिये :— रहन-सहन का दर्जा ऊँचा करना, प्रत्येक व्यक्तिके लिए विनियोगका प्रबन्ध करना, पैदावार जहाँ तक हो सके बढ़ाना, उपयुक्त वितरणका प्रबन्ध करना तथा भारतके विभिन्न प्रान्तोंकी आर्थिक उन्नति पर ध्यान देना ताकि कोई भी प्रान्त

टूट न जाए। देश रक्षाके लिए भी विभिन्न प्रान्तों में उद्योग-धन्धा स्थापित करना जरूरी है।

आर्थिक योजना से पूरा फायदा उठानेके लिए हमें पहले उन सब विषयों पर ध्यान देना चाहिए जो कि सबसे अधिक आवश्यक हैं। इस दृष्टिसे सबसे पहले हमारी दृष्टि कारीगरों की संख्या बढ़ाने पर पड़नी चाहिए। इस विषय में हमारी कमजोरी सबसे अधिक है और जब तक यह चलती रहेगी तब तक हम आर्थिक योजनाको सफल नहीं कर सकते। साथही साथ हमें अनाज की पैदावार बढ़ाने पर ध्यान देना चाहिए। उद्योग-धन्धों में किसको सबसे अधिक महत्व दिया जाएगा यह कहना कठिन है। इसका कारण यह है कि यह बहुत हद तक विदेश से यन्त्रोपकरणों के आयात पर निर्भर है लेकिन साधारण तौर पर कहा जा सकता है कि देशकी रक्षाके लिए जरूरी शिल्प, सिंचाई का प्रबन्ध तथा जल-विद्युत उत्पादन करनेवाला यन्त्र शिल्प, लोहा तथा इस्पात का कारखाना तथा रासायनिक शिल्प पर अधिक महत्व देना उचित होगा, उपभोग सामग्रियाँ पैदा करनेवाले शिल्प पर नहीं। उपभोग सामग्रियों की कमी से देशको उतनी हानि नहीं पहुँचेगी जितनी कि मौलिक शिल्प के अभाव से पहुँचेगी। यातायात साधनों के लिए इंजिन तथा गाड़ियों को बनाने पर ध्यान देना पड़ेगा। किसी भी आर्थिक योजना में इन विषयों पर सबसे पहले ध्यान देना जरूरी है। इनके अलावा दूसरे विषयों में किसको पहले ध्यान दिया जायेगा और किसको पीछे इस बात का निर्णय करने के लिए एक स्थायी संस्था कायम करनी होगी।

कुछ दिन पहले अखिल भारतीय कांग्रेस-समिति द्वारा नियुक्त आर्थिक कार्यक्रम समिति ने अपनी एक सम्बन्धित रिपोर्ट प्रकाशित की है। इसमें आर्थिक कार्यक्रम का उद्देश्य निम्न प्रकार बताया गया है :—जनशक्ति तथा प्राकृतिक साधनों के पूर्ण उपयोग द्वारा उत्पादन में वृद्धि, जनता का जीवनस्तर ऊँचा उठाना, एक राष्ट्रीय न्यूनतम जीवनस्तर कायम करना, पूर्ण नियोग

को प्राप्त करना, राष्ट्रीय आय तथा सम्पत्ति का यथार्थ वितरण करना तथा औद्योगीकरण के द्वारा सम्भाव्य विषमताओंको रोकना। राष्ट्रीय आयके वितरण के बारेमें इस समिति का प्रस्ताव यह है कि सबसे कम मजदूरी पानेवाले से सबसे अधिक मजदूरी पानेवाले को ४० गुणा से अधिक नहीं मिलना चाहिए, एवं इस विषमता को भविष्य में २० गुणा से अधिक रहने देना उचित नहीं होगा। हमारी राष्ट्रीय आय कितनी है इसके बारेमें जांच कर लेने का प्रस्ताव भी रक्खा गया है और भविष्य की आर्थिक योजनामें राष्ट्रीय एवं प्रादेशिक आत्मनिर्भरता तथा शहरी और ग्रामीण अर्थ-व्यवस्थामें संतुलन करने पर भी महत्व दिया गया है।

कृषि संगठन के लिए इस समिति ने कुछ प्रस्ताव किया है जो निम्न-प्रकार हैं:—प्रत्येक प्रान्त और क्षेत्रके लिए न्यूनतम मात्रा में अनाज आदि के उत्पादन का प्रबन्ध करना, समस्त मध्यवर्त्ती लोग जो कृषिका शोषण कर रहे हैं उन्हें हटाना, एवं उनके स्थान पर सहकारी समितियां संस्थापित करनी, किसानों के लिए पारितोषक-मूल्य तथा खेत मजदूरों के लिए निर्वाह मृ त का प्रबन्ध करना, खेतिहर मजदूरों के ऋण में कमी करनी, कृषिके आधुनिक तरीके दिखाने के लिए फार्म-खोलना तथा सहकारी खेतीके प्रयोग के लिए सरकारी देखरेखमें प्रारम्भिक योजनाएं कार्यान्वित करना, बहुप्रयोजन-सहकारी-समितियां खोलना, प्रत्येक किसान के पास कमसे कम कितनी जमीन रहेगी उसका निश्चय करना एवं निश्चित क्षेत्र से अधिक जमीन पर गांवकी सहकारी समिति का अधिकार रहना, भूमि-राजस्व प्रणाली के स्थान पर धीरे-धीरे कृषि आय पर वर्धमान कर लगाना आदि। रिपोर्ट में कृषि में रकम लगाने के लिये सरकारी कार्पोरेशन स्थापित करने की योजना है। यह कार-पोरेशन सरकारी समितियों और गांव-पंचायतों के द्वारा अपना कार्य करेगा। उद्योगधन्धों के बारे में समिति की रिपोर्ट में एक स्पष्ट विवेचन है। समिति की राय ऐसी है कि खाद्य सामग्री तथा उपभोग

सामग्रियां पैदा करने वाले उद्योग धन्धों को विकेन्द्रित प्रणाली पर ही रखना चाहिये। जहाँ तक हो सके इन्हें छोटे पैमाने परही-रखना चाहिये। आर्थिक अस्थायित्व तथा प्रतिस्पर्धा मिटाने के लिये बड़े उद्योग-धन्धों और छोटे उद्योग-धन्धों का क्षेत्र निर्धारित करना चाहिये। छोटे उद्योग धन्धों को हर तरह से सरकारी मदद की आवश्यकता है। सुरक्षा-सम्बन्धी उद्योग, मौलिक उद्योग तथा लोक हितकारी कार्य सरकारी-स्वामित्व के अन्तर्गत ही स्थापित करना चाहिये। एकाधिकृत तथा सारे देश अथवा अनेक प्रान्तों के साथ सम्बन्धित उद्योग धन्धों को भी सरकारी-स्वामित्व के आधार पर ही संगठित करना चाहिये। वर्तमान उद्योगों का राष्ट्रीय करण पांच वर्ष के पश्चात होना चाहिये; विशेष उद्योग को इससे पहले भी लोकस्वामित्व में हस्तांतरित किया जा सकता है। पांच वर्ष के समय में उल्लिखित उद्योगों को लोक स्वामित्व में लाने का तथा उनके संचालन का पूरा प्रबन्ध कर लेना चाहिये। राष्ट्रीय करण के बाद उद्योगों के कुशल विकास एवं संचालन के लिये निम्न संगठन स्थापित करना आवश्यक है:— (१) आर्थिक सिविल सर्विस, (२) औद्योगिक कार्यकर्ताओं का शिक्षण, (३) श्रमिकोंकी साधारण एवं शिल्प शिक्षा, (४) अनुसंधान संगठन, (५) रकम विनियोग, शेयर नियंत्रण, (६) आर्थिक पर्यवेक्षण। धनिक तथा श्रमिकोंके सम्बन्ध को मैत्रीपूर्ण बनाये रखने के लिये लाभ-बंटाई योजना, उद्योगके प्रबन्ध में मजदूरों का स्थान, श्रमिकोंके प्रतिनिधित्व-सहित संचालक संस्था, श्रमविवादों की पंचायती, न्यूनतम मजदूरी, सामाजिक बीमा आदि का प्रबन्ध होना चाहिये। अन्त में समिति ने सुझाव रखा है कि उपर्युक्त आर्थिक कार्यक्रम को कार्यान्वित करने में सरकार को सलाह तथा सहायता देनेके लिये एक स्थायी कमीशन स्थापित करना चाहिये जो आर्थिक योजना के अलावा सरकार की करनीति, विदेश व्यापार-चालन में लगाई हुई विदेशी रकम प्रभृति के बारे में सलाह देनेके योग्य हो।

हमारी भावी आर्थिक योजना में राष्ट्र का स्थान क्या होगा यह प्रश्न काफी जटिल है। कोई भी आर्थिक योजना राष्ट्रीय सहयोग बिना कामयाब नहीं हो सकती, विशेषतः भारत के तरह एक महादेश में जहां कि राष्ट्रीय समस्याओं के अलावा प्रान्तीय समस्यायें भी काफी जटिल हैं। परन्तु आर्थिक समस्या के अलावा केन्द्रिय सरकार के सामने और भी बहुत सी समस्यायें हैं जिन पर जल्द ध्यान देना जरुरी है। इसलिये वर्त्तमान समय में एक केन्द्रवर्ती आर्थिक योजना के अधीन में सब के सहयोग के द्वारा नई आर्थिक रचना कायम करना ही अधिक उचित होगा। हमारी वर्तमान स्थिति को सुधारने के लिये, देश को उन्नति के रास्ते पर आगे बढ़ाने के लिये, जनता के जीवन स्तर को ऊंचा करने के लिये प्रत्येक दायित्वशील व्यक्ति को आगे बढ़ना होगा ताकि जल्द से जल्द भारत एक उन्नतिशील राष्ट्र बन सके।

राष्ट्रीयकरण की समस्या

राष्ट्र के साथ आर्थिक व्यवस्था का सम्बन्ध किस प्रकार का होना चाहिये इसके बारे में दो प्रकार की विचारधारायें प्रचलित हैं। इनमें एक तो दार्शनिक विचार धारा है और दूसरी लौकिक अथवा व्यवहारिक। जिन्होंने दार्शनिक विचार धारा को प्रकट किया है उनमें कुछ व्यक्ति राष्ट्र की उपयोगिता को ही अस्वीकार करते हैं। इनको अगर छोड़ दिया जाय तो हमें एक ओर व्यक्तिस्वातन्त्र्यवादी एवं दूसरी ओर समाजवादी दार्शनिकगण दिखाई पड़ते हैं। व्यक्तिवादी दार्शनिकगण चाहते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति को अपना उत्पादन कार्य चलाने की पूर्ण स्वतंत्रता हो; वे

राष्ट्र पर बहुत ही कम दायित्व रखने वाले हैं। समाजवादियों का मार्ग दूसरा है। वे राष्ट्र पर ही अधिक से अधिक निर्भर करते हैं एवं उत्पत्ति के साधनों का स्वामित्व राष्ट्रीय सरकार के हाथों में ही देना चाहते हैं। औद्योगिक क्रान्तिके प्रारम्भमें अर्थशास्त्रीगण प्रथम सिद्धांत का अनुसरण करने के पक्ष में थे लेकिन आजके नए वातावरण में जनता तथा सारी दुनिया का आर्थिक-जीवन जिस प्रकार से शीघ्रता के साथ जटिल होता जा रहा है उसमें राष्ट्र को पृथक रखना न तो सम्भव है और न उचित ही है।

आदर्श की दृष्टी से जिन्होंने इसका विचार किया है उनका कहना है कि उत्पादन-साधनों के राष्ट्रीयकरण के द्वारा हमें समाजवाद प्राप्त होगा। परन्तु यह युक्ति निराधार है। राष्ट्र के हाथ में सारी-आर्थिक व्यवस्था को सौंप देना ही अगर समाजवाद होता तो इसको प्राप्त करने में कुछ भी कठिनाई का सामना नहीं करना पड़ता। वास्तव में यह इतना सहज नहीं है। कारण यह है कि राष्ट्र को चलाने का भार जिनके हाथ में है वे अधिकांश में ही किसी राजनैतिक दल के प्रतिनिधि होते हैं और इनमें ज्यादातर व्यक्ति तो खुद पूंजीपति होते ही हैं या पूंजी-पतियों के साथ सम्बन्ध रखने वाले होते हैं। इस परिस्थिति में सिर्फ राष्ट्रीयकरण के द्वारा किस प्रकार से समाजवाद की प्रतिष्ठा हो सकती है? आर्थिक विकास के उसी स्तर में समाजवाद का विकास हो सकता है जिसमें भौतिक तथा व्यावहारिक सामग्रियां पैदा करने वाले उद्योग धन्धों का बहुत ज्यादा विस्तार हो चुका है तथा इतनी सामग्रियां तैयार हो रही हैं जितनी कि समाज के प्रत्येक व्यक्ति के प्रयोजन के लिये पर्याप्त हों। इसलिये पूंजीवाद के विकास के इस विशेष स्तर तक पहुंचना हमारा प्राथमिक लक्ष्य होगा। आधुनिक समय में सिर्फ व्यक्ति की चेष्टा से यह सम्भव नहीं होता; इसलिये चाहे तो व्यक्ति के हाथ राष्ट्र को पूरा

सहयोग देना पड़ता है और नहीं तो राष्ट्रीय पूंजीवाद को कायम करने की आवश्यकता होती है।

राष्ट्रीयकरण के कई रूप होते हैं जिनमें मुख्य तीन हैं। एक तो यह कि राष्ट्रीय-सरकार ही उद्योग-धन्धोंका प्रबन्ध तथा संचालन करे एवं उसके लिये आवश्यक पुंजी जुटावे; दूसरा यह कि राष्ट्रीय सरकार उद्योग-धन्धोंका संचालन करे परन्तु रकम-जुटाना तथा प्रबन्धका सारा काम व्यक्ति ही करे और तीसरा यह कि उत्पादन-कार्यका संचालन तथा प्रबन्ध व्यक्तिके हाथमें हो और वह ही मुनाफेका अधिकारी हो, परन्तु उनका नियंत्रण सरकार करे। आज व्यक्ति-वादी देशोंमे भी उद्योग-धन्धोंको पूर्ण स्वतंत्रता नहीं है; लाभका नियन्त्रण, मूल्य निर्धारण तथा कर नीतिके द्वारा राष्ट्रीय सरकार उद्योग-धन्धों पर उचित नियंत्रण रखती है; एकाधिकारी-क्षेत्रमें सरकारी नियंत्रण और भी अधिक है। रूसमें सारी आर्थिक व्यवस्था ही सरकारके हाथमें है; पर फ्रांस, बृटेन जैसे पूँजीवादी देशोंमें भी राष्ट्रीयकरणकी मांग बढ़ती जा रही है। इस प्रकारसे कम या ज्यादा प्रत्येक देशमें आजकल इसी नीतिका अनुसरण किया जा रहा है।

राजनैतिक परिवर्तन होनेके कारण देशशासनका दायित्व भारतवासियों के हाथमें आ चुका है। आज हमारे सामने मुख्य प्रश्न यह है कि भारतके उद्योग-धन्धोंको उन्नतिका रूप क्या होना चाहिए—व्यक्तिवाद या राष्ट्रीयकरण। इसके बारेमें निश्चय करनेके पहले हमें अपना आर्थिक आदर्श निश्चित कर लेना चाहिए एवं उसके बाद उसे क्रियात्मक रूप देनेके उचित साधनोंका प्रयोग करना चाहिए। हमारा आर्थिक आदर्श स्पष्ट है। हमें तो प्रत्येक व्यक्तिका रहन सहन ऊँचा करना है; इसके लिए पैदावार बढ़ानेकी आवश्यकता है। हमारे देशमें धनकी कमी है और वितरण प्रणाली भी सुव्यवस्थित नहीं है। हमारी आर्थिक नीति ऐसी होनी चाहिए कि उससे भारतमें उत्पादन तथा प्रति व्यक्ति-आयमें पर्याप्त वृद्धि हो, कृषिमें सुधार, गृह-उद्योग की उन्नत्ता

तथा औद्योगीकरणके द्वारा पैदावार बढ़ सके तथा व्यक्तिकी आय भी बढ़े।

अब राष्ट्रीय करणका क्षेत्र तथा उसकी मात्रा पर ध्यान देनेकी आवश्यकता है। राष्ट्रीयकरणकी मात्रा देश, काल तथा परिस्थितिके अनुसार भिन्न भिन्न प्रकारकी होती है, और होनी भी चाहिए। हमारी वर्तमान स्थितिमें पूरा राष्ट्रीयकरण कहां तक सफल होगा यह सोचनेकी बात है। राष्ट्रीयकरणके बारेमें कांग्रेस आर्थिक प्रोग्राम कमीटीकी राय यह है कि देश-रक्षा तथा जनसाधारणके लिए जरूरी सामग्रियां पैदा करनेवाले उद्योग-धन्धे तथा मौलिक शिल्प सरकारके अधीनमें प्रतिष्ठित हो तथा जिन सब उद्योग-धन्धोंके साथ एकाधिक प्रांत या सारे देशका स्वार्थ संयुक्त है उनको भी सरकारके अधीनमें रक्खा जाय। जो सब उद्योग बहुत दिनोंसे प्रतिष्ठित हैं उन्हें पांच साल बाद सरकारको अपने हाथमें ले लेना चाहिये; विशेष क्षेत्रोंमें उसके पहले भी उनका राष्ट्रीयकरण किया जा सकता है। कुछ दिन पहले सरकारने जो अपनी शिल्प नीति प्रकट की है उसमें कहा गया है कि पुराने उद्योग-धन्धोंको दस सालके अन्दर अपने हाथमें लेनेका विचार सरकार नहीं रखती है; लेकिन वर्तमान समयमें ५ या १० वर्षोंका समय बहुतही मामूली बात है। हमारी शिल्प-व्यवस्थाके जीर्णोद्धारके लिए जरूरी सामग्रियां न तो इस देशमें पैदा होती हैं और न दूसरे देशोंसे ही काफी तादादमें अभी मिल सकती हैं। इस लिए वर्तमान समयमें सिर्फ जीर्णोद्धारके लिए ही १० साल लग जायेंगे और १० साल बाद यदि राष्ट्रीयकरण निश्चित हो तो कोई उद्योगपति इस काममें रकम लगानेके लिए तैयार नहीं होंगे। इसलिये राष्ट्रीयकरणका समय निर्देश करना गलत है। यदि दस वर्षके भीतर हमारी आर्थिक व्यवस्था राष्ट्रीयकरणके उपयुक्त बन जाये तो उस वक्त राष्ट्रीयकरण नीति कामयाब हो सकती है।

हमारी वर्तमान स्थितिमें राष्ट्रीयकरणका क्षेत्र सीमित है। कुछ व्यवसाय तथा धन्धे तो ऐसे होते हैं जिनका राष्ट्रीयकरण होना आवश्यक है, जैसे कि

रेल, सड़कें तथा अन्य मुख्य यातायातके साधन। बहुतसे आधारभूत धन्धे ऐसे हैं जिनका उचित संचालन सरकार द्वारा अच्छी तरहसे हो सकता है, जैसे कि, भारी रासायनिक सामग्रियों का कारखाना, औज़ार बनानेका कारखाना इत्यादि। इनके लिए पर्याप्त रकम संग्रह करना तथा देश हितके उद्देश्यसे इनको चलानेका कार्य अधिक सुगमता से राष्ट्रीय सरकारही कर सकती है। इनके अलावा बहुतसे ऐसे कारखाने हैं जो उपभोग-समाग्रियां पैदा करते हैं। इनका राष्ट्रीय करण वर्त्तमान समयमें उचित नहीं होगा परन्तु इन पर राष्ट्र द्वारा उचित नियंत्रण होना चाहिए। छोटे पैमाने के उद्योग तथा गृह-उद्योगका संचालन राष्ट्र के हाथमें देनेकी आवश्यकता नहो है लेकिन इनमें जिन साधनोंकी आवश्यकता होती है उनके सम्बन्धमें राष्ट्र को सहायता अवश्य करनी चाहिए। उद्योग-धन्धोंका पूर्ण राष्ट्रीयकरण हो या नहीं यह आवश्यक बात है कि किसी व्यक्तिको धन्धोंके स्थानीयकरण अथवा अन्य बातोंमें पूर्ण स्वतंत्रता नहीं हो सकती। राष्ट्रीय सरकारको यह देखना चाहिये कि देशके सभी प्रान्तोंमें विभिन्न धन्धोंकी उन्नति हो रही है या नहीं। बम्बई, बंगाल, संयुक्त प्रांत आदिमें यहां व्यक्तिगत पुँजी तथा व्यापारिक रकम पर्याप्त है वहां राष्ट्रीय नियंत्रण ही काफी होगा। जहां व्यापारिक रकम तथा दूसरे साधनों की कमी है वहां प्रोत्साहन देनेकी आवश्यकता है और इसका वास्तविक रूप परिस्थितिपर निर्भर करेगा। विभिन्न प्रान्तोंकी आवश्यकता के अनुसार धन्धोंका स्थानीय करण राष्ट्रीय सरकारका उत्तरदायित्व है।

आज आर्थिक विषयोंमें स्वाधीन भारतके सरकारका उत्तरदायित्व बहुत बढ़ गया है और उद्योग-धन्धोंके राष्ट्रीय करणके बारेमें सरकारकी नीति किस प्रकारकी होगी इसके बारेमें ऊपर कुछ प्रकाश डाला गया है। परन्तु हमारी नई राष्ट्रीय सरकारको अभी तक इतनी योग्यता प्राप्त नहीं हुई है जिससे वह सारी आर्थिक व्यवस्थाओंको अपने हाथमें ले। कुछ दिन पहले कानपुरका बिजलीका कारखान सरकारने अपने हाथमें लिया है।

सरकारके हाथमें जानेके बाद से ही इसमें नुकसान होना आरम्भ हो गया और ४॥ महिनेके अन्दर इसकी आमदनीमें करीब २ लाख रुपयेकी कमी हो गई। इस प्रकारसे राष्ट्रीयकरण वर्तमान समयमें हमारे स्वार्थके प्रतिकूल है। कानपुरके वैद्युतिक-संस्था चलानेमें सरकारको जब इतनी असफलता हुई तो टाटा का साम्राज्य वह किस प्रकारसे चला सकती ? असल बात तो यह है कि हमारे राष्ट्रीय संचालनका दायित्व जिनके हाथों में है उनमें कई बातोंकी कमी दिखाई पड़ रही हैं। आज ये त्रुटियां हमारे नए राष्ट्रकी नींवको शिथिल कर रही हैं। शासनका दायित्व जिनके हाथमें है उनमें पक्षपात हीन उदार दृष्टि स्थापित करनी ही हमारी आजकी सबसे बड़ी राष्ट्रीय समस्या है। पारिवारिक स्वार्थ, दलीय स्वार्थ, साम्प्रदायिकता तथा प्रान्तीयताके प्रभावसे बुराइयां बढ़ रही हैं। भारत सरकारके भूतपूर्व आर्थिक उपदेष्टा सर थीओडोर ग्रेगरीका कहना है कि "मन्त्री तथा पदस्थ कर्मचारियोंके दफ्तरोंमें जो लोग खुशामद करते फिरते हैं उनमें से ज्यादातर व्यक्तियोंमें न तो समाज सेवा करनेकी इच्छा है और न योग्यताही। जिस देशकी राष्ट्रीय व्यवस्था इस प्रकारकी हो उस देशमें समाज सेवाकी अनुप्रेरणा कब आविर्भूत होगी ? इस देशको सब सुखमें जानना शहरोंके आडम्बर, मंत्रियोंके-दफ्तर या पदस्थ कर्मचारियोंकी मोटर गाड़ियों से सम्भव नहीं है। इस देशका पूरा चित्र तो सिर्फ देहातोंमें ही मिल सकता है जहां कि सहस्र सहस्र आशाहीन नरनारी दिन पर दिन दरिद्रता, बीमारियों प्रकृतिके साथ संग्राम करते हुए बहुत बुरी हालतमें जीवन निर्वाह कर रहे हैं और पदस्थ अधिकारीवर्ग इन्हींको अन्न वस्तुका शोषण कर रहा है। इसलिए मेरा कहना है कि जब तक वास्तविक अनुप्रेरणाकी जागृति नहीं होगी, जब तक व्यक्ति, परिवार, दल तथा सम्प्रदायको छोड़ कर हम सारे देशको एक दृष्टिसे नहीं देख सकेंगे तब तक हम राष्ट्रीयकरणके द्वारा आर्थिक क्षेत्रोंमें सफल नहीं बन सकते हैं।

स्वतंत्र भारतकी आर्थिक नीति—युद्धोत्तर भारतका आर्थिक पुनर्गठन।

विदेशी शासनकी घातक नीति—विदेशी शासन कायम होनेके पहले भारतमे संतुलित अर्थ-व्यवस्था थी एवं हमारी जन-संख्याका सबसे बड़ा हिस्सा घरेलू उद्योग-धन्धों पर अवलम्बित था। विदेशी शासन की घातक नीतिसे भारतकी संतुलित अर्थ-व्यवस्था नष्ट हो गई एवं भारत कृषि-प्रधान देश बन गया। कृषि-प्रधान देश होते हुए भी भारतीय कृषिके दुरवस्थाके बहुतसे कारण हैं (कृषिकी समस्यायें विषयक निबन्ध देखिये)। भारतीय घरेलू उद्योग-धन्धों पर पाश्चात्यकी औद्योगिक क्रान्तिका गहरा असर हुआ। अंग्रेजी सरकारकी व्यापार नीतिसे भारतमें बना हुआ कच्चामाल विदेशमें जाता रहा और बदलेमें शिल्पजात सामग्रियां आती रहीं। यातायात साधनोंकी कियायेकी नीति भी इस भांति निर्धारित की जाती थी कि कच्चा माल देशके बन्दरगाहों पर विदेशोंको जानेके लिए सस्ते किराये पर जाता रहा तथा विदेशी शिल्पजात सामग्रियाँ सस्ते किराये पर देशके आन्तरिक भागोंमें आती रहीं। इसलिए व्यापार क्षेत्रमें विदेशियोंकी भरमार जारी रही। सरकारकी भारत विरोधी उद्योग-नीतिसे इसमें मदद पहुँची। विदेशी पूंजीका स्वागत तथा भारतमे विदेशी पूंजीवादकी प्रतिष्ठा तथा विदेशी प्रतियोगिताके कारण घरेलू उद्योग-धन्धे पंगु हो गये।

भारतीय अर्थ व्यवस्था पर लड़ाई का प्रभाव—लड़ाई शुरु होने के वक्त भारत की खतरनाक आर्थिक स्थिति—पहली लड़ाईसे भारतकी विदेशी हुकूमत पूरा फायदा न उठा सकी और न भारत में रासायनिक तथा यंत्रोप-करण पैदा करनेवाले उद्योग-धन्धों की प्रतिष्ठा ही हुई। दूसरी लड़ाईसे भी

मशीनों के अभाव से भारत में मूल शिल्प स्थापित न हो सके और भारत पर-निर्भर रह गया। दूसरी लड़ाई के सुयोग से भारत को छोड़कर बृटिश साम्राज्यके दूसरे सारे देश आर्थिक दृष्टिसे स्वतन्त्र बन गये। युद्धके समय बहुतसी कागजी आर्थिक योजनायें बनायी गईं (आर्थिक योजना विषयक निबन्ध देखिये) लेकिन वे कार्यान्वित न होने सकीं।

युद्धोत्तर भारतमें राजनैतिक परिवर्तन—भारतकी नवीन आर्थिक नीतिः—

कृषि—कृषि क्षेत्र में भारत की उपज में वृद्धि करना है—इसके लिये पानी, खाद तथा वैज्ञानिक यन्त्रोंकी आवश्यकता है—सिंचाई का प्रबन्ध तथा जलविद्युतका उत्पादन—भारत की खाद्य समस्या और उसका सुझाव—भारत विभक्त होने के बाद पाट, रुई आदि कच्चे माल की कमी। खेतों की चकबन्दी करने की आवश्यकता—बेकार जमीन का उपयोग—सिंचाई का प्रबन्ध करने के लिये सरकार के सामने निम्नप्रकार की योजनाये हैं:—

योजना का नाम	सिंचाई का प्रबन्ध	जलविद्युत उत्पादन
तुंगभद्रा घाटी योजना	३००००० एकड़	१२०००० किलोवाट
महानदी घाटी योजना	२५००००० ,,	५००००० ,,
दामोदर घाटी योजना	९६०००० ,,	३५०००० ,,
कोशी घाटी योजना	३०००००० ,,	१८००००० ,,
नर्मदा घाटी योजना	३७००००० ,,	१०००००० ,,

उद्योग-धन्धे—सन् १९४७ दिसम्बरमें औद्योगिक जलसा—३ साल के लिये संघर्ष विराम—शिल्प दफ्तर की शीघ्र तथा भविष्य योजना—शीघ्र योजना को १॥ वर्ष में तथा भविष्य योजना को ३ वर्ष में सफल बनाने का निश्चय—औद्योगिक शिथिलता (औद्योगिक शिथिलता विषयक निबन्ध देखिये)—पूर्ण विनियोग के लिये उद्योग-धन्धों के विस्तार की आवश्यकता है तथा छोटे पैमाने पर गृह-उद्योग स्थापित करने की आवश्य-

कता है—औद्योगिक विस्तार के रास्ते पर रुकावटेः (१) मूल धन की समस्या (२) कारिगरों की समस्या (३) मशीनें तथा रासायनिक सामग्रियों की समस्या (४) औद्योगिक शिक्षा की कमी --१० साल तक उद्योग-धन्धों का राष्ट्रीयकरण न करने का सिद्धान्त—(राष्ट्रीय करण की समस्या विषयक निबन्ध देखिये) विदेशी रकम विनियोग के बारे में सरकारी नीति (विदेशी मूल धन विषयक निबन्ध देखिये)।

व्यापार—व्यापार के बारे में विदेशी सरकार की घातक नीति से शिल्पजात सामग्रियों के लिये भारत पूरी तौर से विदेशियों पर निर्भर करने लगा। भारतीय व्यवसायों की उन्नति तभी सम्भव हो सकती है जब कि देश का कच्चा माल देश के उद्योग-धन्धों में ही लगाया जाय—इन उद्योग-धन्धों को विदेशी प्रतिस्पर्द्धा से बचाने के लिये भारत सरकार को विदेशी सामग्रियों पर कर लगाना होगा तथा देशी सामग्रियों को संरक्षण देना होगा—व्यापारिक उन्नतिके लिये यातायात साधनोंकी आवश्यकता होगी।

शिक्षा सुधार—स्वाधीन राष्ट्र में शिक्षा की महत्ता—सार्जेन्ट शिक्षा योजना—शिक्षा को लाभदायक बनाने की आवश्यकता।

इस प्रकारसे स्वतंत्र भारत के नवीन सरकार को देश की कृषि, उद्योग-धन्धा तथा व्यापार के लिये नई नीति का निर्माण करना होगा ताकि दो सौ वर्षोंसे चली आनेवाली आर्थिक स्थिति में सुधार तथा परिवर्तन हो सके।

भारतमें औद्योगिक शिथिलता

युद्धोत्तर समयमें हमारे उद्योग-धन्धोंमें उत्पादन की कमी निम्न प्रकार थी:—

	१९४५-४६	१९४६-४७	प्रतिशत कमी
कपड़ा	४६५१० लाख गज	३८६३० लाख गज	१७
सूता	५४८० लाख पाउन्ड	४५०० लाख पाउन्ड	१४
कागज	१६८१००० हन्डर	१२४४००० हन्डर	२६
चीनी	१०२३०००० हन्डर	८६६६००० ,,	१५
दियासलाई	२०२१० ग्रोस	१२३९० ग्रोस	३९
सिमेन्ट	२१४६००० टन	२०१६००० टन	६
पीग आयरन	१४२२००० ,,	१३६५००० ,,	४
स्टील इनगट	१२९९००० ,,	११६९००० ,,	८
फीनीश स्टील	१२३८००० ,,	११६०००० ,,	८
कोयला	२६५४३००० ,,	२६२१८००० ,,	१०३

सन् १९४८ में भी इनकी पैदावार घटती रही।

औद्योगिक शिथिलताका कारण:—(१) यातायात साधनों की कमीके कारण बनी हुई सामग्रियां पूरी तौरसे न बंट सकी; (२) कच्चे मालकी कमी, विशेषतः देश विभक्त होनेके बाद ; (३) दूसरे उत्पादन साधनोंकी कमी जिनके लिए भारत विदेशियों पर निर्भरशील है जैसे कि मशीनें, रसायनिक सामग्रियां इत्यादि ; (४) देश विभक्त होने पर मुसलमान श्रमिकों के भारत छोड़कर चले जानेके कारण कपड़ा, कांच आदि उद्योग-धन्धोंमें पैदावार का कम होना; (५) श्रमिकोंमें असंतोष तथा निरुत्साह एवं काम चोरी करनेकी प्रवृत्ति का होना ; (६) पूंजीपतियोंमें भविष्यके बारेमें अनिश्चितता जिसके कारण उद्योग-धन्धोंमें रकमकी पूंजी न होना। (७) सरकारी दफ्तरों की अकर्मण्यता ।

पैदावार बढ़ाने के लिए सरकारी नीति—सन १९४७ के दिसम्बर में

शिल्पपति, मजदूर तथा सरकारी प्रतिनिधियों का आम जल्सा—३ वर्ष के लिए धनिक-श्रमिक विरोध न होने पावे इसके बारे में निश्चय—भारत सरकार के शिल्प दफ्तर की शीघ्र तथा भविष्य योजना—शीघ्र योजना को १॥ वर्ष में तथा भविष्य योजना को ३ वर्ष में सफल बनाने का तथा २०० करोड़ रुपये रकम विनियोग का सिद्धान्त—पैदावार बढ़ाने का लक्ष्य निम्न प्रकार रक्खा गया है :—

सामग्रियाँ	वर्त्तमान उत्पादन (१९४७)	शीघ्र योजना के अंत में उत्पादन	भविष्य योजना के अंत में उत्पादन
कपड़ा	३७७०० लाख गज	४६६०० लाख गज	५१८० लाख गज
इस्पात	८५,०००० टन	१२६४००० टन	१७७०००० टन
सिलवर	३५०० ,,	८००० ,,	२८००० ,,
सिमेन्ट	१४४०००० ,,	२११५००० ,,	३७५३००० ,,
एमोनियमसालफेट	३८००० ,,	७६००० ,,	४२६००० ,,
सल्फर फासफेट	१०००० ,,	६०००० ,,	१००००० ,,
सोडा एस	१२००० ,,	५५००० ,,	९०००० ,,
कास्टिक सोडा	३००० ,,	१५०० ,,	६६००० ,,
सालफ्यूरिक एसिड	६५००० ,,	१००००० ,,	६५०००० ,,

वास्तव में ये योजनायें सफल नहीं हुईं।

सन १९४८ में भारत सरकारने एक औद्योगिक परामर्श समिति कायम की जिसका उद्देश्य निम्न प्रकार था :—(१) सरकार को औद्योगिक नीतिके बारे में परामर्श देना ; (२) बड़े बड़े उद्योग-धन्धों के उत्पादन पर ध्यान रखना एवं उनकी वर्त्तमान उत्पादन शक्ति के पूर्ण उपयोग के बारे में परामर्श देना ; (३) दुष्प्राप्य कच्चे माल के उपयोग के बारे में परामर्श देना ; (४) यंत्रोपकरण तथा उद्योग-धन्धों में लगनेवाले कच्चे माल के आयात के बारे में परामर्श देना ; (५) सरकार को आवश्यकतानुसार विषयों पर परामर्श देना—

औद्योगिक परामर्श समितिने सरकार के सामने निम्न प्रस्ताव रक्खा :—
(१) भारत में वस्त्र शिल्प में लगनेवाली मशीनें बनाने का प्रबन्ध करने के लिए विशेष पदाधिकारी नियुक्त करना ; (२) औद्योगिक मशीनें विदेशोंसे मंगवानेके पहले यह देखना चाहिए कि ये भारतमें बननेवाली हैं या नहीं एवं यदि बननेवाली हों तो उसका प्रबन्ध करना (३) मजदूरों के रहन सहनका प्रबन्ध भारत के विभिन्न उद्योग प्रधान शहरों में एक ही प्रकार का होना एवं इसके लिए उद्योग संचालकों को भारत सरकार के साथ परामर्श करके प्रबन्ध करना ; (४) यांत्रिक विषयों में सरकार को सलाह देने के लिए उपयुक्त संस्था कायम करना ; (५) औद्योगिक मशीनें बनाने वाले उद्योगपतियों का एक संघ स्थापित करना ताकि वे निर्धारित मूल्य पर खरीदे हुए कच्चे मालोंका यथार्थ वितरण तथा पूर्ण उपयोग कर सकें ; (६) जिन उद्योग-धन्धों में पैदावार घटाने की जरूरत है वहां असंतोष फैलाये बिना श्रमिकों को हटाने के लिए एक मध्यस्थ समिति कायम करना।

इस समिति ने उद्योग-धन्धों में रकम की पूर्ति न होनेका निम्न कारण बताया है:—(1) देश विभक्त होनेके कारण राजनैतिक तथा आर्थिक परिवर्तन हुआ है; (2) उन सामाजिक वर्गोंके हाथ में रकमका संचय हो रहा है जो उस रकमको फिरसे उद्योग-धन्धों में नहीं लगाते ; (3) आय-कर तदर्थ कमीशन के विनियोग से पूंजी विनियोग के बारे में अनिश्चयता फैली हुई है ; (४) सन १९४७ की विभक्त वाली बजट में जो कर-नीति रक्खी गई थी उसमें पूरा सुधार अभी तक नहीं हुआ, तथा सरकार की मजदूर नीति तथा विदेशी व्यापार नीतिमें सुस्पष्टता न रही ; (5) शेयर बाजारमें फटकाबाजी चलने के कारण अनिश्चयता की सृष्टि हुई। पैदावार बढ़ानेके लिए इस समितिने निम्न प्रकारका प्रस्ताव रक्खा है :—(1) कर-नीतिमें परिवर्तन किया जाय ताकि उद्योगपतिगण उद्योग-धन्धोंमें रकम लगानेमें उत्साहित हों, तथा मशीनोंके घिसावटके बारेमें भी सरकारको आयकर नीतिमें उद्योगपतियोंके लिए

कुछ सुविधा देनी चाहिए, (२) सरकारी व्ययमें कमी (३) अनाज तथा आवश्यक सामग्रियोंका मूल्य घटाना तथा श्रमिकोंके जीवन निर्वाहके व्ययके साथ उनकी मज़दूरीका सम्बन्ध स्थापित करना ; (४) खाद्यपदार्थों की पैदा बढ़ानी, (५) शेयर बाजारको सुधारना ताकि पूंजी विनियोगको उत्साहित किया जाय ; (६) अल्प पैदा करनेवाले लोगोंमें संचयके लिए प्रचार; (७) औद्योगिक सुधारका सारा प्रबन्ध करना तथा कारखानें जिसमें सामग्रियों के अभावसे बन्द न होने पावें उसका प्रबन्ध करना ; (८) सामग्रियों पर गुणात्मक नियंत्रण ; (९) विदेशी पूँजीका स्वागत करना ; (१०) उद्योग-धन्धोंके राष्ट्रीयकरणके पहले क्षतिपूरण देनेका निश्चित प्रदान ; (११) वैयक्तिक पूँजी विनियोग को हर तरहसे उत्साहित करना ।

आर्थिक संकट या व्यापारिक मंदी—बेकारीकी समस्या—भारतमें पूर्ण विनियोगकी आवश्यकता

व्यापार चक्रका स्वरुप—बाजार में जब सामग्री के लिये मांग और उसकी पूर्ति ये दोनों एक दूसरेके समान होती हैं, जब उत्पादन तथा उपभोगमें समानता रहती है और जब सामग्रियां सहजमें ही उपभोगकारियोंके पास पहुंचती हैं तब आर्थिक परिस्थिति में संकट नहीं आता परन्तु आजकल उद्योगपति और उपभोगकारियों के बीच में इतनी जटिलता पैदा हो गई है कि अधिकांशतः मौलिक सत्य अर्थात "उपभोग के लिये ही उत्पादन प्रबन्ध होता है" यह स्पष्ट नहीं होता। यह स्पष्ट है कि उत्पादन और उपभोग में यदि किसी कारण से समानता नष्ट हो जाय तो संकट पैदा होने की संभावना हो जाती है ।

व्यापारिक संकट के बारे में मार्क्सवादी सिद्धान्त—इस सिद्धान्त के ३ पहलू हैं :—(१) श्रमिकों की संख्या और श्रमिकोंके लिये धनिकों की मांग या श्रमिकों की श्रमशक्ति को खरीदने में लगाया हुआ मूलधन इन दोनों के पारस्परिक सम्बन्ध में होनेवाले परिवर्तन पर ही बेकारी का परिमाण निर्णय होता है। (२) सिद्धान्त के दूसरे पहलू में लाभ-वृद्धि में कमी की बात कही गई है। (३) यंत्रीकरण तथा भोगसामग्रियां बनाने वाले उद्योग-धन्धों के बारे में यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया गया है कि समाज की बढ़ती हुई उत्पादन शक्ति जनसाधारण की दरिद्रता के कारण अवरुद्ध है। मार्क्सवादी सिद्धान्त की सार बात तो यह है कि पूंजीवादी व्यवस्थाके आविर्भावके पहले जब भोग व्यवहारके अनुसार सामग्रियां पैदा होती थीं, तब इन दोनोंमें समानता थी जो पुंजीवादी व्यवस्थामें नष्ट हो चुकी है। इसके अलावा इस नयी परिस्थितिमें सामग्री पैदा करनेवाला श्रमिक अपनी स्वतन्त्रताको भी खो देता है लेकिन कुछ गम्भीरता से देखने पर पता चलेगा कि यह पारतन्त्र्य और भी गहरा है। पूंजीवादी व्यवस्थामें धनिकका लक्ष्य है बहुत से श्रमिकों को इकट्ठा करके काम करवा लेना और इसके लिये जितनी शिक्षा के बिना नहीं चल सकता बस उतनी की ही व्यवस्था कर देना। इसलिये श्रमिक सम्पूर्ण काम का जानकार नहीं बन सकता। इसमें श्रमिकों की आजादी सदाके लिये नष्ट हो गई है और वे गुलामी की जंजीरों में फंस गये हैं। इस नये संगठन की विशेषता यह है कि उत्पादन और उपभोग अब पहले की तरह समान नहीं हो सकता। इसका कारण यह है कि आजकल उद्योग-धन्धों में कलकारखाने की उत्पादन करने की शक्ति पर ही ध्यान दिया जाता है, भोग व्यवहार पर नहीं।

पूंजीवादी अर्थशास्त्रीगण आर्थिक संकटके बारेमें सहमत नहीं हैं। आर्थिक संकट के बारे में पूंजीवादी अर्थशास्त्रियों का सिद्धान्त—कुछ अर्थशास्त्रियों का सिद्धान्त यह है कि व्यापारिक संकट सिर्फ आर्थिक कारणों से होता है और इनको रोकने पर यह समस्या हल हो जायेगी।

इनका विश्लेषण निम्न प्रकार है :—जब उद्योगपतियों के सामने लाभ कमाने की सम्भावना दिखाई देती है तब वे उद्योग-धन्धों को बिना सोचे समझे बढ़ाये जाते हैं; बैंक व्यवस्था कर्ज की सृष्टि करके इन्हें मदद पहुंचाती है। इस तरह से पैदावार जितना बढ़ता है उतनी क्रयशक्ति जनता के हाथ में नहीं रहती। इसलिये बेकार सामग्रियां बाजार में इकट्ठी हो जाती हैं और व्यापारिक मंदी दिखाई पड़ती है। इनका कहना है कि यदि कर्ज नियन्त्रण के द्वारा मुद्रास्थिति को बिगड़ने से रोक दी जाय तो व्यापारिक संकट दिखाई देने की सम्भावना कम हो जायगी। वास्तव में व्यापारिक संकट सिर्फ आर्थिक कारणों से ही नहीं होता बल्कि किसी किसी क्षेत्र में आर्थिक प्रभाव के अतिरिक्त कारण ही अधिक महत्व रखते हैं। दूसरे अर्थशास्त्रियों का कहना है कि यंत्रोपकरण पैदा करने वाले उद्योग-धन्धों में अतिरिक्त पूंजी विनियोग के कारण आर्थिक संकट होता है। इनके सिद्धान्त के अनुसार व्यापारिक संकट रुपये की कमी या बाहुल्य से नहीं होता, आर्थिक व्यवस्थामें संतुलन नष्ट हो जाना ही इसका मुख्य कारण है और यदि संतुलित अर्थ व्यवस्था में विशृंखला आ जाये तो आर्थिक साधनों से उसका सुलझाव नहीं हो सकता। इस समस्या को हल करने के बारे में इनकी राय यह है कि व्यापारिक मंदी को व्याज दर घटाकर नही रोका जा सकता लेकिन व्याज दर बढ़ाकर तेजी को रोकना सहज है एवं यदि अतिरिक्त व्यापारिक तेजीकी सम्भावना नष्ट हो जाय तो मंदी अपने आप न हो पायगी। व्यापारिक संकट के बारे में तीसरा सिद्धान्त यह है कि उपभोग की कमी के कारण व्यापारिक मंदी आती है लेकिन इस सिद्धान्त में व्यापारिक तेजी के बारे में कुछ भी नहीं कहा गया है, वास्तव में मंदी तो तेजी का ही फल है। व्यापारिक मंदी के बारे में और एक सिद्धान्त में कहा गया है कि यह मानसिक कारणों से होती है। मानसिक कारण तो हैं ही लेकिन इनको मुख्य स्थान नहीं दिया जाता।

व्यापारिक संकट का समाधान—मुद्रा तथा कर्ज नियंत्रण, तांकि उद्योग-धन्धों में पूंजी का अस्वाभाविक विनियोग न होने पावे। सरकार की कर तथा व्यय नीति ऐसी होनी चाहिये कि तेजी के समय उद्योग-धन्धों पर ज्यादा कर लगाया जाय एवं वह रकम मंदी के समय सुप्रबन्धमें लगाई जाय ताकि उद्योग-धन्धों से जो लोग बेकार हो जाते हैं उन्हें सरकारी रचनात्मक कामों में स्थान दिया जा सके लेकिन इस तरह से व्यापारिक संकट को रोकना सम्भव नहीं होगा। व्यापारिक संकट को रोकने के लिये उत्पादन तथा उपभोग में समानता लानी होगी। सिर्फ आर्थिक योजना के द्वारा व्यापारिक मंदी का मुकाबला हो सकता है ("आर्थिक योजना" विषयक निबन्ध देखिये)।

बेकारी की समस्या—बेकारी या बेरोजगारी क्या है? जब किसी भी कारण से काम करनेवालों के अनुपात से काम की कमी हो जाती है यानी किसी भी वेतन पर काम नहीं मिलता तब उसे बेकारी कहते हैं। समाज में बेकारियां निम्न प्रकार की होती हैं:— (१) इच्छापूर्वक बेकारी:—जिनके पास संचित रकम है वे यदि काम न करें तो उसे स्वेच्छापूर्वक बेकारी कही जायगी लेकिन समाजवादी अर्थ-व्यवस्था में जहां कि प्रत्येक इन्सान को समाज के लिये अपनी सामर्थ्यानुसार परिश्रम उठाना पड़ता है इस बेकारी का स्थान नहीं है। (२) संघर्षके कारण बेकारी:—जब अर्थ-व्यवस्था में कुछ परिवर्तन होता रहता है यानी जब हम एक आर्थिक स्थिति से दूसरी स्थिति की ओर जाते हैं तब कुछ न कुछ लोग बेकार हो जाते हैं और यह बेकारी चाहे वह समाजवादी व्यवस्था हो और चाहे पूंजीवादी अवश्य होनेवाली है लेकिन ये बेकारी स्थायी नहीं होती। (३) अनिच्छापूर्वक बेकारी:—यह पूंजीवादी अर्थ-व्यवस्था की विशेषता है यानी पूंजीवादी अर्थ-व्यवस्था में कुछ काल की स्थिति को छोड़कर पूर्णविनियोग कभी भी नहीं होता। एक ओर तो मशीनें पैदा होती रहती है और

दूसरी ओर बेकारी के कारण जनता के हाथ में क्रयशक्ति के अभाव से इनकी खपत नहीं होती। इसलिये बेकारी तथा व्यापारिक मंदी परस्पर सम्बन्धित है। सन् १९२९ की विश्व व्यापी व्यापारिक मंदी के बाद से अर्थशास्त्रियोंकी गवेषणा इन्हीं समस्या के विशेषण पर लगी हुई है लेकिन शुद्ध पूंजीवादी अर्थ-व्यवस्था में इसका समाधान असम्भव है। इसलिये प्रत्येक देश आज राष्ट्रीयकरण के द्वारा राष्ट्रीय पूंजीवाद को कायम कर रहा है तथा आर्थिक योजना के द्वारा कुछ हद तक इन समस्याओं को हल करने का प्रबन्ध कर रहा है। भारत में किसानों की आंशिक बेकारी तथा शिक्षित मध्यमवर्ग में बेकारी की समस्या विशेष उल्लेखनीय है।

भारत में पूर्णविनियोग की आवश्यकता—पूर्णविनियोग निम्नलिखित विषयों पर निर्भर है:—क्रियात्मक अभियाचन, पूंजीकी सीमान्त उत्पादन शक्ति एवं व्याज। पूर्णविनियोगको सफलसिद्ध बनानेके लिए भारतमें शिल्पोप-करण बनानेवाले उद्योग-धन्धोंको स्थापित करने की आवश्यकता है—हमारे आर्थिक संगठनमें हमें निम्नलिखित विषयों पर ध्यान देना होगा:—

(१) व्याज दर—हमारी वर्तमान स्थितिमें अधिक व्याज की नीति ग्रहण करने में कुछ असुविधाएँ हैं। पूर्णविनियोग को प्राप्त करना हमारे लिए जैसे आवश्यक है संचय को बढ़ाना भी ठीक वैसे ही आवश्यक है। पूर्णविनियोग को प्राप्त करने के लिए व्याज कम करना चाहिए लेकिन संचय को बढ़ानेके लिए—विशेषतः हमें जब वैयक्तिक संचय पर निर्भर करना पड़ता है—व्याज बढ़ाना आवश्यक है। यदि वैयक्तिक संचयको बढ़ाना पड़े तो अधिक व्याज का लालच देना होगा। साथ ही साथ यह भी सोचने की बात है कि यदि व्याज को बढ़ाया जाय तो पूर्णविनियोग को प्राप्त करने के पहले ही एक ऐसी अवस्था आ पहुँचेगी जबकि विनियोग को रोक देना पड़ेगा। इसीलिए यदि पूर्णविनियोग को प्राप्त करने के समय तक हम मुद्रा का प माण

आर्थिक संगठन को आवश्यकता के अनुपात से बढ़ाते हुए ब्याज को घटाकर रख सकें तो हम इस समस्या से मुक्त हो सकते हैं।

(२) मजदूरी—मजदूरी को सुस्थिर रखने की आवश्यकता है। इसमें श्रमिकों की अवस्था की कोई अवहेलना नहीं है लेकिन मजदूरी के साथ लागत का प्रत्यक्ष सम्बन्ध होनेके कारण पूर्णविनियोग तक पहुँचने के लिए मजदूरी को साधारण तौर पर स्थिर रखकर लागत को कम करना ही उचित होगा। यदि मजदूरी बढ़ जानेके कारण लागत बढ़ जाय तो ब्याजको घटने पर भी कोई फायदा नहीं पहुँचेगा।

(३) मुद्रा नीति—पूर्णविनियोग का प्रश्न मुद्रा नीति से सम्बन्धित है। पूर्णविनियोग को कार्यान्वित करने के लिए हमें मुद्रा का परिमाण बढ़ाना पड़ेगा। मुद्रा केवल उत्पादन साधनों को उपलब्ध करने के लिए ही आवश्यक नहीं वरन् उद्योगपतियों की धारणाओं पर भी इसका गहरा असर पड़ता है कारण मुद्रा के परिमाण के साथ मूल्य स्तर का एक विशेष सम्बन्ध है। यदि थोक सामग्रियाँ पैदा की जाँय तो लागत कम हो जायगी और उद्योगपतियों का मुनाफा बढ़ता चलेगा। इस प्रकार से उद्योग-धन्धों को पूर्णविनियोग की ओर बढ़ने के लिए उन्हें उत्साह मिलेगा।

भारतमें मज़दूर समस्या—भारतके मज़दूर आन्दोलन—मज़दूर हित-कार्य—सामाजिक बीमा—भारतमें सामाजिक बीमा

भारत में शिल्प-श्रमिकों की संख्या भारतीय जन-संख्या का प्रतिशत १० है। भारत की तरह एक महादेश में शिल्प-श्रमिकों की संख्या बहुत ही कम

है एवं ज्यादातर लोग कृषिकी तरह एक अनिश्चित वृत्तिपर अवलम्बित हैं। इन श्रमिकों का एक बड़ा हिस्सा कृषि से सम्बन्धित है यानी ये लोग उद्योग-धन्धों पर पूरी तौर से निर्भर नहीं करते। इसीलिए हमारे शिल्प-श्रमिकों में न तो पूरा संगठन ही है और न संगठन की इच्छा ही।

श्रमिकों की समस्या—श्रमिकों की समस्या प्रधानतः आर्थिक प्रश्नों पर है—(१) भर्ती और सुरक्षित नौकरी का सवाल—कारखानों और खानों में श्रमिकों को भर्ती कराने की कई प्रणालियाँ प्रचलित हैं जिनसे न तो मालिक को ही फायदा होता है और न मजदूरों को—ठेकेदारों के द्वारा खानों में तथा चाय के बगानों में श्रमिकों का विनियोग—निम्नपति मजदूरों पर होनेवाले अत्याचारों को रोकनेके लिए विशेष कर्मचारियों की आवश्यकता। (२) भारत में शिल्प-श्रमिक ज्यादातर स्थायी नहीं होते—कृषिसे सम्बन्धित होनेके कारण जबहि उन्हें मौका मिलता है तबहि ये कारखानों का काम छोड़कर घर चले जाते हैं और शायद ही वे फिरसे उन्हीं कामोंको करने के लिए लौटते हैं। जब तक कारखानों का काम उन्हें पूरी तौरसे आकर्षित न कर सकेगा तब तक हमारे मजदूर सुनिपुण न बन सकेंगे। (३) मजदूरों की अनुपस्थिति—इसके बारेमें मालिकों की यह आपत्ति है कि उन्हें अधिक मजदूरी मिलनेके कारण वे बहुत दिनोंतक अनुपस्थित रहते हैं लेकिन विशेषज्ञों द्वारा निरीक्षण करने के पश्चात् यह सिद्ध हुआ है कि अनुपस्थिति का कारण दूसरा ही कुछ है, जैसे कि बिमारी, ज्यादा देर तक काम करने से थकावट, औद्योगिक संघर्ष, सामाजिक तथा धार्मिक रीति-रवाज, नौकरी के स्थायित्वके बारेमें अनिश्चयता इत्यादि। (४) कारखानों के भीतर आधुनिक प्रबन्धों का अभाव—कारखानों में जगह की कमी, गन्दगी, हवा तथा रोशनी की कमी, पीनेका पानी, दवाई आदि की अव्यवस्था, विश्राम गृहों का अभाव इत्यादि कारणों से मजदूरों के स्वास्थ्य पर काफी हानि पहुँचती है—कारखानों में कल-पूर्जे भी ज्यादातर पुराने ढंगके हैं और उनकी बनावट भी

वैज्ञानिक हिसाबसे नहीं है। मजदूरों में औद्योगिक शिक्षाका अभाव—ज्यादातर श्रमिक बिना परिक्षा के रख लिये जाते हैं ; इनमें कारिगरी का अभाव होना स्वाभाविक है। (५) वेतन की दरें—एक ही प्रकार के कामके लिए एक ही केन्द्र या कारखाने में या भिन्न भिन्न केन्द्रोंमें भिन्न भिन्न वेतन की दरें होती । ज्यादातर मजदूरों का वेतन न तो उनके रहन-सहन के हिसाब से दिया जाता और न उससे उन्हें कोई निर्दिष्ट जीवन का दर्जा स्थापित करनेका सुयोग ही मिलता। वेतन नियमित रूपसे भी नहीं दिया जाता और उनके हिसाबमें भी हर वक्त गड़बड़ी की जाती है। इसलिये निम्नतम मजदूरी बांध देनेकी आवश्यकता है। (६) मालिक सदा इस बात की आपत्ति उठाते हैं कि भारतीय मजदूर विदेशी मजदूरों के बराबर काम नहीं कर सकते लेकिन इसका उत्तरदायित्व बहुत हद तक मालिकों पर ही है। मजदूरोंको काम पर भेजने के पहले उनको शिक्षा देनेकी आवश्यकता है। मजदूरों को अच्छा खाना, अच्छा कपड़ा, मकान, आमोद-प्रमोद की सुविधा दवाई आदि उपलब्ध नहीं होनेके कारण उनकी कर्मशक्ति कम हो जाती है।

फैक्टरी कानून—मजदूरों को मालिकों के अत्याचार से बचाने के लिए कारखाना सम्बन्धी कानून बनाने की आवश्यकता पड़ती है। प्रथम विश्वयुद्ध के पहले कारखानों के बारेमें कुछ कानूनें बनाई गई थी लेकिन वे पूरी तौरसे कामयाब न थीं। सन् १९११ के एक कानून के अनुसार मजदूरों के लिए १२ घन्टा श्रम समय बांध दिया गया था एवं उन्हें ॥ घन्टा विश्राम करने का सुयोग भी दिया गया था। सन् १९२२ में रोजाना श्रम समय ११ घंटा तथा साप्ताहिक ६० घंटा कर दिया गया था। सन् १९३४ में यह १० तथा ५४ घंटा क्रमशः किया गया है एवं कारखानों के भीतर सुख-सुविधा के लिए ज्यादेतर विशेष महत्व लगाया गया है। सन् १९४६के एक कानून के अनुसार स्थायी कारखानों में रोजाना श्रम समय १० तथा ५० घंटा

किया गया है। चाय बगानों तथा खानोंमें काम करनेवाले मजदूरों के लिए स्वतन्त्र कानूनें बनाई गई हैं।

भारत में मजदूर आन्दोलन—पहली लड़ाईके पहले भारतीय मजदूर आन्दोलन बहुत ही कमजोर था एवं किसी किसी शिल्प केन्द्र में दो-एक छोटे छोटे मजदूर संघ बनाये गए थे। प्रथम महायुद्ध के फलस्वरूप मजदूरोंमें वर्गचैतन्यका उदय हुआ। सामग्रियों की कीमत बढ़ने के कारण मजदूरों की आर्थिक स्थिति बिगड़ गई। मालिकों के घरों में चांदीकी वर्षा होनेके कारण धन विभाजनकी असमानता और भी बढ़ गई। भारतीय मजदूर आंदोलन पर रुसी क्रांतिका प्रभाव हुआ। सन् १९१८ में मद्रासके सूती कारखानों में पहले पहल शिल्प मजदूरों का संघ स्थापित हुआ। इस संगठन की लहर बम्बई, कलकत्ता और अहमदाबाद में फैल गई। भारतीय मजदूर आंदोलन पर राष्ट्रीय आन्दोलन का प्रभाव पड़ा। युद्धोत्तर समय में भारतके विभिन्न शिल्प केन्द्रों में हड़तालें हुईं। सन् १९२० में मजदूर आन्दोलन का अखिल भारतीय संगठन स्थापित हुआ और संगठनने अपने प्रथम अधिवेशन में श्रम समय में कमी, मजदूरी बढ़ानेकी सुविधा, चिकित्सा का प्रबन्ध, चोटोंका हर्जाना, वृद्धावस्था तथा गर्भावस्था में आर्थिक सहायता इत्यादि प्रश्नों पर विचार किया। सन् १९२० में जनीवा में अन्तर्राष्ट्रीय मजदूर संघकी स्थापना की गई और इसीके प्रस्ताव के फलस्वरूप भारत सरकार ने सन् १९२२ में एक महत्वपूर्ण कानून बनाया। सन् १९२६ की मजदूर संघ कानून के अनुसार जो मजदूर संघ सरकार का अनुमोदन प्राप्त कर लेगी उस पर दिवानी या फौजदारी मुकदमा नहीं चलाया जा सकेगा यानी मजदूर संघको हड़ताल करनेका वैध अधिकार प्राप्त हो गया। अखिल भारतीय मजदूर संघ कांग्रेसमें दो दल, दक्षिणपक्ष और वामपक्ष होनेके कारण ट्रेड युनियन फेडरेसन की स्थापना हुई। सन् १९२९ में विश्वव्यापी आर्थिक संकटका असर मजदूर आन्दोलन पर पड़ा। व्यापारिक संकटके कारण एक ओर

मजदूरों की छँटनी हो रही थी तथा दूसरी ओर देशमें बहुत-सी हड़तालें हुईं, लेकिन अधिकतर हड़तालें असफल रहीं। सन् १९२९ में सरकार ने औद्योगिक संघर्ष विषयक कानून बनाकर जनहितकर धन्धोंमें बिना सूचित किए हड़ताल करना गैरकानूनी बना दिया तथा औद्योगिक संघर्ष होने पर पंच नियुक्त करनेकी अथवा मध्यस्थ नियुक्त करने की सुविधा प्रदान की। सन् १९२९ में प्रकाशित लेबर कमीशनके रिपोर्ट के आधार पर सन् १९३४ में भारत सरकारने कारखाना सम्बन्धी एक व्यापक कानून बनाया। सन् १९३७ में विभिन्न प्रान्तों में कांग्रेस मन्त्रि-मंडल की स्थापना हुई और वे मजदूर-जाँच-समितियाँ कायम किये तथा लेबर-आफिसर भी नियुक्त किये गये। सन् १९३८ में मजदूर आन्दोलन की दोनों अखिल भारतीय संस्थाएं सम्मिलित हो गईं लेकिन यह एकता स्थायी नहीं हुई एवं कम्युनिस्ट तथा 'रायवादी' मजदूरगण राष्ट्रीय आन्दोलन का विरोध करते हुए सरकार की साम्राज्यवादी लड़ाई में मदद पहुँचाने लगे। मजदूर आन्दोलन पर दूसरे महायुद्ध का प्रभाव—सामग्रियों की कीमत बढ़ने के कारण मजदूरों पर कठिनाइयां—मजदूर असन्तोष रोकने के लिए मँहगाई भत्ता आदिका प्रबन्ध—लड़ाई के अन्तमें फिरसे हड़तालों की बाढ़—कुछ दिन पहले साम्यवादी प्रभावित अखिल भारतीय मजदूर-संघ-कांग्रेस की बराबरी करने के लिए और एक अखिल भारतीय संस्था स्थापित हुई है, वह अखिल भारतीय राष्ट्रीय मजदूर-संघ-कांग्रेस के नामसे परिचित है। इसके अलावा हिन्द मजदूर सभा नामक और एक संस्था [illegible] समय में स्थापित की गई है। भारतीय मजदूरों में वर्गचेतना का उदय होने पर भी मजदूर आंदोलन विश्रृंखलता से भरा हुआ है। अधिकांश मजदूर-संघ केवल हड़ताल करना ही अपना एकमात्र कर्तव्य समझते हैं। मजदूर आन्दोलन की दुर्बलता का मुख्य कारण यह है कि हमारे मजदूर अधिकतर कृषि पर अवलम्बित होते हैं इसलिए औद्योगिक वृत्ति पर वे पूरी तौरसे ध्यान नहीं देते। इसके अलावा हमारे [illegible]

शिल्प केन्द्रों में भारत के विभिन्न प्रान्तोंसे मजदूर इकट्ठे होते हैं ; इनकी भाषा, रहन-सहन, रीति-रवाज आदि एक दूसरे से भिन्न होता है । आर्थिक विषयों में इनकी दृष्टि में बहुत अन्तर रहता है और ये सम्मिलित होकर आन्दोलन को आगे बढ़ाने के लिए प्रयत्न नहीं कर सकते । आर्थिक दुरवस्था के कारण मासिक चन्दा देना भी इन्हें बोझ-सा मालूम पड़ता है । मजदूरोंका नेतृत्व भी अभी तक ज्यादातर शिक्षित-वर्गों के हाथ में रहा है । इसके अलावा मजदूर संघों ने मजदूरों के हितोंके रचनात्मक कार्योंकी ओर ध्यान ही नहीं दिया । मजदूर आन्दोलन को शक्तिमान बनाने के लिए आवश्यकता इस बातकी है कि मजदूरों में सही नेतृत्व हो और मजदूरों में रचनात्मक कार्य किया जाय ।

मजदूर-हितके लिए कार्य—मजदूर-हितके लिए रचनात्मक कार्य करने का उत्तरदायित्व सिर्फ मजदूरों पर ही नहीं बल्कि मालिक, राष्ट्रीय सरकार तथा सारे समाज पर है । संकीर्ण दृष्टिसे मजदूर-हित कार्य पर लगाई हुई रकम अ-लाभदायक मालूम पड़ती है लेकिन वास्तवमें इन कामोंमें पूंजीका विनियोग अन्तमें लाभदायक ही होता है कारण जैसे कल-पुर्जेको कार्योपयोगी रखने के लिए सफाई का प्रबन्ध रखना पड़ता है ठीक वैसे ही मजदूरों के लिए इन कार्योंकी आवश्यकता है ताकि उनकी उत्पादन शक्ति बनी रहे । इसका सबसे बड़ा दायित्व तो मालिकों पर है लेकिन अभी तक वे इसे पूरा नहीं करते । जो लोग मजदूर हितके लिए कुछ प्रबन्ध करते हैं वे मानसिक दृष्टिसे ही करते हैं व्यापारिक दृष्टि से नहीं । मालिकों की इस दृष्टिमें परिवर्तन की आवश्यकता है । मजदूर हितके उत्तरदायित्व का एक हिस्सा समाज पर भी आता है जिसको समाज के उदार दृष्टि सम्पन्न लोग तथ परोपकारी संस्थायें जैसे कि, वाई० एम० सि० ए०, सर्वेन्टस् आफ इन्डिया सोसाइटी आदि, पूरी करती हैं । मजदूर कल्याण का सबसे बड़ा दायित्व राष्ट्रीय सरकार पर है जो विभिन्न कानूनें बनाकर इसे पूरा करती है ।

भारत में मजदूर संरक्षण के लिए अब तक बहुत-सी कानूनें बनाई गई हैं लेकिन उन्हें कार्यान्वित करने पर अब सरकार को ध्यान देना होगा। इस उत्तरदायित्व का कुछ हिस्सा मजदूरों पर भी आता है। ईश्वर भी उन्हीं की सहायता करता है जो खुद अपनी सहायता करते हैं। इसलिए मजदूर संघोंको रचनात्मक कार्यों के द्वारा मजदूर कल्याण को बढ़ाने पर विशेष रूपसे ध्यान देना आवश्यक है।

सामाजिक बीमा—औद्योगिक क्रान्तिके बादसे मजदूर वर्ग का शोषण जिस तरह से चल रहा है उसके फलस्वरूप उनमें वर्गचेतना का आविर्भाव हुआ है तथा पूंजीवाद के खिलाफ समाजवादी भावना स्पष्ट हो रही है। इसको रोकने के लिए पहले पहल जर्मनी में सन १८८०-८९ में जो प्रबन्ध किया गया वह सामाजिक बीमा के नामसे परिचित है। जिन कारणों से मजदूरवर्ग में असन्तोष फैलता है उनमें आर्थिक कारण मुख्य है। जिस समय जर्मनी में सामाजिक बीमा कायम की गई उस समय बहुत से लोगोंने इसकी समालोचना की थी लेकिन जल्दही यह योजना सफलसिद्ध हो गई एवं इंगलैंड तथा दूसरे देशोंने भी इसे अपना लिया। दूसरी लड़ाई के प्रारम्भ में यूरोपके विभिन्न देशोंमें सामाजिक बीमा पर विशेष महत्व दिया जाता है। जनता का अभाव यानी आर्थिक कष्टको रोकना ही इसका लक्ष्य है। इस दृष्टि से सामाजिक बीमा प्रत्येक इन्सानके लिए एक न्यूनतम मजदूरी का प्रबन्ध करना चाहती है। सिर्फ इतना ही नहीं बल्कि बिमारियों को रोकना, अज्ञानता को जड़मूल से उखाड़ना, निश्चेष्टता तथा आलस को दूर हटा कर प्रत्येक व्यक्तिको किसी न किसी लाभदायक काममें नियुक्त करना सामाजिक बीमाका लक्ष्य है। सामाजिक बीमाको सफलसिद्ध करनेके लिए व्यक्ति तथा राष्ट्रमें पूर्ण सहयोग की आवश्यकता है। सामाजिक बीमा का लक्ष्य यह नहीं कि प्रत्येक व्यक्ति को बेकार रखना तथा उन्हें आर्थिक दृष्टिसे [illegible] करना बल्कि यह कि

व्यक्तिको काम पर उत्साहित करती है, उसे कामका सुयोग तथा पूर्णाधिकार देती है। युद्धके समयमें सर विलियम बेभरिजके द्वारा रची हुई सामाजिक विषयक योजना विशेष विख्यात है। इसमें सिर्फ उल्लेखित विषयों पर ही ध्यान नहीं दिया गया है बल्कि स्त्रियों बच्चों तथा वृद्धावस्था के प्रश्नों पर भी ध्यान दिया गया है ताकि वे किसी भी स्थितिमें, चाहे वे सुस्थ हों या अस्वस्थ, चाहे वे विनियुक्त हो या बेकार, चाहे वे जिन्दे हों या मृत उन्हें किसी भी अवस्थामें अभावका अनुभव न हो ; इसका सारा उत्तर-दायित्व समाज के स्कन्ध पर रक्खा गया है। सामाजिक बीमा के बारे में बेभरिज योजनाकी मुख्य बातें निम्न प्रकार हैं :—(१) निम्नतम जीवन स्तर को संरक्षित करने के लिए प्रत्येक व्यक्ति को समान आर्थिक सहायता दी जायेगी (२) सामाजिक बीमा संचितिमें प्रत्येक व्यक्ति को दान की मात्रा समान होगी (३) इसका सारा प्रबन्ध एक केंद्रवर्ती दायित्वशील संस्थाके हाथमें सौंपा जायेगा (४) आर्थिक सहायता प्रयोजन के अनुसार समयोपयोगी कर दी जायेगी (५) जहां तक हो सके विभिन्न वर्गके लोगों पर तथा उनकी विभिन्न आवश्यकताओंपर ध्यान दिया जायगा (६) विभिन्न लोगों के विभिन्न जीवनस्तरकी उपेक्षा नहीं की जायेगी।

भारतमें सामाजिक बीमा—भारतीय आर्थिक जीवनमें सामाजिक बीमा विशेष महत्व रखती है। हमारी समस्या सिर्फ अभाव, व्याधि, अज्ञानता, निश्चेष्टता तथा अलसता की ही नहीं बल्कि दारिद्र, उच्च मृत्यु संख्या, अल्पायु, पूर्ण बेकारी तथा अर्द्ध बेकारी की भी है। अभी तक भारत सरकारने इन समस्याओं पर ध्यान तक नहीं दिया। इसीलिये ये सब समस्यायें हमारी आर्थिक विकाश को रोक रक्खी हैं। यदि प्रत्येक व्यक्ति के लिये एक निम्नतम मजदूरी का प्रबन्ध हो जाय तो उससे सिर्फ उसके व्यक्तिगत जीवन में ही फायदा नहीं पहुंचेगा बल्कि उसकी क्रयशक्ति के आधार पर सामाजिक उत्पादनका भी विचार होगा, लेकिन सामाजिक बीमा

योजनाको भारत की तरह एक महादेश में सफलसिद्ध बनाने में काफी रकम की आवश्यकता है तथा ये समस्यायें हमारे देश में कुछ मौलिकता भी रखती हैं जिससे ये दूसरे देशों की समस्याओं से कुछ भिन्न प्रकार की हैं। हमारी राष्ट्रीय आय भी इतनी नहीं होती जिसको बांटने पर भी प्रत्येक व्यक्ति का जीवन स्तर ऊंचा हो सके। जो भी कुछ हो सामाजिक बीमा को पूरी तौर से सफल सिद्ध बनाने में असुविधायें जरूर हैं लेकिन इसकी आवश्यकता को भी सिर्फ मानविकता की दृष्टि से ही नहीं बल्कि सामाजिक तथा आर्थिक दृष्टि से भी अवहेलना नहीं की जा सकती। यदि इसको पूरी तौर से अपनाना सम्भव न भी हो तो इसके एक एक पहलू पर विचार करना उचित होगा जैसे कि अध्यापक आदरकरने स्वास्थ्य बीमा के बारे में भारत सरकार के सामने अपना प्रस्ताव रखा है। यदि सामाजिक बीमा के बारेमें इस तरह से हम कदम उठाते चलें तो हमारी सामाजिक तथा आर्थिक समस्याओं का समाधान होना कोई कठिन बात नहीं होगी।

भारत का आयात-निर्यात वाणिज्य और उसका भविष्य

इधर कुछ दिनों से अन्तर्राष्ट्रीय भावी व्यापार की बातें ही आलोचना को प्रधान विषय बन गई हैं। प्रथम महायुद्ध की समाप्ति होने पर यह आशा की गई थी कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में जो विशृंखलता आ उपस्थित हुई है वह स्थायी नहीं होगी और शीघ्र ही व्यापार में युद्ध पूर्व की स्थिति फिर से आ जायगी। परन्तु यह आशा पूरी नहीं हुई। इसका कारण यह था, एक के बाद दूसरी समस्याओं का निरंतर खड़ा होना। फलस्वरूप व्यापार वाणिज्य को फिर से कायम करने की प्रत्येक चेष्टा व्यर्थ हुई

यहां तक कि सन १९२४ के मुद्रानीति में संस्कार के बाद भी व्यापार से नियंत्रण हटाना सम्भव नहीं हुआ। दूसरी लड़ाई के प्रारम्भ से इस विषय पर फिर से आलोचना शुरू हुई। सन् १९४४ की जनवरीमें 'इकानामिष्ट" पत्रिका में तीन निबन्ध प्रकाशित हुये थे। पहले निबन्ध में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के मूलसूत्रों पर आलोचना की गई थी; दूसरे निबन्ध में अन्तर्राष्ट्रीय लेन देन की समानता तथा तीसरे निबन्धमें विनियोग समस्या के साथ व्यापार का सम्बन्ध के बारेमें विचार किया गया था।

गत कई वर्षों में प्रत्येक देश के विदेशी व्यापार पर लड़ाई का गहरा असर हुआ। लड़ाई के वक्त से ही सामग्रियों की कीमत बढ़ चुकी थी और यह मंहगाई अभी भी नहीं गई। इसके अलावा और भी कई एक नई बातें दिखाई पड़ रही हैं। जिनमें से पैदावार की कमी, अन्तरराष्ट्रीय लेन देन की असुविधायें, डालर की कमी तथा युद्धकालीन अवस्था से साधारण अवस्था तक पहुंचने में असुविधाएं मुख्य हैं। सिर्फ अमेरिका को छोड़कर करीब दूसरे सभी देशों के विदेशी व्यापार में एक गहरा परिवर्त्तन चल रहा है। उपर्युक्त कारणों के अलावा भारत के विदेशी व्यापार पर अन्य और कई कारणों का असर पड़ा है जिनमें निम्नलिखित विषय उल्लेखनीय हैं;—साम्प्रदायिक झगड़ा, राजनैतिक परिवर्तन, सरकारी नीति की अनिश्चयता, श्रमिक असन्तोष, इत्यादि। बीते हुये दस वर्षों में हमारी स्टार्लिंग रकम इकट्ठी होनी तथा भारत का महाजन देशों में एक बन जाना भारत के लिये एक उल्लेखनीय घटना है लेकिन इस रकम को लौटाने के बारे मे भी काफ़ी जटिलता उपस्थित हो रही है। सन् १९३८-३९ में हमारी आयात वाणिज्य की कीमत १५२ करोड़ रुपये थी वह १९४६-४७ में २७७ करोड़ रुपये हो गई। आयात वाणिज्य में जो सामग्रियां मंगवाई जाती हैं उनमें विशेष परिवर्त्तन नहीं हुआ क्यों

कि इनमें प्रतिशत ६० शिल्प-द्रव्य हैं, प्रतिशत २० कच्चेमाल तथा कारखानों में लगनेवाली अर्धसम्पूर्ण सामग्रियां हैं तथा अवशिष्ट भाग अनाज प्रभृति हैं। पहले से अधिक कीमत की वस्तुयें तथा भारी मशीनें मंगवाई जाती हैं लेकिन इनकी कीमत इतनी बढ़ी है कि उसी कीमतमें लड़ाई के पहले जितनी मशीनें मंगवाई जाती थीं उससे अब बहुत कम मंगवाई जा सकती हैं। सन् १९३८—३९ में हमारे निर्यात वाणिज्य की कीमत १६३ करोड़ रुपये थी, सन् १९४६—४७ में वह २९९ करोड़ रुपये हुई। लड़ाई के वक्त भारत की सामग्रियां इंगलैन्ड, वृटिश साम्राज्य के दूसरे देश तथा प्राच्य के कई देशों में भेजी जाने लगीं जिससे हमारा निर्यात वाणिज्य बहुत बढ़ गया। हमारे निर्यात वाणिज्य में विभिन्न सामग्रियों का हिस्सा निम्न प्रकार था:—शिल्पज सामग्रियां सन् १९३८-३९ में प्रतिशत २९, १९४६-४७ में प्रतिशत ४७, कच्चामाल तथा सम्पूर्ण सामग्रियां १९३८—३९ में प्रतिशत ४४, १९४६—४७ में प्रतिशत ३१। हमारे निर्यात वाणिज्य में कच्चेमाल का हिस्सा कम करने का उत्तरदायित्व सरकार के 'अनाज की पैदा बढ़ाओ' प्रचार पर है क्योंकि इससे कच्चेमाल की पैदा बहुत ही घट गई। परन्तु इस पर भी हमारा निर्यात वाणिज्य अल्प संख्यक सामग्रियों के आधार पर ही निर्भर है, जैसे कि पाट तथा पाट से बनी हुई सामग्रियां, चाय, रूई, चमड़ा, तिलहन, आदि। ये हमारे निर्यात वाणिज्य के प्रतिशत ६० हैं। लड़ाई के कई वर्षों बाद हमारा विदेशी व्यापार करीब करीब दुगुना हो गया है। सन् १९३८—३९ में इसकी कीमत ३२१ करोड़ रुपये थी, १९४६—४७ में वह ६०४ करोड़ रुपये हुई।

हमारे विदेशी व्यापार की गति भी पिछले वर्षों में काफी बदल गई है। हमारे विदेशी व्यापार के सम्बन्ध में वृटिश साम्राज्य का [illegible] अब बहुत कम हो गया है, तथा जापान, जर्मनी, इटली प्रभृति देशों से हमारा व्यापार बिल्कुल बन्द सा हो गया है। दूसरी ओर अमेरिका के संयुक्तराष्ट्र, कैनडा, आस्ट्रेलिया, [illegible]

के साथ हमारा व्यापारिक सम्बन्ध काफी बढ़ रहा है। हम ब्रिटेन तथा युक्तराज्य से औजार लोहा तथा इस्पात हथियार कल पुर्जा दवाइयां आदि मंगवाते हैं; मोटर गाड़ियां ब्रिटेन युक्तराज्य तथा कैनाडासे आती हैं, खनिज तेल युक्तराज्य मध्य प्राच्य देश तथा बर्मा से, लम्बे रेशेवाली रुई मिशर तथा उत्तरी अफ्रिका से, कागज तथा बोर्ड कैनाडा ब्रिटेन, युक्त राज्य तथा स्वीडन से एवं अनाज युक्तराज्य कैनाडा, अर्जेनटाइन बर्मा तथा अष्ट्रेलिया से मंगाया जाता है। लड़ाई के पहले जर्मनी तथा जापान काफी परिमाण में औजार लोहा तथा इस्पात, रासायनिक पदार्थ तथा दूसरे शिल्पजात सामग्रियां भेजा करते थे लेकिन लड़ाई के वक्त इनसे हमारा व्यापारिक सम्बन्धका विच्छेद हो गया। लड़ाई खतम होने के बाद जापान फिर से भारत के साथ व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयत्न कर रहा है। भारत के निर्यात वाणिज्य में जो सब सामग्रियां महत्व रखती हैं उनका बाजार करीब पृथ्वी के विभिन्न देशों में है, इसका कारण यह है कि इन सब में कच्चे मालकी बाहर में काफी खपत होती है। लड़ाई के सुयोग से भारत की शिल्पजात सामग्रियों के लिये अष्ट्रेलिया, मध्यप्राच्य देश तथा उत्तरी अफ्रिका में नये बाजार खुले हैं जो लड़ाई के पहले जापान के एकाधिकार में थे।

लड़ाई खतम होने के साथ ही साथ भारत सरकार ने विदेशी व्यापार पर जो नियंत्रण रखा था उसे उठा लिया ताकि बहुत दिनों से रुकी हुई मांग पूरी हो सके तथा मुद्रास्फीति के दुष्परिणाम को कुछ हद तक रोका जा सके। इसका नतीजा यह हुआ कि विदेश से जरूरी सामग्रियों के साथ दूसरी बहुत सी सामग्रियां काफी तादादमें आने लगीं और हमारी स्टार्लिंग रकम कम होने लगी। इसलिये सरकार को फिर से आयात वाणिज्य पर नियंत्रण लगाना पड़ा ताकि स्टार्लिंग रकम के विनिमय में सिर्फ जरूरी सामग्रियां ही मंगाई जायँ। स्टार्लिंग रकम को संचित करने में इसी कारे

कष्ट उठाना पड़ा था ; इसलिये सिर्फ देश के आर्थिक विकास करने में ही इसका उपयोग होना चाहिये । इस वक्त पृथ्वी के विभिन्न देशों में डालर की कमी चल रही है और अपने आर्थिक विकास के लिये भारत को साम्राज्यिक डालर संचिति से जो डालर मिलता है वह बहुत ही कम है । इसलिये भारत को ऐसा प्रबन्ध करना पड़ा जिससे उपलब्ध डालर से पूरा फायदा उठाया जा सके । निर्यात वाणिज्य के बारे में सरकार की नीति यह रही कि जहां तक हो सके कच्चे माल के विनिमय से अनाज तथा दूसरी जरूरी सामग्रियां मंगवाई जायँ ।

भारत विभक्त होने पर भारत के हाथ से वे दो वस्तुएं निकल गई हैं जिनसे भारत को सबसे अधिक विदेशी विनिमय प्राप्त होता था । ये पाट तथा रुई हैं । इनकी पैदावार अधिकांश में पाकिस्तान में होती है । सन् १९४६-४७ में १६ लाख गांठ पाट तथा ४६ लाख गांठ पाट से बनी हुई सामग्रियां बाहर भेजी गई थीं जिनकी कीमत ८६ करोड़ रुपये थी । यह हमारे निर्यात वाणिज्यका प्रतिशत २७ था । भारत विभक्त होने के बाद पाट की पैदावार प्रतिशत ७५ पाकिस्तान के हिस्से में गई लेकिन पाट के सारे कारखाने भारत में स्थित हैं । पाकिस्तान के हाथ में अधिकतर पाट रहने के कारण हमारे पाट शिल्प के सामने कच्चे मालकी कमी की समस्या आ उपस्थित हुई है तथा विदेशी व्यापार में भी काफी नुकसान पहुंचा है । पाट की तरह रुई, ऊन तथा चमड़े की पैदावार भी पाकिस्तान में ही अधिक है । रुई की कुल पैदावार का [illegible] पाकिस्तान को मिला यद्यपि ४५१ कपड़े के कारखानों में केवल १४ पाकिस्तान के हिस्से में आए हैं । लम्बे रेशेवाली रुई तो अधिकांश में पाकिस्तान में ही उपजती है । भारत विभक्त होने के कारण हमारे विदेशी व्यापार में करीब २५ करोड़ रुपये का नुकसान हुआ है ।

इस प्रसंग में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के भविष्य के बारे में कुछ कहना

उचित होगा। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार को बढ़ाने के लिए तथा इन पर जो रुकावटें लगाई जाती हैं उन्हें जहाँ तक हो सके हटाने के लिये कुछ दिन पहले जेनिवा में विभिन्न राष्ट्रों का एक आम जलसा हुआ था जिसमें अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार तथा विनियोग के बारे में एक अन्तर्राष्ट्रीय योजना खड़ी की गई। उम्मीद किया जाता है कि भविष्य का अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार इस योजना के आधार पर प्रतिष्ठित होगा। इस योजना में पिछड़े देशों के आर्थिक विकाश पर महत्व दिया गया है। यह भी माना गया है कि पिछड़े हुए देशों की आर्थिक उन्नति के लिये कुछ हद तक सरकारी सहायता एवं संरक्षण की आवश्यकता है। पिछड़े हुए देशों की आर्थिक उन्नति में उन्नतिशील देश हर वक्त ही मदद करेंगे ताकि अन्तर्राष्ट्रीय वाणिज्य के विस्तार में मदद पहुंच सके। केवल विशेष स्थिति में ही सदस्य देश अपने आयात वाणिज्यका नियंत्रण कर सकेगा। मुद्राविनिमय दर को सुस्थिर करने के लिये अन्तर्राष्ट्रीय वाणिज्य संस्था को अन्तर्राष्ट्रीय मुद्राकोष के साथ पूरा सहयोग करना पड़ेगा। इस जलसे में भारत ने भी हिस्सा लिया था एवं कई देशों के साथ व्यापारिक समझौता भी हुआ। इन देशों के साथ समझौता करते समय हमारी आर्थिक तथा औद्योगिक दुर्बलताओं पर ध्यान दिया गया। आयात-निर्यात कर कम करने के बारे में निम्नलिखित ३ बातों पर महत्व दिया गया है:—(१) दूसरे देशों को दिया हुआ अधिकार या सुविधा हमारे आर्थिक स्वार्थ के अनुकूल हो या प्रतिकूल न हो, (२) सुरक्षित उद्योग धन्धों या जो उद्योग-धन्धे आगामी ३ वर्षों में संरक्षित होंगे उनके बारे में किसी भी देशको सुविधा नहीं दी जायगी तथा (३) दूसरे देशोंको सुविधा देने के कारण सरकारी आमदनी में घाटा न हो, इस विषय पर भी ध्यान दिया गया है। भारत तथा पाकिस्तान को इन समझौते से निम्नलिखित अधिकार प्राप्त होंगे—सन् १९४४-४५ की संख्या के अनुसार भारत तथा पाकिस्तान

२१ करोड़ रुपये कीमत की माल के आयात पर सुविधा देना मंजूर किया। इसके बदले में हमें २५ करोड़ रुपये कीमत की निर्यात पर सुविधा मिला। इसके अलावा भारत तथा पाकिस्तान को लगभग १३ करोड़ रुपये के निर्यात पर परोक्ष सुविधा मिलेगी।

रुपये का मूल्य ह्रास तथा हमारे विदेशी व्यापार पर उसका असर—(रुपयेका मूल्य ह्रास विषयक निबन्ध देखिए)

वर्त्तमान समयमें भारतके निर्यात वाणिज्यको बढ़ानेकी आवश्यकता है क्योंकि अभी हमारी खाद्यस्थितिके सुधारनेमें काफी समय लगेगा तथा औद्योगिक विस्तारके लिए भी हमें बहुतसे साधनों को विदेश से मंगाना पड़ेगा। हमारी स्टार्लिंग रकम इनके लिए बहुत कम है और उसका जो हिस्सा हम व्यवहारमें ला सकते हैं वह और भी कम है। इसलिए हमको अपने निर्यात वाणिज्यको बढ़ाने की विशेष आवश्यकता है। जो वस्तुएँ हमारे निर्यात वाणिज्यमें महत्व रखती हैं उनकी पैदावार बढ़ानेका प्रयत्न करना पड़ेगा तथा दूसरे देशों के साथ व्यापारिक समझौता करनेके वक्त जिसमें दूसरे देशोंमें इनकी खपत बढ़ सके, इस विषय पर ध्यान देना होगा। भारतके लिए अमेरिका में बनी हुई सामग्रियां विशेष जरूरी हैं इसलिए अमेरिकाके साथ हमारे निर्यात वाणिज्यको बढ़ाने की विशेष आवश्यकता होगी। हमारे यहाँ बनी हुई विलासकी सामग्रियों का बाजार अमेरिका में बहुत अच्छा है। इससे अगर हम पूरा फायदा उठा सकें तो हर साल हमें काफी डालर की प्राप्ति हो सकेगी। भारतके मार्फत वाणिज्यका भविष्य भी उज्ज्वल है। इसके अलावा भारत की तरह एक विभिन्न देश विदेशी भ्रमणकारियोंके लिए बहुत आकर्षण रखता है; अगर इसके बारेमें यथारीति प्रचार किया जाय तथा विदेशियों के रहनेका उपयुक्त प्रबन्ध किया जाय तो इससे भी हमें काफी विदेशी सिक्के की आमदनी हो सकती है। अन्तमें यह कहना उचित होगा कि हमारे निर्यात वाणिज्य को बढ़ाने के लिए पैदावार को बढ़ाने की चेष्टा करनी होगी।

अभी तक हमारी पैदावार घटती जा रही है ; पहले तो इसको रोकना होगा और बाद में पैदावार बढ़ाने का प्रबन्ध करना होगा ताकि हम ज्यादे तादाद में सामग्रियां बाहर भेज सकें।

हमारे स्टार्लिंग पावने

प्राचीनकालसे आयात वाणिज्यसे निर्यात वाणिज्यकी अधिकता हमारे विदेशी व्यापारकी एक विशेषता है। इस अनुकूल वाणिज्य परिमाणके कारण भारत एक समय सम्पत्तिशाली देशोंमें गिना जाता था। पिछले दो सौ वर्षोंसे हमारे विदेशी व्यापारका ढांचा नष्ट हो गया है एवं साम्राज्यवादी शोषणके कारण अनुकूल वाणिज्य परिमाण होते हुए भी हम बराबरके देनदार ही रहे। दूसरी लड़ाई शुरू होनेके बाद आयात वाणिज्य करीब-करीब बन्द होगया एवं निर्यात वाणिज्य बहुत ज्यादा बढ़ गया। इस प्रकारसे जो रकम भारतके हाथमें आई उससे पहले तो इंगलैण्डमें हमारा जो कर्ज था वह चुकाया गया एवं उसके बाद स्टार्लिंग रकम इंगलैण्डमें हमारे हिसाबमें जमा होने लगी। दूसरी लड़ाई के अन्तमें यह रकम लगभग १६०० करोड़ रुपये थी जिसमें १५३५.३१ करोड़ रुपये कीमत के साखपत्र तो रिजर्व बैंक के नोटजारी विभागमें थे और ४८६ करोड़ रुपये कीमतके साखपत्र बैंकिंग विभागमें थे।

हमारी स्टार्लिंग रकमका इतिहास बहुत ही विचित्र है और भारतीय आर्थिक स्थिति पर इसका गंभीर असर पड़ा। आयातसे निर्यात अधिक होनेके कारण स्टार्लिंग रकमकी उत्पत्ति हुई। व्यापारका साधारण नियम यह है कि हम जिस देशसे सामान खरीदेंगे उसी देशको कीमत हमें देना पड़ेगा लेकिन हमारे देशके मालके लिये यह नियम बिलकुल परिवर्तित कर दिया गया।

इंगलैण्ड जब भारतके सामान खरीदता था तब विनिमयमें रुपया देना उसके लिये उचित होता लेकिन इंगलैण्डने रुपया नहीं देकर स्टर्लिंग दिया और वह भी उसी देशमें जमा होता रहा । रिजर्वबैंक-कानून के अनुसार रिजर्व बैंकको नोट जारी करनेका एकाधिकार प्राप्त है परन्तु नोटोंके लिये बैंकको एक सुरक्षित कोष रखना पड़ता है जिसमें विधानानुसार कुछ स्टर्लिंग तथा सोने सम्बन्धी साखपत्र रखे जा सकते हैं; परन्तु युद्धके समयमें साखपत्रकी मात्रा अपरिमित कर दी गई। इस समय भारत तथा इंगलैण्डकी सरकारकी ओरसे युद्ध सम्बन्धी सामग्रियाँ निर्धारित मूल्य पर भारतमें खरीदी गईं । ब्रिटिश सरकारने इनके लिये साखपत्र देते रहे जिनके आधार पर रिजर्व बैंकको नोट छापकर भारत सरकारको देना पड़ा । इस प्रकारसे हमारे स्टर्लिंग साखपत्र इंगलैण्डमें जमा होते रहे और भारतमें मुद्रा प्रसार होता रहा । इसका जो क्षतिकारक प्रभाव पड़ा उससे हम भलीभांति परिचित हैं । इंगलैण्डको इस नीतिसे काफी सुविधा हुई क्योंकि वहां हमारी इकट्ठी स्टर्लिंग रकम कम व्याज पर ब्रिटिश सरकारको मिलने लगी और उन्हें मुद्रा प्रसारकी भी आवश्यकता नहीं हुई । भारतका सामान जाता रहा, भारतकी रकम इंगलैण्डमें फंस गई, भारतमें सामग्रियोंकी कमी तथा मुद्रा प्रसारके कारण एक खतरनाक स्थिति उत्पन्न हुई । परिणाम यह हुआ कि सामग्री-क्रय तो भारतमें बहुत बढ़ गया लेकिन उत्पत्ति नहीं बढ़ी। पैदावार बढ़ानेके लिये उत्पादन सामग्रियोंकी आवश्यकता थी जो लड़ाईके कारण भारतमें नहीं आ सकी । सरकारी युद्ध-व्यय बढ़ता गया, नोट छापे गये, सामग्रियोंका मूल्य स्तर चढ़ता गया और स्टर्लिंग रकमकी मात्रामें वृद्धि होती गई । दूसरी ओर इंगलैण्डको नकद कीमत दिये बिना उसकी सामग्रियां मिलती रहीं, रकम भी घरमें मौजूद रही, मुद्रा प्रसार भी न हुआ और न सामग्रियोंके कीमतमें ही विशेष परिवर्तन हुआ । इंगलैण्ड देनदार अवश्य बना लेकिन हमारी रकम जिस तरहसे फंस गई उसमें यह धन होते हुए भी हमारी आर्थिक स्थिति में उन्नति नहीं हुई । सिर्फ इतना ही नहीं बल्कि इस रकम के

उपयोग के बारे में भी हमारा अधिकार बहुत ही सीमित रहा और किस प्रकार से हम इस रकम को वसूल कर सकते हैं यह एक भारी समस्या बन गई ।

हमारे स्टार्लिंग पावने के बारे में इंगलैन्ड के बहुत से प्रमुख व्यक्ति तथा आर्थिक पत्रों की राय यह थी कि भारत को यह रकम पूर्ण नहीं मिलनी चाहिये। इनका कहना यह था कि इंगलैन्ड ने भारत को जापानी आक्रमण से बचाया है। इसलिये युद्ध व्ययका कुछ हिस्सा भारत को देना उचित होगा। मैनचेष्टर गार्डियन, फिनान्सियल टाइमस आदि पत्रों में ऐसे विचार प्रकाशित हुये हैं तथा ब्रूटेन अमेरिका ऋण सम्बन्धी समझौते की धारा १० के अनुसार भी ऋण में कमी करने का संकेत है परन्तु भारतीय उद्योगपति तथा अर्थ-विशेषज्ञ अपने इस विचार में अटल हैं कि बृटेन पर इस ऋण का पूर्ण उत्तरदायित्व है। यहां तक कि बृटेन वुड्स कनफरेन्स में भारत के एक सदस्य ने कहा था कि जहां तक भारतीय मतका सम्बन्ध है वहां तक यह बात निर्विवाद है कि यदि इस समस्या को सुलझाने का कोई उपाय नहीं निकला तो हमारा देश प्रस्तावित अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोषका सदस्य होना स्वीकार करेगा या नहीं, इस बात पर विचार करेगा। स्टार्लिंग रकम का प्रश्न हमारे लिये बहुत ही महत्व-पूर्ण है। भारत के साथ इंगलैन्ड का जो आर्थिक समझौता हुआ था उसके अनुसार भारत पहले ही युद्ध व्यय का अपना भाग दे चुका था। स्टार्लिंग पावने के साथ युद्ध व्यय का तनिक भी सम्बन्ध नहीं है। हमारी सामग्रियां जो कि इंगलैन्ड को मदद पहुंचाने के लिये भेजी गई थीं यह स्टार्लिंग उनकी कीमत है और इन पर भारत का पूर्ण अधिकार है।

स्टार्लिंग रकम का उपयोग किस प्रकार से किया जाय इसके बारे में लड़ाई के वक्त से ही वाद-विवाद चल रहा है। किसी किसी की यह राय थी कि हमारी सारी रकम को स्टार्लिंग के आकार में रखना उचित नहीं

होगा क्योंकि स्टर्लिंग का भविष्य अनिश्चित है। इसके अलावा सभी रकम स्टर्लिंग के रूप में रहने से हम दूसरे देशों से जल्द सामग्रियां नहीं मंगवा सकेंगे। इनका कहना था कि हमारी रकम का बड़ा हिस्सा यदि डालर के रूप में रहे तो हम जिस देश से चाहें सामान मंगवा सकते हैं लेकिन अनेक कारणों से ऐसा प्रबन्ध सम्भव नहीं हुआ। कैनाडा, आस्ट्रेलिया, अफ्रिका प्रभृति देशों ने अपने स्टर्लिंग के विनिमय से इंगलैंड का जो कारबार इन देशों में था उन्हें खरीद लिया है। औद्योगिक विकास में भी इनकी स्टर्लिंग रकम लग चुकी है। इस प्रकार से इन सब देशों के उद्योग-धन्धों से विदेशी प्रभुत्व हट गया है। हमारा देश विदेशी हुकूमत के कारण इस प्रकार का फायदा नहीं उठा सका। सामग्रियों के विनिमय से इंगलैण्ड भारत को सोना दे सकता था जिससे स्टर्लिंग के बारेमें अभी जो समस्यायें उपस्थित हुई हैं वे नहीं हो पातीं लेकिन इंगलैंड ने यह भी नहीं किया। किसी किसी का कहना था कि इंगलैण्ड के पास सोना था ही कब? बात सच है, लेकिन साथ ही साथ यह भी कहना होगा कि कुछ दिन बाद इंगलैण्ड ने अफ्रिका के सोने से भारत में व्यवसाय करके काफी फायदा उठाया, पर सोना इंगलैंड भारत को दे सकता था। जो भी हो यह सोना अगर हमें सामग्रियों के विनिमय में प्राप्त होता तो आज हमें जितनी समस्याओं का सामना करना पड़ता है वह न होता और हम जिस देश से चाहते सामग्रियां खरीद सकते।

हमारी स्टर्लिंग रकम कष्ट प्राप्त सम्पत्ति है और उसका समुचित उपयोग होना विशेष जरूरी है। आज हमारे औद्योगिक उत्पादन की विभिन्न योजनायें यन्त्रोपकरणों के अभाव से केवल कागजी योजनायें ही रह गई हैं। इनको कार्यान्वित करने के लिये यह रकम एक बड़ा साधन है लेकिन इंगलैण्ड की अवस्था ऐसी नहीं है कि वह हमें आवश्यकतानुसार यंत्रोपकरण दे सके। इसलिये हमारा ध्यान उन देशोंकी ओर जाता है

जो हमें यंत्रोपकरण दे सकते हैं, लेकिन इन देशों से वस्तुयें खरीदने के लिये हमें स्टार्लिंग के स्थान में उन देशों का सिक्का चाहिये। अतः जब तक हमें अन्य देशों से यंत्रोपकरण खरीदने के लिये यथेष्ट विनिमय प्राप्त नहीं होता तब तक किसी रचनात्मक योजना का कार्यान्वित होना असम्भव है।

दूसरी लड़ाई खतम होने के बाद कुछ दिन तक भारत को बिना किसी रुकावट के विलायत से उपभोग वस्तुयें मंगवाने का अधिकार प्राप्त हुआ था। इस सुयोग से बहुत सी बेकार सामग्रियां भी आने लगीं और स्टार्लिंग रकम जल्द से जल्द घटने लगी। जनवरी १९४७ में भारत और इंगलैण्ड में हुए आर्थिक समझौते के अनुसार भारत को यह अधिकार दिया गया था, साथ ही साथ स्टार्लिंग को डालर अथवा अन्य सिक्कों में परिवर्तित करने का भी उसको अधिकार था परन्तु यह समझौता अधिक दिन तक स्थायी नहीं रहा। उसी साल अमेरिका के साथ इंगलैंड का जो आर्थिक समझौता हुआ उसके अनुसार स्टार्लिंग के बारे में इंगलैण्ड के साथ भारत, अर्जेन्टाइन, मिशर प्रभृति देशों को नए सिरे से समझौता करना पड़ा। सन् १९४७ के अगस्त महीने में भारत और ब्रिटेन के बीच एक दूसरा समझौता हुआ जिसकी अवधि ६ महीने की थी। सन १९४८ के जनवरी में उसका फिर ६ महीने के लिये नवकरण किया गया। इस समझौते के अनुसार इंगलैण्ड के केन्द्रीय बैंक में रिजर्व बैंक के नाम से २ हिसाब खोले गये। हर साल अनुकूल वाणिज्य से हमें जो स्टार्लिंग प्राप्त होगा तथा हमारी जमा स्टार्लिंग रकम से जितनी स्टार्लिंग उपयोग करने का अधिकार भारत को मिलेगा वह नम्बर १ हिसाब में रखा गया तथा पहले का इकट्ठा स्टार्लिंग जिसका कि भारत अभिरत उपयोग नहीं कर सकता उसको नम्बर २ हिसाब में रक्खा गया। नम्बर १ हिसाब में जो स्टार्लिंग रहेगा उसको भारत उपयोग कर सकेगा। इस समझौते के साथ ही साथ भारत सरकार ने अपना

वाणिज्य पर कुछ रुकावटें लगा दी हैं जिससे कि सिर्फ वही सामग्रियां मंगाई जायँ जो विशेष जरूरी हैं। इस समझौते की अवधि भी जून १९४८ में पूर्ण हो जाती थी। अतः नए समझौते की जरूरत हुई जिसमें निम्नलिखित ३ विषय मुख्य थे:—(१) फौजी सामान आदि का मूल्य—वर्तमान समझौते के अनुसार भारत सरकार इसके मूल्य भुगतानार्थ १३३ करोड़ रुपये की स्टार्लिंग दे दी; (२) अवसर प्राप्त कर्मचारियों के लिये वार्षिकी—इन युरोपियन पदाधिकारियों को देनेके लिये भारत सरकार ने वृटिश सरकार से १९७ करोड़ रुपये की एक वार्षिक वृत्ति खरीदी है जो हमारे स्टार्लिंग पावनों में से कम कर ली जायगी; (३) रक्षा का शेष बटवारा—इसके अनुसार अविभाजित भारत सरकार को ७३ करोड़ रुपये की राशि वृटेन से प्राप्त हुई है। पिछले समझौते के अनुसार भारत को १११ करोड़ रुपयों की स्टार्लिंग रकम उठाने का अधिकार था परन्तु उसमें से ४ करोड़ का उपयोग हुआ था। अतः अवशिष्ट १०७ करोड़ रुपयों के स्टार्लिंग उठाने का भारत को अधिकार है। इसके अतिरिक्त आगामी ३ वर्षों के लिये वृटेन १०७ करोड़ रुपये की स्टार्लिंग रकम चुकाने को तैयार हुआ है। संक्षेप में तीन वर्ष बाद सन् १९५१ के जून में वृटेन भारत का केवल ५८३ करोड़ रुपयों का देनदार रह जायेगा। पहले ही बतलाया गया है कि भारत के आर्थिक पुनर्निर्माण के लिये डालर सम्बन्धित देशों से सामान मंगानेकी आवश्यकता है; जिसके लिये डालर की आवश्यकता होगी। अतः समझौते के अनुसार भारत को २० करोड़ रुपयों के स्टार्लिंग को किसी भी अन्य सिक्के में परिवर्तन करने का अधिकार दिया गया है।

स्टार्लिंग समझौते के बारे में इस देश में काफी चर्चा हुई है पर भारत में इसका मिश्रित स्वागत हुआ है। श्री मनु सूबेदार ने कहा है कि वृटिश के छोड़े हुए फौजी सामान एवं प्रतिष्ठानों के लिये १३३ करोड़ रुपया देना उचित नहीं होता क्योंकि वास्तव में यह राशि कुछ

अधिक नहीं प्रतीत होती और काश्मीर की लड़ाई में इनका काफी प्रयोग भी हुआ है। वार्षिकी के बारे में भी काफी समालोचना हुई है। विवादास्पद मुख्य शर्त तो आगामी ३ वर्षों में मिलनेवाली स्टार्लिंग रकम के बारे में है। इसका परिमाण बहुत ही कम है। सन् १९४७ के शेष ६ महीने में हमें ६५० लाख पाउन्ड तथा १९४८ के पहले ६ महिनेमें १८० लाख पाउन्ड उपयोग करनेका अधिकार मिला था जिसमें हम केवल ४ करोड़ रुपये कीमतकी स्टार्लिंग का ही उपयोग कर सके। इसलिए व्यापारीवर्ग तो सरकारी आयात नीति को दोषी ठहराते हैं और सरकार व्यापारीवर्ग को। आगामी ३ वर्षों में हमें कुल में ८०० लाख पौंड स्टार्लिंग के उपयोग करने का अधिकार मिला है यानी प्रत्येक वर्ष में हम औसत पर लगभग २६६ लाख पाउन्ड स्टार्लिंग कीमत की सामग्रियाँ मंगवा सकेंगे। हमारी आवश्यकता के अनुपात से यह बहुत ही कम है। इंगलैन्ड के लिये वार्षिक ४०० लाख पाउन्ड कीमत की स्टार्लिंग रकम चुकाना कोई कठिन बात नहीं है क्योंकि यह इंगलैण्ड के निर्यात वाणिज्य का २॥ हिस्सा मात्र है एवं इंगलैण्ड की जातीय आमदनी का ०·४५ हिस्सा है। इंगलैण्ड के लिये यह रकम नाम मात्र है और इसको यदि वह ऋणशोध के रूप में देते रहे तो हमें इससे काफी फायदा होगा।

सन् १९४९ के जुलाई महिने में स्टार्लिंग रकम के बारे में फिर से एक नया समझौता हुआ है जिससे १९४८-४९ में सामान खरीदने के लिये ८१० लाख पाउन्ड भारत को दिया जायेगा एवं १९४९-५० तथा १९५०-५१ में वार्षिक ५०० लाख पाउन्ड भारत को मिलेगा; पुराने समझौते के अनुसार इसका परिमाण ४०० लाख पाउन्ड था। सन् १९४८-४९ में सामग्रियों के आयात के बारे में जो फरमाइशें दी गई हैं उसके लिये भी भारत को स्टार्लिंग दिया जायेगा। इनके अलावा केन्द्रीय रुपान्तर योग्य स्टार्लिंग कोषसे ८४० लाखकी स्टार्लिंग भारत को "मदद" के तौर पर लन्दन समझौते के

आधार पर मिलेगा एवं सन् १९४९ में डालर सम्बन्धित देशों से हमारा प्रतिकूल वाणिज्य परिमाण चुकाने के लिए १४० लाख पाउन्ड प्राप्त होगा। नए समझौते में भारत स्टालिंग इलाके के दूसरे देशों की तरह डालर सम्बन्धित देशों से प्रतिशत २५ आयात घटाना मंजूर किया है। साथ ही साथ भारत फिर से स्टालिंग इलाके का पूर्ण सदस्य बन गया है एवं केन्द्रीय कोष से दुष्प्राप्य सिक्का उठाने के बारे में भारत पर जो प्रतिबन्ध लगाया गया था नए समझौते में उसका अन्त कर दिया गया है।

सन १९५१ के बाद हमारी थोड़ी सी रकम ही इंगलैण्ड में बच पायेगी जिससे अधिक विदेशी रकम हमारे देशमें ही लगी हुई है। इस दृष्टि से इस रकम के डूबने की आशंका नहीं है परन्तु स्टालिंग की कीमत घटाये जाने पर भी इस रकम के लिये हम स्टालिंग का सम्बन्ध नहीं छोड़ सके चाहे वह हमारे लिये कितना ही अनिष्टकारक क्यों न हो। यन्त्रोपकरणोंके अभाव से भी हमारी स्टालिंग रकम का पूर्ण उपयोग नहीं हो सका है जिसके लिए सरकार भी कुछ हद तक दायी है। उपलब्ध सामग्रियों से पूरा फायदा उठाने के लिये उद्योगपतिओं के साथ सरकार को हर तरह से सहयोग देना पड़ेगा। इस रकम को इकट्ठी करने में हमें बहुत सी कठिनाइयां सहनी पड़ी हैं; अब यदि हम इससे पूरा फायदा उठाकर अपने आर्थिक भविष्य को उज्ज्वल बना सकें, औद्योगिक विकास कर सकें, जनता के जीवन का स्तर ऊंचा कर सकें तो हम अतीत के सारे दुःख कष्टों को भूल सकेंगे। यदि किसी की भी गलती से ऐसा करना सम्भव नहीं हुआ और इस रकम की बर्बादी हुई तो हमें उत्तर-पुरुषों के सामने जवाब देना पड़ेगा। इस महान उत्तर-दायित्व को दृष्टिगत रखकर हमें स्टालिंग रकम का उपयोग करना चाहिये।

डालरकी कमी—मार्शल योजना

डालर की कमी का कारण—गत महायुद्ध में एशिया तथा यूरोप के विभिन्न देशों में बहुत से उद्योग-धन्धे तथा सामग्रियां नष्ट हुई थीं युद्धोत्तर समय में इन सब देशों की आर्थिक पुनर्गठन के लिये विशेष आवश्यकता है। सभी देश अमेरिका से आर्थिक सहायता की आशा लगाये बैठे हैं क्योंकि आज अमेरिका एकमात्र महादेश है जो अपनी आवश्यकता से अतिरिक्त सामग्रियां पैदा करता है। अन्तर्राष्ट्रीय मुद्राकोष, अन्तर्राष्ट्रीय बैंक तथा अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार संस्था—इनका उद्देश्य दुनिया के विभिन्न देशों को आर्थिक मदद पहुंचाना है। आर्थिक आवश्यकता की दृष्टि से दुनिया के विभिन्न देशों को हम दो हिस्सों में बांट सकते हैं एक तो यूरोप के विभिन्न देश जहां लड़ाई के पहले काफी औद्योगिक विकास हो चुका था लेकिन लड़ाई के कारण इसमें हानी पहुंची, एवं दूसरी ओर एशिया के विभिन्न देश जहां आज आर्थिक विकास करने की आवश्यकता है। अमेरिका ही ऐसा एक देश है जो इन सब देशों को समुचित सामान तथा धन देकर सहायता कर सकता है।

अमेरिका का विदेशी व्यापार—सन् १९४२ में अमेरिका के आयात वाणिज्य की कीमत ५१० करोड़ डालर थी तथा निर्यात वाणिज्य की कीमत १२० करोड़ डालर थी यानी आयात-निर्यातमें अमेरिका के लिये ७२० करोड़ डालर अनुकूल विषमता थी। अमेरिका को विभिन्न देशों से जहां लड़ाई के सामान बेचे गये उससे लगभग १०० करोड़ डालर पावने थे। सन् १९४८ मे अनुकूल विषमता का परिमाण ५५४ करोड़ डालर था।

इंगलैन्डमें डालरकी कमी—लड़ाई के बाद इंगलैन्डके निर्यात वाणिज्यमें कमी हो गई। अमेरिकाके साथ इंगलैन्डका ऋण द्वारा समझौता हुआ जिसके

द्वारा अमेरिका के युद्ध कालीन चौहद्दी इंगलैन्ड तक कर दी गई एवं अमेरिका इंगलैन्ड को सामरिक वस्तुएं भेजता रहा। सन् १९४५ में इंगलैन्ड के साथ अमेरिका का एक उधार समझौता हुआ जिसके अनुसार इंगलैन्ड को ३७५ करोड़ डालर कर्ज देना निश्चित हुआ। कैनाडा से इंगलैन्ड को १२५ करोड़ डालर कर्ज मिला इस पर भी डालर की कमी चलती रही एवं बृटिश सरकार को डालर सम्बन्धित देशों से सामान खरीदने पर नियंत्रण लगाना पड़ा। लड़ाई के वक्त ही इंगलैन्ड ने सामाजिक डालर संचिति नामक एक संस्था को कायम किया एवं लड़ाई के समय अनुकूल व्यापारिक विषमता के कारण भारत आदि जिन देशों के हाथ में डालर इकट्ठे होते थे उन्हें इस संचिति में आकर्षित किये। इस डालर के बदले में सरकारी स्टर-लिंग डालर विनिमय दर के हिसाब से, जो कि बाजार दर से बहुत कम था भारत को स्टार्लिंग दिया गया एवं इस स्टार्लिंग के आधार पर भारत में मुद्रा प्रसार हुआ। (हमारे स्टार्लिंग पावने विषयक निबन्ध देखिये)

डालर की कमी और मार्शल योजना—यूरोप के देशोंके आर्थिक संगठन के लिये इस योजना को कायम किया गया ताकि डालर की कमी होते हुये भी इन देशों के आर्थिक पुनर्गठन के लिये अमरीकी सहायता मिलती रहे। संयुक्तराष्ट्र अमेरिका के सचिव जार्ज मार्शल के शब्दों में "युरोप विपत्ति ग्रस्त है……अतः उसके सारे देशों के पुनरुद्धार के बिना वास्तविक पुन-र्जीवन सम्भव नहीं। इस पुनरुद्धार के लिये बाहरी सहायता आवश्यक है… और इसकी पूर्ति का उत्तरदायित्व अमेरिका के लोगों पर आ पड़ा……… अमेरिका के कोई साम्राज्यवादी अभिप्राय तो नहीं है, परन्तु यह कहना ठीक नहीं होगा कि विश्व पुनरुद्धार के लिये अपने सबको देनेके बदले में अमेरिका की कोई अपनी मांग नहीं है।" मार्शल योजना का स्पष्ट लक्ष्य अमरीकी व्यापार का विस्तार करना है।

अमेरिकी सहायता की आवश्यकता—इस सहायता का अधिकांश भाग

मार्शल योजना के हिसाब में इंग्लैण्ड तथा युरोप को मिला है। एशिया के विभिन्न राष्ट्रों को भी आर्थिक सहायता की आवश्यकता है। इन सब देशों की आर्थिक उन्नति होने पर ही अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग पूरी तौर से कायम हो सकता है। इसके लिये अमेरिका की आर्थिक नीतिमें भी परिवर्त्तन करने की आवश्यकता है जिससे दूसरे देशों का माल अमेरिकामें खरीदा जाय और व्यापार-विनिमय की समस्या सुलझ जाय।

भारतमें डालर की कमी—लड़ाईके वक्त से भारत तथा ब्रिटिश साम्राज्य के दूसरे देशों की डालर रकम साम्राज्यिक डालर संचिति में इकट्ठी की जाती है एवं ये देश इस रकम के एक मामूली हिस्से को ही अपनी आर्थिक उन्नतिके लिये उपयोग कर सकते हैं। यदि हमें लड़ाई के वक्त अपने डालर के विनिमय से अमेरिका से सामान मंगाने का अधिकार रहता तो हमारी आर्थिक स्थिति इतनी ज्यादा नहीं बिगड़ती कारण एक ओर तो डालर के बदले में हमें जो स्टार्लिंग रकम मिली वह भी विलायत में जमा होती रही एवं उसके आधार पर भारत में मुद्राप्रसार चलती रही तथा दूसरी ओर यंत्रोपकरणों के अभाव से हम औद्योगिक विकास न कर सके। सन् १९४८ के पिछले ६ महीने में हमें ८०० लाख डालर तथा सन् १९४८ के जुलाई से १९४९ के जून तक ६०० लाख डालर उपयोग करने का अधिकार मिला था। युद्धोत्तर समय में अनाज तथा दूसरी सामग्रियां आती रहीं और व्यापार की प्रतिकूल विषमता बढ़ती रही। देश विभक्त होने के कारण रूई, पाट, चमड़ा आदि जो डालर प्राप्त करने के मुख्य साधन थे वे भी हमारे हाथ से जाते रहे। हमारी आर्थिक योजनाओं को सफल-सिद्ध बनाने के लिये भी हमें डालर ही की आवश्यकता है क्योंकि वर्तमान समय में अमेरिका एक मात्र देश है जो दूसरों को सामान दे सकता है।

डालर संकट का सुझाव—यह समस्या तबही हल हो सकती है जबकि पृथ्वी के विभिन्न देशोंमें पर्याप्त सामग्रियां बनने लग जावें। युद्ध के बाद

उद्योग-धन्धों को संरक्षित किए बिना तत्कालीन भारतीय आर्थिक स्थिति में उद्योग-धन्धों का द्रुत विकास होना असम्भव है।

संरक्षण नीति का समर्थन करते हुए इस कमीशनने इस विषय पर काफी प्रकाश डाला। कमीशन का कहना था कि भारत सरकार की अबाध वाणिज्य नीति के कारण तथा पाश्चात्य के समृद्ध उद्योग-धन्धों की प्रतिस्पर्द्धा से भारतीय उद्यम पर पानी फिर रहा है। भारत में विलास सामग्रियों की काफी खपत है; भारतमें विभिन्न प्रकार की कच्ची सामग्रियों की पैदावार होती है; भारतीय खनिज सम्पद अतुलनीय है; जलविद्युत उत्पादनका बड़ा साधन हमारे पास है; हमारे पास काफी मजदूर हैं जिनकी निपुणता औद्योगिक शिक्षा के द्वारा बढ़ाई जा सकती है; भारतमें बेशक पूंजी का अभाव दिखाई पड़ रहा है लेकिन इसका दायित्व वर्त्तमान स्थिति पर है। भारत में संतुलित अर्थव्यवस्था को कायम करने के लिए औद्योगिक विकास की आवश्यकता है, जिसमें तरह-तरह के कारखाने भारत के विभिन्न प्रान्तों में स्थापित किए जांय। इन्हें बाल्यावस्था में संरक्षित करना पड़ेगा। भारत में औद्योगिक यंत्रोपकरणों को पैदा करने के लिए मूल शिल्प जैसे की लोहा तथा इस्पात के कारखानें, रासायनिक सामग्रियां पैदा करने वाले शिल्प आदि स्थापित किए जांय इन्हें भी संरक्षित करने की आवश्यकता होगी। इनके अलावा जिन उद्योग-धन्धों पर विदेशी अनुचित प्रतिस्पर्द्धा का बुरा असर पड़ रहा है उन्हें भी संरक्षित करना होगा, आर्थिक सहायता देनी होगी। देश रक्षा के लिए आवश्यक उद्योग-धन्धों को संरक्षित करने के प्रश्न पर भी इस कमीशन ने महत्व दिया।

संरक्षित शिल्प व्यवस्था में जो त्रुटियां रहती हैं तथा इससे उपभोग कारियों को जो कष्ट उठाना पड़ता हैं इनके बारे में कमीशन अनजान न थी। इनको रोकने के लिये कमीशन ने एक नई संरक्षण नीति पर महत्व

दिया जिससे बिना बिचारे किसी भी उद्योग को संरक्षित नहीं किया जावेगा। सिर्फ वही उद्योग-धन्धें संरक्षण के अधिकारी बनेंगें जिनको विदेशी प्रतियोगिता से असुविधायें हो रही हैं; इन्हें यदि कुछ दिन तक संरक्षित किया जाय तो वे विदेशी प्रतियोगिता के सम्मुखिन हो सकेंगे। संरक्षण की मात्रा भी सोच विचार कर स्थिर करनी होगी ताकि वह न तो आत्यधिक हो और न बेकार रहे। संरक्षण निर्दिष्ट कालतक दिया जायगा तथा इसे क्रमानुसार उठा लिया जायगा। यह नीति वैज्ञानिक या पक्षपातयुक्त संरक्षण नीति के नाम से परिचित है।

किसी भी उद्योग-धन्धोंको संरक्षित करने के पहले जांच निकालनेके लिये एक संस्था यानी टेरिफ बोर्ड स्थापित किया जावेगा। इसका सिद्धान्त निम्न ३ विषयों पर आधारित होगा :—

(१) सिर्फ उन्हीं उद्योग-धन्धों को संरक्षित किया जाय जिनके लिये आवश्यक साधन, मजदूर तथा बाजार भारतमें मिल सकते हैं; (२) वे उद्योग-धन्धे ऐसे होंगे जिनके संरक्षित किए बिना उनकी उन्नति असम्भव है, उनका विकाश जल्द न हो सकेगा, (३) वे उद्योग-धन्धें ऐसे होंगे जो कुछ दिन संरक्षित होने पर विदेशी प्रतिस्पर्द्धा के सम्मुखिन हो सकेंगे। भारत सरकार ने संरक्षण के बारे में फिसकल कमीशन के इन सिद्धान्तों को ग्रहण किया। इस नीति के अनुसार जिन उद्योग-धन्धों को संरक्षित किया गया है वे निम्न प्रकार के हैं :—लोहा तथा इस्पात का कारखाना, कपड़ा, चीनी, कागज, कागज का मंड तथा दियासलाईयाँ उत्पादन करनेवाले कारखाने। सरकार में संरक्षण के बिना इन उद्योग-धन्धों का टिकना असम्भव था। सिर्फ यही नहीं बल्कि संरक्षण के आधार पर चीनी पैदा करनेवाले अनेक कारखाने भारत में हो चुके हैं। सन् १९३०—३१ में भारत में चीनी पैदा करने वाले कारखानों की संख्या ३२ थी जिनकी पैदावार १ लाख ५८ हजार टन की थी। इस साल भारत में १० लाख टन चीनी विदेश से आई थी।

सन् १९२६—२७ में भारत तथा ब्रह्म देश में १३७ चीनी के कारखाने स्थापित हो गये जिन्होंने ११ लाख ११ हजार टन चीनी की उत्पादन की। इससे यह सुस्पष्ट हो रहा है कि भारत में संरक्षण को कितनी आवश्यकता थी। संरक्षण के आधार पर टाटाका कारखाना इतना बना छोटी का बन गया; हमारे वस्त्र शिल्प पर भो व्यापारिक मंदी की पूरी चोट न आ सकी।

वैज्ञानिक संरक्षण नीति के पक्ष में कहने को बहुत सी बातें हैं लेकिन इनके विपक्ष में भी बहुत सी बातें हैं। बिना विचारे किसी भी उद्योग को संरक्षित करना क्षति कारक है; लेकिन "वैज्ञानिक संरक्षण" नीति से भारत की विदेशी हुकूमत को यह सुविधा मिली कि वह अपनी इच्छानुसार उद्योग-धन्धों को संरक्षित करने लगी लेकिन भारतीय आर्थिक विकास की दृष्टि से नही। संरक्षण के बारे में सलाह देने का काम टेरिफ बोर्ड का था लेकिन इस सलाह के अनुसार काम होगा या नहीं इसका निश्चय करने का पूरा अधिकार भारत सरकार का रहा। इसलिये जिन उद्योग-धन्धों का विकास इंगलैन्डकी साम्राजिक नीतिका विरोधी था जैसे कि मूलशिल्प, देश रक्षा शिल्प, यातायात साधन पैदा करने वाले शिल्प आदि इन्हें संरक्षण नीतिकी सहायता न मिली। संरक्षण नीति के साथ साम्राजियक रियायत की नीति ग्रहण की गई जिससे भारतीय व्यापार की धारा कृत्रिमता के साथ साम्राज्यिक देशोंकी ओर कर दी गई। इस कारण से भी भारतीय उद्योग-धन्धों को विशेषतः नये उद्योगों को इस नीति से पूरा फायदा न हुआ। इसके अलावा विदेशी मूलधन के आयात तथा भारत में विनियोग पर कुछ भी नियंत्रण न था। इससे जिन उद्योग-धन्धोंको संरक्षित करने के लिये प्रयत्न किया गया उनमें विदेशी पूंजी का विनियोग हुआ और इससे भारतीय उद्यम पर चोट पहुंची। दियासलाई पैदा करनेवाला शिल्प इसका सबसे बड़ा उदाहरण है। इस तरह से साम्राजियक दबाव के कारण सरकारी संरक्षण नीति से भारतीय उद्योग पूरा फायदा न उठा सका।

लड़ाई शुरु होने के बाद उद्योगपतिगणने सरकार से संरक्षण नीति को स्पष्ट करने के लिये कहा, लेकिन यह मांग बहुत दिनों तक उपेक्षित रही। अन्त में सरकार ने यह घोषित किया कि जो उद्योग-धन्धे लड़ाई के वक्त प्रधानत लड़ाई के लिये स्थापित किए जावेंगे उन्हें युद्धोत्तर समय में विदेशी प्रतियोगिता से बचाने के लिये जितनी संरक्षण की आवश्यकता होगी उतना संरक्षण दिया जायगा। इस प्रतिश्रुति के अनुसार लड़ाई खतम होने के बाद उद्योग-धन्धों की स्थिति-निर्णय के लिये सरकार ने एक टेरिफ बोर्ड स्थापित किया। सिर्फ लड़ाई के वक्त स्थापित किये गये उद्योग धन्धों की ही नहीं बल्कि दूसरे उद्योग-धन्धों की स्थिति निर्णयका दायित्व भी इसपर सौंपा गया। इस बोर्ड के सिद्धान्त के अनुसार कई छोटे छोटे उद्योग धन्धों को संरक्षित किया गया है। कई उद्योग-धन्धों के बारे में वर्त्तमान राजस्व शुल्क को संरक्षण शुल्कमें रूपान्तरित किया गया है जैसे कि कास्टीक सोडा, ब्लिचिंग पाउडर पैदाकरने वाले शिल्प। कागज तथा लोहा और इस्पात उत्पादन करने वाले उद्योग-धन्धों का संरक्षणबन्धन उठा लिया गया है। सन् १९४८ के अगस्त महीने में टेरिफ बोर्ड को निम्न विषयों पर जाँच करने का अधिकार दिया गया :—(१) सरकारी आवश्यकता के अनुसार टेरिफ बोर्ड किसी भी सामग्री की उत्पादन व्यय को तथा थोक तथा फुटकर विक्रयमूल्य को निर्णय करेगी तथा सरकार को इनका विवरण देगी। (२) सरकारी आवश्यकता के अनुसार विदेशी माल की अनुचित प्रतियोगिता से भारतीय उद्योग-धन्धों को बचाने की सलाह देगी। (३) विभिन्न सामग्रियों पर मूल्यानुपाती तथा संख्यानुसार शुल्क के प्रभाव तथा दूसरे देशों को दिया हुआ शुल्क विषयक सुविधाओं पर जांच करेगी। (४) संरक्षित उद्योग-धन्धों में यदि एकाधिकार की उत्पत्ति हो तथा उसके यदि स्वार्थसाधन की असुविधायें हो तो उन्हें रोकने के लिये यह बोर्ड सलाह देगी। (५) संरक्षित उद्योग-धन्धों की प्रगति पर ध्यान

रखना तथा परिवर्त्तित स्थिति के अनुसार संरक्षण शुल्कको मात्रा में परिवर्तन करनेकी सलाह देने का दायित्व भी इस संस्था पर रहेगा।

भारतीय यातायात प्रवन्ध—जहाज़-निर्माण-शिल्प-असामरिक उड़न-विद्या

यातायात प्रवन्ध का महत्त्व—यातायात के आधुनिक प्रबन्धों के कारण व्यापार, स्थान तथा काल की सीमा को अतिक्रम कर गया है। पूंजीवादी उत्पादन व्यवस्था का विस्तार, विभिन्न देशों में पारस्परिक निर्भरशीलता, संक्षेप में एक विश्वव्यापी अर्थ-व्यवस्था, आधुनिक यातायात प्रबन्ध के प्रसार से ही सम्भव हुआ है। इसका नतीजा यह हुआ है कि आज उत्पादन वितरण उपभोग तथा संघर्ष इन सारी बातों को विश्व की दृष्टि से सोचना पड़ता है। बड़े पैमाने पर अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार तथा अन्तर्राष्ट्रीय श्रम विभाग भी यातायात प्रवन्ध का फल है। भारत की अर्थ व्यवस्थाके लिए आधुनिक यातायात प्रवन्ध सहायक हुआ है या नहीं इसके बारेमें विभिन्न मत प्रचलित हैं। कुछ लोगों का कहना है कि भारत में रेल रास्ते का विस्तार होनेपर दुर्भिक्ष की तीव्रता कम हो गयी है तथा आधुनिक उद्योग-धन्धे और व्यापार की उन्नति सम्भव हुई है; भारतीय कृषि व्यवस्था को भी इससे फायदा पहुँचा। दूसरे लोगों का कहना है कि आधुनिक यातायात प्रबन्ध होनेके कारण विदेशी सामग्रियां भारत में प्रतिस्पर्धा उत्पन्न कर रही हैं जिससे हमारे सारे घरेलू उद्योग-धन्धे नष्ट हो गये हैं या कमजोर हो गये हैं; भारत एक कृषि-निर्भर देश बन गया है तथा भारत की सन्तुलित अर्थ-व्यवस्था में विशृंखला आ गयी है। इनके अलावा भारत में यातायात का प्रबन्ध करने

में जिस तरह से पूंजी की बर्बादी हुई थी वह भी सोचनेकी बात है। जो भी कुछ हो आधुनिक समय में यातायात प्रबन्ध का विरोध करना अनुचित है कारण इसके अलावा देश में पूंजीवादी उद्योग-धन्धे तथा व्यापार का विस्तार नहीं हो सकता।

सड़कें—भारत में कुल सड़कों की लम्बाई २ लाख ९६ हजार मील है जिसमें पक्की सड़कें ६५ हजार मील हैं। बृटेन तथा संयुक्तराष्ट्र अमेरिका के हिसाबसे भारतमें सड़कें बहुत कम हैं और इनमें भी ज्यादातर सड़कोंकी हालत सोचनीय है। भारत जैसे महादेश में ग्रेण्ड्ट्रंक रोड की तरह बड़ी-बड़ी सड़कों की आवश्यकता है ताकि विभिन्न प्रान्त एक दूसरे से सम्बन्धित हो सकें। देहातों में सड़कें ज्यादातर कच्ची होती हैं जिससे वर्षा के समय वे कीचड़ से तथा जाड़े के समय धूल से भरी हुई रहती हैं जिससे उनको व्यवहार में लाना मुश्किल हो जाता है। सन् १९२७ में जयाकर कमेटी की सलाह के अनुसार एक केन्द्रीय सड़क उन्नयन कोष तथा एक सलाह देनेवाली संस्था स्थापित की गई है। सन् १९४३ में नागपुर में इंजिनियरों के एक जलसे में सड़कों के बारे में एक योजना बनाई गई थी। भारत सरकार ने इस योजना को स्वीकार किया है। इस योजना की मियाद ५ वर्ष की है। सन १९४७ से लगाकर आगामी ५ वर्षों में ३० करोड़ रुपये लगाकर १४ हजार मील लम्बी सड़कें बनाई जावेगीं।

रेल-रास्ता—यातायात साधनों में रेल-रास्ता सबसे अधिक महत्व रखता है। भारत तथा पाकिस्तान में रेल-रास्तों की लम्बाई ४३ हजार मील है। बृटेन में प्रति सौ वर्गमील में २० मील पर रेल-रास्ते हैं। भारत में कुल २॥ मील हैं। भारतीय रेल-रास्तों का स्वामित्व कुछ तो भारत सरकार पर है, कुछ देशीय राज्यों पर और कुछ परिमित दायित्व कम्पनियों पर। सन् १८५३ में बम्बईसे कल्याण तक भारतका पहला रेल-रास्ता खुला। रेल-रास्ता खोलने में देश-रक्षा का लक्ष्य सबसे अधिक महत्वपूर्ण था। इसको छोड़कर

और भी दो लक्ष्य महत्व पाते थे—एक तो व्यापारिक तथा दूसरा दुर्भिक्ष निवारण। भारतीय रेल-रास्तों के निर्माण का इतिहास बहुत ही विचित्र है। इनके निर्माण का पूरा दायित्व विदेशी कम्पनियों पर रक्खा गया था और ये कम्पनियां जो रकम लगाती थीं उससे मुनाफा हो या नहीं, सरकार ने निश्चित व्याज स्वीकार कर लिया था। इससे रकम की बड़ी बर्बादी हुई। एक समय भारत सरकार ने इस बर्बादी को रोकने के लिए रेल-रास्तों का पूरा दायित्व अपनेपर ले लिया लेकिन ज्यादा दिन तक यह प्रबन्ध नहीं चल सका। जो भी कुछ हो भारतीय रेल-रास्तों के निर्माण में काफी विदेशी रकम लगाई गई। वर्तमान समय में लगभग ७०२ करोड़ रुपये विभिन्न रेल-रास्तों में विनियुक्त हैं। पहली लड़ाई के बाद रेल-रास्तों के राष्ट्रीयकरण का सवाल भारत सरकार के सामने आया। एकवर्थ कमिटी की सलाह के अनुसार भारत सरकार ने रेल-रास्तोंके राष्ट्रीयकरण का निश्चय कर लिया है एवं इस समय तक एक कम्पनी को छोड़कर सारे रेल-रास्तोंका स्वामित्व भारत सरकार पर आ गया है। सन १९२९ के बादसे रेल-रास्तों की हालत बिगड़ चुकी थी। इसके बारेमें सलाह देने के लिये भारत सरकार की ओरसे सर आर० एल० वेजवुड के नेतृत्व में एक कमिटी नियुक्त की गई तथा इसकी सलाह के अनुसार भारतीय रेल-व्यवस्थामें काफी परिवर्तन भी किये गये। युद्धोत्तर समय के लिए रेल-रास्तों के बारे में भारत सरकार ने ३२८ करोड़ रुपये की लागत की एक योजना बनवाई थी लेकिन युद्धोत्तर विश्रृंखला के कारण यह कामयाब न हो सकी। भारत विभक्त होनेपर लगभग ८ हजार मील रेल-रास्ता पाकिस्तान के हिस्से में आया है। भारत में इंजिन बनाने का कारखाना भी कुछ दिन पहले आसनसोल के पास स्थापित किया गया है। भारत की औद्योगिक क्रान्ति में रेल-रास्तों का प्रसार महत्वपूर्ण होगा इसमें कोई शक नहीं।

रेल-महसूलनीति—भारतमें रेल व्यवस्थाके प्रारम्भसे रेल-महसूलनीति भारतीय उद्योग-धन्धोंके प्रतिकूल रही। महसूल-दर इस प्रकारसे निर्धारित

किये जाते हैं ताकि भारतमें उत्पन्न अनाज तथा कच्चे माल विदेश को जाते रहें और विदेशमें बनी हुई सामग्रियां भारतमें आती रहें। इसके अलावा हमारे बन्दरगाहोंमें उद्योग-धन्धोंका इतना घन-समावेश भी रेल-महसूल नीतिके प्रभावसे हुआ है। रेल-रास्तोंका स्वामित्व जब तक विदेशी कम्पनियों के हाथमें था तब तक वे मनमानी महसूल-दर स्थिर करती थीं। सन् १८६८ में सरकारने सर्वोच्च महसूल-दर स्थिर कर दिया लेकिन इस पर भी दरों की विभिन्नता चलती रही। अतः सन् १८८७ में सरकारने सर्वोच्च तथा सर्वनिम्न दरोंको मान लिया लेकिन इस पर भी महसूल-दरमें सरलता नहीं आई कारण रेल-कम्पनियां एक ही सामग्री पर विभिन्न महसूलें वसूल करती रहीं। सन १८९१ में सरकार महसूल-दरमें फिरसे परिवर्तन की ताकि सामग्रियोंका वर्गीकरण हो जाय तथा कम्पनियां इस वर्गीकरणके अनुसार सर्वोच्च तथा सर्वनिम्न दरोंके बीचमें महसूल-दर निश्चित करे। सन १९१० में पहले पहल पूरी तौरसे सारी सामग्रियोंके लिए महसूल-दर निश्चित किए गये। पहली लड़ाई खतम होनेके बाद सरकारने एकवर्थ साहबके नेतृत्व में एक कमिटी स्थापित की जिसके परामर्श के अनुसार भेजने योग्य सामग्रियां १० श्रेणियों में विभक्त की गईं तथा महसूल-दरें भी बढ़ाई गईं। सन १९३६ में महसूल-दर-नीतिमें फिरसे परिवर्तन हुआ जिसके अनुसार सामग्रियोंको १६ श्रेणियोंमें विभक्त किया गया। इस समयके भारतमें प्रचलित रेल-महसूलों को हम ३ हिस्सोंमें बांट सकते हैं—एक तो 'क्लास' दर, दूसरा 'शिडिउल' दर, तीसरा स्टेशनसे-स्टेशन दर। भारतीय व्यापारी शिकायत करता है कि हमारी रेल-महसूल दरमें इतनी विभिन्नतायें तथा जटिलतायें हैं जिनको सहजमें हृदयङ्गम करना कठिन है। इसके अलावा भारतमें कई रेल कम्पनियां रहनेके कारण अक्सर लम्बी यात्रामें महसूल-दर ऊंचा रहा है। रेल महसूलकी विशेषता यह होती है कि जितनी लम्बाईके साथ ही साथ महसूल दर घट जाती है लेकिन रेल कम्पनियां विभिन्न होनेके

कारण यात्राकी लम्बाईका फायदा व्यापारियोंको नहीं मिलता था। अब ज्यादातर कम्पनियों के उठ जानेके कारण तथा रेल रास्तोंका प्रबन्ध भारत सरकार के हाथोंमें आजाने के कारण यह दूसरी असुविधा दूर हो चुकी है लेकिन महसूल-दरकी विभिन्नतायें तथा जटिलतायें अभी तक जारी हैं। रेलकी जोखिम पर जो माल भेजे जाते हैं उन पर भी महसूल दर ऊंचा रहा है यही व्यापारियोंकी राय है। इसके अलावा महसूल दरोंकी प्रति-कूलता के कारण हमारे उद्योग-धन्धोंको पूरा फायदा उठाना तो दूर रहा उनको हानि हुई है कारण यह नीति हरवक्त ही विदेशी सामग्रियोंकी आयात बढ़ाती रही। वेजउड कमिटीके शब्दोंमें भारतीय रेल रास्तोंका प्रबन्ध बहुत ही अव्यवस्थित तथा असन्तोषजनक है। इसे अगर सुधारना हो तो यातायातका अधिक सुविधा देना होगा तथा व्यावारिक वर्ग तथा व्यापारिक संस्थाओंके साथ हार्दिक सम्बन्ध स्थापित करना होगा ताकि एक दूसरेसे पूरा फायदा उठा सके। युद्धोत्तर समयमें महसूल दरोंको सुधारने के लिए रेलवे बोर्डने कुछ सलाह दी है जो निम्न प्रकार हैं—(१) 'फ्लेट' दरके बदले में टेलेसकोपिक दर कायम किया जाय ताकि लम्बी यात्रा पर महसूल दर घटता रहे। (२) विडिउल दरोंको उठा दिया जाय ताकि महसूल दरमें जो जटिलतायें तथा विभिन्नतायें हैं उनका अन्त हो जाए। (३) भेजनेवाले की जोखिम तथा रेल कम्पनी की जोखिम पर भेजे गये मालोंके दामें जो अन्तर था उसे कम कर दिया जाय तथा स्टेशनसे स्टेशन तक भी कम्पनी की जोखिम पर माल भेजनेका प्रबन्ध किया जाय। जहां तक हो सके माल को सीधे-से-सीधे रास्तेसे भेजना चाहिए तथा महसूल दर दो प्रकारका होना चाहिए जैसे कि लम्बी यात्रा में भेजे गये मालों पर टेलिस्कोपिक दर तथा स्टेशनसे स्टेशन दर। (४) अन्तमें रेलवे बोर्डका कहना है कि महसूल दर ऐसा होना चाहिए जिससे कृषि शिल्प तथा व्यापार इन तीनोंको पूरा फायदा प्राप्त हो सके।

कलकत्तेमें भारतीय कम्पनीके द्वारा एक जहाज निर्माण शिल्पकी प्रतिष्ठा की गई। वास्तवमें काम कुछ भी नहीं हुआ। सिर्फ सरकारने 'डफरिन' नामक एक जहाज को भारतीय नाविकों के शिक्षाके लिए छोड़ दिया। सन् १९२८ तथा १९३६ में विदेशी कम्पनियोंकी अनुचित प्रतिस्पर्धा को रोकने के लिये कानून बनने का प्रबन्ध किया गया था लेकिन उसमें भी कामयाबी न हो सकी। सन् १९३९ में केन्द्रीय महासभाके उपपरिषदमें एक प्रस्ताव पास हुआ जिसमें सरकार को भारतीय जहाजी उद्यम को सुरक्षित तथा विस्तृत करनेके लिये अनुरोध किया गया। जब दूसरी लड़ाई शुरू हुई तब हमारी दुर्बलता और भी स्पष्ट हुई क्योंकि इस समय विदेशी जहाजों का मदद मिलना बिलकुल ही बन्द हो गया था। सन १९४१ में सिन्धिया कम्पनी के उद्योग से विजगापट्टम में जहाज बनाने का एक कारखाना स्थापित किया गया। दुःखकी बात तो यह है कि इस प्रयत्न में सिन्धिया कम्पनी को सरकारी मदद बहुत ही कम मिली। सिन्धिया कम्पनी ने पहले कलकत्ते में कारखाना बनाने का सोचा, लेकिन बन्दरगाही संस्था के असहयोग के कारण उन्हें कलकत्ते में स्थान न मिला। अन्त में विजगापट्टम में कारखाना बनानेका निश्चय किया गया। इसमें लगभग ११५,००० वर्गफुट जमीन में जहाज बननेका आधुनिक प्रबन्ध किया गया है। साथ ही साथ टूटी-फूटी जहाजों की मरम्मत करनेका भी प्रबन्ध किया गया है। जहाजी शिल्प के बारे में यह पहला भारतीय उद्यम है और उसको सब तरहसे मदद करनेकी आवश्यकता है। सन् १९४४ में वाणिज्य सदस्य ने जहाजी शिल्प के बारे में सरकारी नीति को घोषित करते हुए कहा था कि युद्धोत्तर समय में भारतीय जहाजी उद्यम को सहायता दी जायेगी तथा 'भारतीय कम्पनियों के लिये समुद्रतटीय व्यापार तथा विदेशी व्यापार का एक बड़ा-सा हिस्सा संरक्षित किया जायेगा। युद्धोत्तर आर्थिक पुनर्गठन के लिये भारत सरकार ने जो पुनर्निर्माण-नीति-समिति कायम किया था उसकी जहाज-शिल्प सम्बन्धी उप-

समिति ने सन १९४७ के मार्च महीने में अपनी रिपोर्ट पेश की है। इस रिपोर्ट में कहा गया है कि भारत में एक जबर्दस्त जहाजी शिल्प कायम करनेकी आवश्यकता है जिससे कि समीपवर्ती देशों के साथ किये गए व्यापार का प्रतिशत ७० हिस्सा तथा दूर देशोंसे किये गये व्यापार का प्रतिशत ५० हिस्सा भारतीय कम्पनियों के हाथों में आ जाना चाहिये एवं समुद्रतटीय व्यापार का पूरा हिस्सा इनके लिये संरक्षित किया जाय। इसके लिये कमसे कम २० लाख टन भारीकी जहाजें बननी चाहिये। इस रिपोर्ट में यह भी बताया गया है कि राष्ट्र की सुरक्षा तथा व्यापार की उन्नति की दृष्टि से जहाज शिल्प अत्यन्त आवश्यक है; अब तक विदेशी सरकार की घातक नीति से यह शिल्प उपेक्षित ही रहा है तथा भारतीय जनता को इससे काफी हानि पहुँची है। अब हमें इस कमी को पूरी करनी चाहिये ताकि आगामी ७ वर्षों में उल्लिखित भारीकी जहाजें भारतमें बन जायं।

असामरिक वहन विद्या—यातायात साधनों में वहन-विद्या सबसे अधिक आधुनिक एवं महत्वपूर्ण है। पहली लड़ाईके बादसे इसका व्यापक प्रचार हुआ है। विशेषतः बड़े-बड़े देशोंमें तथा व्यापार प्रधान देशोंमें यातायातके इस नये साधन की विशेष आवश्यकता है। पहली लड़ाई के समय हवाई जहाजों का आविष्कार हुआ था लेकिन भारत में असामरिक वहन विद्या का आरम्भ सन १९२७ के बाद से हुआ। सन १९२७-३१ में कई हवाई मैदान बनाये गये तथा सन १९२७-३४ में सरकारी मदद से जोधपुर, दिल्ली, करांची, बम्बई, मद्रास, कलकत्ता, लखनऊ तथा लाहौर में वहन विद्या के प्रचार के लिये कई एक क्लब स्थापित किये गये। इम्पीरियल एयरवेज लिमिटेड ने पहले पहल भारत में आकाश मार्ग से यातायात का प्रबन्ध किया। साथ ही इस सरकार की ओर से भी दिल्ली तथा करांची के बीच यातायात का प्रबन्ध हुआ। सन १९३१ में भारत के बड़े-बड़े शहरोंमें हवाई जहाज से यातायात का प्रबन्ध करनेका विचार भारत सरकार का था लेकिन आर्थिक

मंदी के आविर्भाव से यह सफल न हो सका। इसके बाद वैयक्तिक उद्योग से कई एक हवाई कम्पनियां स्थापित की गईं जिनमें निम्नलिखित कम्पनियां उल्लेखनीय हैं—टाटा सन्स लिमिटेड, इण्डियन एयर सर्वे एण्ड ट्रांसपोर्ट लिमिटेड, इण्डियन ट्रांसकनटिनेन्टल एयरवेज लिमिटेड, हिमालयन एयर ट्रांसपोर्ट एण्ड सर्वे लिमिटेड, हिन्दुस्तान एयरक्रफ्ट लिमिटेड। हिन्दुस्तान एयरक्रफ्ट सिन्धिया कम्पनी के उद्योगसे सन १९४० में बंगालोरमें स्थापित की गई थी। कुछ दिन बाद भारत सरकार ने इसको खरीद लिया है।

युद्धोत्तर समयमें असामरिक उड्डन विद्याके प्रचारके लिए तथा यातायातके सुविधा के लिए भारत सरकारने एक व्यापक योजना तैयार की है जिसके अनुसार विभिन्न बड़े-बड़े शहरोंमें हवाई जहाजसे यातायात की सुविधा हो जाय। इस योजनाका लक्ष्य यह रहा कि आभ्यन्तरीन यातायातका प्रबन्ध भारतमें बनी हुई कम्पनियोंके हाथमें रक्खा जाय तथा भारतमें लगभग १०० हवाई स्टेशन बनाये जांय। इस योजनामें यह भी स्पष्ट किया गया है कि हवाई यातायात प्रबन्धके राष्ट्रीयकरणका विचार निकट भविष्यमें नहीं है लेकिन आवश्यकता पड़ने पर सरकारकी ओरसे भी कम्पनियां काम कर सकती हैं। साथ-ही-साथ यह भी घोषित किया गया है कि हवाई यातायात प्रबन्ध का उपयुक्त विस्तार करनेके लिए एक एयर ट्रांसपोर्ट लाईसेंसिंग बोर्ड स्थापित किया जायेगा ताकि एक ही रास्ते पर एकाधिक कम्पनियोंकी प्रतियोगिता शुरू न हो जाय। हवाई जहाजों के बनाने के बारेमें सरकारी नीति उल्लेखनीय नहीं हैं कारण हिन्दुस्तान एयर क्रफ्ट कम्पनी जिसका लक्ष्य हवाई जहाज पैदा करनेका था वह हवाई जहाजोंके मरम्मत करनेके तथा रेल गाड़ियां बनानेके काममें लगी हुई है।

लड़ाईके बादसे असामरिक उड्डन प्रबन्धका काफी विस्तार हुआ है। एयर ट्रांसपोर्ट लाईसेंसिंग बोर्ड भी स्थापित किया गया है। किस रास्ते पर

कौन-सी कम्पनी काम करेगी इसको निर्धारित करनेका अधिकार इस बोर्डको दिया गया है। युद्धोत्तर समयमें कुछ दिन तक सरकार हवाई संस्थाओं को आर्थिक मदद पहुंचाती रही लेकिन अब आर्थिक मदद बन्द कर दी गई है परन्तु हवाई मैदान ठीक रखना, बेतारका प्रबन्ध करना आदि सारा काम सरकार पर है। असामरिक लोगोंके यातायात की सुविधाके लिए देखरेख करनेका दायित्व भी सरकारी दफ्तरों पर है। इस प्रकारसे सन १९४६ के अक्टोबर महीने तक असामरिक लोगोंके यातायातके सुविधाके लिए १९ कम्पनियां स्थापित की गई हैं। सन १९४८ के रिपोर्ट के अनुसार भारत में असामरिक यातायात प्रबन्ध निम्न प्रकार था :—(१) कलकत्ता, बम्बई तथा दिल्लीमें ३ प्रधान हवाई मैदान हैं जहां पर सारे आधुनिक प्रबन्ध किये गये हैं ; (२) अहमदाबाद, प्रयाग, लखनऊ, मद्रास, नागपुर, पटना तथा विजगापट्टममें बड़े हवाई मैदान हैं ; (३) इनके अलावा १३ मझोला तथा २२ छोटे मैदान भी हैं ; (४) भारतमें शामिल किये हुए देशीय राज्योंमें २६ मैदान हैं ; (५) इनके लिए सन १९४७-४८ में ४०५९००० रुपये की लागत थी ; (६) विभिन्न दफ्तरोंसे तथा लाईसेन्स व सार्टिफिकेट फिरसे बनानेका कर मैदान तथा स्टेशनका किराया आदिसे १६६५९३० रुपये आमदनी हुए थे। सन १९४८ के ३० जून तक खतम होनेवाले १ वर्षमें हमें हवाई कम्पनियोंसे निम्न प्रकारकी सेवा मिली, ३१५४८६ यात्री इससे फायदा उठा सके तथा ६२१६१२७ पाउण्ड वजनका माल, १३२०३९८ पाउण्ड वजनकी डाक सामग्रियां तथा २८०४२३० पाउण्ड वजनके अखबार हवाई रास्ते पर भेजे गये।

भारतमें मुद्रास्फीतिके दुष्परिणाम—
युद्धोत्तर समयमें मुद्रास्फीति

द्वितीय महायुद्धके आरम्भ काल से भारत में जो मुद्रास्फीति हुई है यह हमारे देशके लिए एक नई अभिज्ञता है। मुद्रास्फीतिके कारण रुपयेकी क्रयशक्ति बहुत ही घट गई है। सन १९३९-४० में २०९ करोड़ रुपये कीमतके कागजी सिक्के भारतमें प्रचलित थे ; सन १९४७ में भारत विभक्त होनेके पहले इनका परिमाण १२४२.८६ करोड़ रुपये हो गए। देश विभक्त होनेके बाद भारत तथा पाकिस्तानके कागजी सिक्के पृथक हो चुके हैं लेकिन इनको अगर जोड़ा जाय तो इनका परिमाण १३०० करोड़ रुपयेसे भी अधिक होगा। यह तो सिक्केकी असली राशि है। वास्तवमें क्रियात्मक सिक्केका परिमाण कितना है इसका यथार्थ निर्णय करना असम्भव है। भारतमें जो मुद्रास्फीति हुई इसकी कई एक विशेषताएं सहजमें ही नजरमें आती हैं। साधारण स्थितिमें मुद्रास्फीति होनेपर सामग्रियोंकी कीमत बढ़ती है ; इससे उद्योगपतियोंको मुनाफा अधिक होता है और वे पैदावार जहाँ तक हो सके बढ़ाकर इस परिस्थितिसे अधिक-से-अधिक मुनाफा उठानेका प्रयत्न करते हैं। हमारे देशमें जो मुद्रास्फीति हुई उसमें सिर्फ सिक्केकी राशि ही बढ़ाई गई ; पैदावार न बढ़ी। इसलिए सामग्रियोंकी पूर्ति जरूरत के अनुपातसे बहुत ही कम रही और उनकी कीमत बढ़ती चली। सबसे आश्चर्यकी बात तो यह है कि भारतमें लड़ाईका मोर्चा नहीं बनने पर भी सामग्रियोंकी कीमत सिर्फ चीन और बर्माको छोड़कर सबसे अधिक बढ़ गई। सरकारने सामग्रियोंकी कीमत नियन्त्रित करनेका मामूली-सा प्रबन्ध किया लेकिन वह कामयाब न हो सका। इसका नतीजा यह हुआ कि धन-वितरनकी असमानता और भी बढ़ गई।

लड़ाईके वक्त मुद्रास्फीति क्यों हुई ? विभिन्न अर्थ शास्त्रियोंने इसका विभिन्न कारण बताया है लेकिन इसमें दो कारण मुख्य हैं। एक ओर तो इंगलैण्डमें हमारी जो स्टर्लिंग रकम इकट्ठी हो रही थी उसके आधारपर भारत में कागजी सिक्के जारी किए जा रहे थे और दूसरी ओर भारत सरकारके अल्पमियादी ऋणपत्रोंके आधार पर भी कागजी सिक्के छापे जाने लगे। इस प्रकारसे सरकारके हाथमें कृत्रिम क्रयशक्ति इकट्ठी होने लगी जिसके द्वारा वह लड़ाईका सामान तथा अनाजको नियन्त्रित दर पर खरीद कर ब्रिटिश सरकारको भेजती रही। इससे सामग्रियोंकी कमी और भी बढ़ गई तथा काला बाजार स्थायी तौरपर कायम हो गया। यह स्थिति जल्द ही अर्थशास्त्रियोंकी दृष्टि आकर्षित की और उन्होंने परामर्श दिया कि जिस रीतिसे इंगलैण्ड को सामग्रियां भेजी जा रही हैं और स्टर्लिंग रकम जमा हो रही है, मुद्रास्फीतिको अगर रोकना हो तो इसमें जल्द परिवर्तन कर देना चाहिए, कारण दूसरे देशोंमें रकम इकट्ठी होने देना क्षति कारक है इंगलैण्डको अगर भारत से सामान खरीदना हो तो वह नकद मूल्य देकर खरीद सकता है। जो स्टर्लिंग रकम इकट्ठी हो चुकी उसके बारेमें भी इन्होंने सलाह दी कि उसको जल्दसे जल्द अपने अधिकारमें ले आना चाहिए। चाहे तो इंगलैण्ड इसके बदलेमें सोना दे दे या सोना देनेकी प्रतिश्रुति दे और नहीं तो [illegible], संयुक्त राष्ट्र अमेरिका, कैनाडा प्रभृति देशोंकी तरह भारत स्थित विदेशी उद्योग-धन्धोंको इस रकमके विनिमयमें खरीद लिया जाय। वास्तवमें सरकारने ऐसी कोई भी कार्रवाई नहीं की और न स्टर्लिंग की भावी कीमतके बारेमें ब्रिटिश सरकारसे कोई प्रतिश्रुति ही प्राप्त हुई। इसलिये मुद्रास्फीतिको रोकनेके लिए सरकारी व्यय नियन्त्रित करनेकी आवश्यकता थी लेकिन सरकारने इस विषय पर भी ध्यान नहीं दिया। [illegible] घटानेके लिए उन्होंने कर [illegible] तथा [illegible] विभिन्न किस्मके [illegible] जारी किए। साथ ही साथ सरकारने [illegible] सामग्रियोंपर कर [illegible]

विक्रय नियन्त्रित किया लेकिन इनमें अधिक सफलता नहीं हुई तथा सामग्रियों की कीमत बढ़ती चली।

मुद्रास्फीतिके दुष्परिणाम कितने ही भयानक क्यों न हों, लड़ाई के वक्त ये कुछ हद तक अवश्यम्भावी थे लेकिन आश्चर्य की बात तो यह है कि लड़ाई के अन्त होने पर भी हमारे देशमें मुद्रास्फीति चल रही है और सामग्रियों की कीमत दिन पर दिन बढ़ रही है। वर्तमान स्थिति के लिए किसी एक कारण को दायी नहीं किया जा सकता; इसके कई कारण तो लड़ाईके वक्त से ही चले आ रहे हैं और कई कारण उसके बादकी स्थिति से आविर्भूत हुए हैं। लड़ाईके प्रारम्भसे सन १९४५-४६ के शेष तक भारत सरकार इंगलैण्डको १७४४ करोड़ रुपये कीमत की सामग्रियां भेज चुकी थी सन १९३९-४० से लगा कर १९४५-४६ तक भारत सरकारकी बजटमें ७९५ करोड़ रुपयेकी कमी थी। इस प्रकारसे नोट पत्तोंका परिमाण २५३५ करोड़ रुपया था। इनमें से सरकार को १२३६ करोड़ रुपया कर्ज मिला; अवशिष्ट १२९९ करोड़ रुपयेकी कमी पूरी करनेके लिए सरकारको नोट छापना पड़ा। देश विभक्त होने पर भी लड़ाई के वक्त जितने रुपये प्रचलित थे अब उससे अधिक हैं। युद्ध समाप्त तथा स्वराजकी प्राप्तिके बाद लोगोंने समझा था कि युद्ध-कालीन वस्तु अभाव के संकट शीघ्र दूर होंगे लेकिन यह आशा मृगतृष्णा ही रही; रवैय्या पूर्ववत ही चलती रही। युद्धोत्तर मुद्रास्फीतिके कारण निम्न प्रकार हैं :—

(१) उत्पादन तथा वितरण—देशमें खाद्यान्नोंका दुष्काल चल रहा है। हमारी अन्तरकालीन सरकारने इन्हें दूर करने के लिए प्रयत्न किया; उत्पादन बढ़ानेके लिए सरकार दो योजनाएँ भी बनाई, पर उत्पादनके सीधे क्षेत्रमें युद्ध-कालीन बिमारियोंसे शीघ्र छूट जाना और बढ़ा सकना टेढ़ी खीर थी। इसलिए विदेशोंसे अनाज मंगानेके प्रयत्न भी हुए। यह तो अल्प कालीन योजना थी। दीर्घ-कालीन योजनाओंमें दामोदर घाटी योजना, महानदी

योजना तथा कोलम्बो योजना मुख्य हैं। साथ-ही-साथ अभाव तथा संकट तोड़नेके लिए ट्रैक्टर-प्रणाली को भी कार्यान्वित की गयी ; परन्तु ऐसी दीर्घकालीन योजनाएँ अधिक समय पर तथा सरकार की सुदृढ़नीति पर अवलम्बित होती हैं। फलतः वर्त्तमान खाद्य-संकट बना रहा। वस्तु-उत्पादन भी कम था। उद्योग-धन्धोंके क्षेत्रमें यद्यपि सरकारने अपनी श्रम नीतिमें उचित मजदूरोंके समझौतोंको उत्पादित किया, मँहगाई भत्तेका प्रबन्ध किया तथा कारखानोंमें सुधारोंको महत्वपूर्ण स्थान दिया तथापि वह अनेक सामग्रियोंको पैदा करनेमें समर्थ न हो सकी।

(२) सरकारी व्यय बढ़ा—विभिन्न कारणोंसे सरकारी व्यय बढ़ा ; इनमें बहुतसे कारण अनावश्यक भी थे। साथ ही काश्मीर तथा हैदराबाद पर व्यय बढ़ाना आवश्यक था ही और शरणार्थियोंको पुनः बसाना और उन्हें काम देना—इनपर सरकारी व्यय करोड़ों तक पहुँच गई। इस प्रकार सरकार के सार्वजनिक ऋण बढ़े किन्तु उनसे पूर्ण प्रबन्ध असम्भव था। सरकारी कर्मचारियोंकी अयोग्यता और उनका नैतिक अधःपतन भी इस स्थिति में हाथ बटाया और इनके साथ भ्रष्ट व्यापारी वर्ग भी आ शामिल हुए।

(३) सरकारकी व्यापार तथा यातायात नीति—रेलों द्वारा शीघ्रता से आवश्यक वस्तुओंका समयोपयुक्त परिवहन नहीं होता था और न इनको विशेष पूर्णत्व ही दिया गया था। वस्तुओंकी चोरी निरन्तर चलता रहा। व्यापार क्षेत्रमें विलासिताकी वस्तुओंका प्रवेश कम-से-कम कुछ दिनोंके लिए रोक देना ही ठीक था लेकिन उनका प्रवेश अधिकारीवर्गकी कृपा पर चलता रहा और आज भी चलता है। इसका स्पष्ट परिणाम जीवन सम्बन्धी वस्तुओं के ऊपर पड़ता है। हमारी राष्ट्रीय सरकार अब इस ओर कुछ सजग हो चुकी है लेकिन मशीनों और संशोधनकर्त्ताओं को प्राप्त करना कठिन है इसलिए उत्पादन भी इतना नहीं बढ़ायी जा सकती। साथ ही साथ कारखानों उद्योगपतियोंसे

भी पूरा सहयोग नहीं मिल रहा है जिसके लिए सरकार की शिल्पनीति तथा कुछ मंत्रियों की अस्थायी विचारधारा रही है।

उपर्युक्त आर्थिक विश्लेषण से यह सिद्ध होता है कि मुद्रास्फीति की भयंकर बिमारी अत्यधिक वेगसे बढ़ गई थी। इस बीमारीको सरकार एवं राष्ट्र के पूर्ण सहयोग से ही दबाया जा सकता है। अतः सरकारने जो प्रबन्ध करना शुरु किया, उनको दो भागोंमें बांटा जा सकता है—परामर्श दाती विचार तथा सरकारी कारवाई। अर्थ शास्त्रियोंकी परिषदमें सरकारी अर्थ-शास्त्रियोंके सुझाव, उद्योगपतियोंके परिषद तथा उनका स्मारपत्र, श्रमिकोंका दृष्टिकोण प्रभृति पहले के अन्तर्गत थे। दूसरेके अन्तर्गत सरकारी ४ अक्टूबर की महत्त्वपूर्ण घोषणा आती है जिसमें परामर्शदाती विचारोंके आधार पर वर्त्तमान मुद्रास्फीतिके संकटको टालने के लिए विभिन्न विचारोंमें ३ मुख्य दिशाओंमें सुझाव दिये गये हैं—उत्पादन, मुद्रा और कर। उत्पादन बढ़ानेके लिए प्रायः सब मत एक हैं, किन्तु उत्पादन बढ़ानेमें जो विधियां और साधन होने चाहिए उनमें वे एक नहीं हैं। मुद्रा और कर सम्बन्धी सुझावमें बड़ा ही पार्थक्य है।

मुद्रास्फीति के दुष्परिणामों को हटाने के लिये सरकार ने जो निश्चय किया है उन्हें हम ४ भागों में बांट सकते हैं। (१) सरकारी व्यय में कमी—१९४८-४९ की बजट में प्रान्तों को २९५ लाख रुपये की सहायता और ४७५.३५ लाख रुपयों को विकासकारी तथा लोगों को पुनः बसाने के लिये रक्खा गया था। परन्तु अब विकासकार्य की उन योजनाओं को रोका जायेगा जो तत्कालीन उत्पादन वृद्धि से सम्बन्धित नहीं हैं। इसी प्रकार जमींदारी उन्मूलन तथा मद्य-निषेध के लिये प्रान्तोंको केन्द्रीय सहायता प्राप्त न हो। विभिन्न सरकारी दफ्तरों की व्यय में किस प्रकार से कमी की जा सकती है यह बात भी सोची जा रही है। (२) ऋण प्रदान करके मुद्रा-स्फीति निवारण—१९४८-४९ के बजट में १५० करोड़ रुपये ऋण लेनेकी

व्यवस्था है। डाकखानेके संचय-सहायक बैंक में रुपये जमा करने की सुविधाएं दी जायेगी। अब प्रत्येक व्यक्ति ५ हजार रुपये के स्थान पर १० हजार रुपये जमा कर सकेगा और २५ हजार तक के राष्ट्र धन-संचय प्रमाणपत्र खरीद सकेगा। (३) जनता की क्रय-शक्ति को औद्योगिक व कृषि उत्पादन वृद्धि से कम करना—इसके निम्नलिखित निदान रक्खे गये हैं:— (क) नये उद्योगों को कुछ दिनों के लिए आय-कर से मुक्ति। (ख) घिसावट प्रभृति के लिये नियमों की शिथिलता तथा (ग) कच्चे माल तथा यंत्रों के प्रवेश पर छूट। (४) अन्य निर्णय—(क) अन्न-वस्त्रादि पर पुनः नियंत्रण (ख) लाभांशों का सीमा-निर्धारण ताकि प्रतिशत ६) रुपये से अधिक लाभांश न दिया जाय। (ग) अतिरिक्त लाभ-कर की जो राशि सरकार के पास है उसे वह तीन वर्ष तक सिर्फ आवश्यक समझनेपर ही निर्माण यंत्र खरीदने देगी। (घ) हड़ताल सम्बन्धी कानून को सारे देश के लिये एक बनाना इत्यादि इत्यादि।

इन सब दिशाओं में कुछ भी काम नहीं हुआ है ऐसी बात नहीं, लेकिन इनमें सफलता विशेष नहीं हुई। इसका मूल कारण यह है कि आधुनिक जटिल समस्याओं का समाधान अर्थशास्त्र के पुराने सिद्धान्तों के अनुसार नहीं किया जा सकता। इसके लिये सबसे पहले केन्द्रीय-सरकारके अधीन में एक स्वतन्त्र अर्थ विषयक दफ्तर कायम होनेकी आवश्यकता है। इस दफ्तर पर हमारे आर्थिक जीवन को संगठित करनेकी जिम्मेदारी होगी। साथ ही साथ विनियोग प्रबन्ध करना होगा ताकि बेकारी की समस्या हल हो जाय। जिस देश में गृह-निर्माण, सड़क-निर्माण तथा मरम्मत, नहरों का विस्तार तथा जीर्णोद्धार, नदी की गति तथा बाढ़-नियंत्रण, जलशक्ति-उत्पादन, भूमि-संरक्षण प्रभृति कामों में लाखों को रोजगार पर लगानेकी आवश्यकता है उसी देश में ही बेकारी बढ़ती जाती है इससे अधिक विचित्र बात क्या हो सकती है! इन सब उत्पादक कार्योंके बारे कुछ किया जाय तो

रकम की कमी न होगी। १९३३-३४ साल में जब जर्मनी में एक विराट अव्यवस्था जारी थी उस वक्त भी इस प्रकार के प्रबन्ध किये जानेपर बेकारी का उन्मूलन हो गया था। इन कामों के लिये सरकार ने विनियोग प्रवन्धक ऋण ग्रहण किया। आज हमारे देश में भी इस प्रकार की कार्रवाइयों की आवश्यकता है। साथ ही साथ कृषि तथा उद्योग-धन्धों में व्यक्तिगत प्रचेष्टा को उत्साहित करनेकी आवश्यकता है। आज उद्योग-धन्धों में रकम लगाने के लिये हमें ज्यादातर पूंजीपतियों के व्यक्तिगत संचय पर निर्भर करना पड़ता है। इसलिये इनपर ज्यादा कर लगा देनेसे इनके उत्साह पर पानी फिर जायेगा और वे रकम लगाना मंजूर न करेंगे। इसलिये जो लोग पैदावार बढ़ाने में वास्तविक सहयोग देंगे तथा निर्दिष्ट काल में पैदावार बढ़ा सकेंगे उनपर से करों को हटा देना उचित होगा। आमदनी का जो हिस्सा शिल्प संस्कार या शिल्प विस्तार के कामों में लगाया जायेगा उस पर से आयकर हटा देनेकी बात भी सोची जा सकती है। साथ ही साथ नेताओं के प्रभाव के द्वारा पैदावार बढ़ानेके काम को उत्साहित करना होगा। संक्षेप में बिना पैदावार बढ़े हमारी वर्तमान समस्या का समाधान नहीं हो सकता। इसके अलावा कृषि तथा शिल्प में लगे हुए प्रत्येक व्यक्ति तथा संस्था को आर्थिक दफ्तर के अधीन में स्थापित करना होगा तथा पैदावार में इनका हिस्सा निर्धारित कर देना होगा। आर्थिक जीवन पर इस प्रकार के पूर्ण नियंत्रण के अलावा पैदावार बढ़ाने की सम्भावना नहीं है। कागजी योजनायें अभी तक बहुत हो चुकी हैं; अंग्रेजों की रीति से अभी तक कमीटियों के पीछे काफी पैसा बर्बाद हो चुका है लेकिन इस प्रकार से आर्थिक विकास नहीं होता। वर्तमान अस्वाभाविक परिस्थिति के लिये ये सब गणतान्त्रिक नीतियां प्रभावकारी नहीं हैं। देश को यदि जल्द आर्थिक विकास के रास्ते पर लाना हो तो उसके लिए जल्द से जल्द निर्दिष्ट योजना ग्रहण करनी चाहिये एवं उसके अनुसार काम शुरू होना चाहिये। यदि ऐसा करना सम्भव न हो तो

नियंत्रण व्यवस्था और उनके साथ सम्बन्धित कुरीतियां स्थायी हो जायेंगी। इससे न देश की उन्नति ही होगी और न कल्याण ही सम्भव होगा।

रुपये का मूल्य ह्रास

कुछ ही दिन पहले सर स्टेफोर्ड क्रिप्स ने दुनियां को बताया था कि जबतक वे बृटिश कोषाध्यक्ष रहेंगे तबतक पाउन्डके मूल्य ह्रास की कल्पना भी नहीं की जा सकती। इस घोषणा के बाद भी जब अचानक उन्होंने पाउन्डकी डालर कीमत ४·०३ से घटाकर २·८० बना दी तो सारी दुनियांको बहुत ही आश्चर्य सा मालूम पड़ा। परन्तु जानकार लोग अच्छी तरह से जानते हैं कि पिछले जुलाई महीने में लन्दन में जो बृटिश राष्ट्र मंडल के अर्थ-मंत्रियों का जलसा हुआ था एवं उन्होंने डालर से सम्बन्धित देशों से सामग्रियां मंगानेमें २५% की कटौती करनेका निश्चय किया था तभी अमेरिका के व्यापारीगण कहने लगे कि इससे इंगलैन्ड की असली समस्या का समाधान नहीं होगा। आगे चलकर इन्हों ने बताया कि इंगलैन्ड अपनी समस्या को यथार्थ दृष्टि से नहीं देखता है और न देखने की शक्ति ही उसमें है क्योंकि इंगलैन्ड में उत्पादन तथा बिक्री की लागत इतनी बढ़ गई है कि इंगलैन्ड के लिये दुनियां के बाजारमें दूसरे देशों के साथ प्रतिद्वन्दिता करना सम्भव नहीं। इस बिगड़ी हुई स्थिति को सुधारने के लिये डालर सम्बन्धित देशों से आयात सीमित कर देने पर भी इस समस्या का समाधान नहीं होगा जबतक कि पाउन्ड की कीमत नहीं घटायी जा रही है। इस दृष्टि से पाउन्ड की कीमत अवश्य घटने ही वाली थी परन्तु बृटिश कोषाध्यक्ष ने जिस तरह

से अपनी नीति को अकस्मात पल्ट दिया वह वास्तव में आश्चर्य की बात है। इंगलैन्ड की मुद्रादर नीति में यह परिवर्तन अमेरिकन दृष्टिकोन का समर्थन कर रहा है।

युक्ति की ओर से, सिक्के की कीमत घटाने पर यदि इसको असरकारक होने का पूरा अवसर दिया जाय तो इससे आर्थिक स्थिति की असंगतियां दूर हो सकती हैं एवं अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक स्थिति भी सुधर सकती है। सन् १९२४ से १९३१ तक लगातार असुविधाओं का सामना करने पर सन् १९३१ में जब पाउन्ड की कीमत घटायी गई थी तब भी दूसरा तर्क इसी प्रकारका था परन्तु वास्तविकताका विचार तो वास्तविकताकी दृष्टिसे ही करना चाहिये। वास्तव में सिक्के का मूल्य ह्रास करने पर शायद ही इसको असरकारक होने का पूरा अवसर दिया जाता है। बाजार में यदि एक दुकान-दार कम दर में सामग्रियां बेचे तो उसे जरूर फायदा होगा। लेकिन यदि सारे दुकानदार अपनी सामग्रियों की कीमत घटा दें तो फायदा किसी को भी नहीं होगा और सबका मुनाफा कम हो जायगा। ठीक इसी तरह से जब कोई भी एक देश अपने सिक्के की कीमत घटा देता है तब दूसरे देश भी प्रतिस्पर्द्धा के तौर पर अपने सिक्के की कीमत घटाने में लग जाते हैं या आयात वाणिज्य पर प्रतिबन्ध लगाकर अन्तर्राष्ट्रीय अर्थनीति के सुधारने का रास्ता तक नष्ट कर देते हैं। सन् १९३० के बाद से विभिन्न देशों के मुद्राविनिमय दर के बारे में हमारी अभिज्ञता भी ठीक इसी प्रकार की है। १९२९ से १९३७ तक अल्बानियाके मुल्क को छोड़कर दुनिया में ऐसा कोई भी देश न बचा जिसके सिक्के की कीमत न घटी। सन् १९३१ साल में इंगलैन्डने अपने पाउन्ड की कीमत घटा दी। पाउन्ड की कीमत घटाने में इंगलैन्ड के सामने दो लक्ष थे—पहला पाउन्ड की विनिमय कीमत जो बढ़ी थी उसका संशोधन करना एवं दूसरा इंगलैन्डमें विदेशियों की जो रकम जमा थे उसे लौटाना। इंगलैन्ड

के सामने यथार्थ समस्या थी। परन्तु अमेरिकाने जब सन् १९३३ में डालर की कीमत घटा दी तब उसका बुरा असर हुआ। कारण अमेरिका के सामने डालर की अतिमुल्यन समस्या नहीं थी और न उसके आयात-निर्यात वाणिज्य में प्रतिकूलता ही थी ; पृथ्वीका सारा सोना भी इस वक्त अमेरिका में इकट्ठा हो रहा था। इसपर भी जब उन्होंने डालर की कीमत घटायी तो इसका उद्देश्य इंगलैंड के साथ प्रतिस्पर्द्धा करना था इसमें क्या संदेह रह सकता है ? डालर की कीमत घट जानेपर फ्रांस तथा स्वर्ण सम्बन्धित देशोंके व्यापार पर चोट पहुंची और उन्हें भी अपने अपने सिक्केकी कीमत घटा देनी पड़ी। बात तो यह है कि सिक्के के मूल्य ह्रासका असर द्विमुखी है ; इसके द्वारा आर्थिक स्थितिको प्रोत्साहित की जा सकती है या इसको पूरीतौरसे बिगाड़ी भी जा सकती है। यदि देशके सिक्के का मूल्य वास्तव में बढ़ चुका हो तो इसके मूल्य ह्रासके द्वारा सामग्रियों की पैदावार में उत्तेजना पहुंचाई जा सकती है लेकिन यदि अपने सिक्केका मूल्य ह्रास करनेके लिये ही इस नीतिका आश्रय लिया जाय तो इससे आर्थिक स्थिति बिल्कुल बिगड़ जायेगी।

कुछ दिन पहले हमारे रुपये की विनिमय कीमत घटाई गई है इसका विश्लेषण करना आवश्यक है। रुपयेके विनिमय दर घटनेको दो दृष्टिसे विचार करना होगा—एक तो डालर के अनुपात से रुपये का मूल्य घटना और दूसरा पाकिस्तान के रुपये के अनुपात से भारत के रुपये का दर घटना। सम्बन्धित परिवर्तन निम्न प्रकार हुआ है :—

पाउन्ड तथा डालर का प्रचलित विनिमय दर था पाउन्ड १ = डालर ४ ० ३।

पाउन्ड तथा रुपये का विनिमय दर है १ शि: ६ पें: = १ रुपया।
अतः १ पाउन्ड = ४. ० ३ डालर = १३।-)। रु०
अतः १ डालर = रु० (१३⅓ ÷ ४.०३) = रु० ३।-) (लगभग)

नया विनिमय दर निम्न प्रकार हुआ है :—

१ पाउन्ड = २.८० डालर = रु० १३$\frac{१}{३}$ ।

अतः १ डालर = रु० ($\frac{४०}{३}$ ÷ $\frac{२८०}{१००}$) = रु० ४।।।) २$\frac{२}{३}$ पाई = रु० ४. ७६१९०

यानी रु० १ = ०.१८६२१ ग्रेन शुद्ध सोना = २१ ०० अमेरिकन सेन्ट

यानी रु० १६६ ६६७ = १ ट्रय आउन्स शुद्ध सोना ।

परिवर्तन के बाद के कई विनिमय दर नीचे दिये जा रहे हैं :— दक्षिणी अफ्रिका का पाउन्ड १ = ३८.४ ग्रेन शुद्ध सोना = २.८० डालर; अष्ट्रेलिया का पाउन्ड = २.२४ डालर (इङ्गलैण्ड का १ पाउन्ड = अष्ट्रेलिया का १ पा० ५ शि०); निउज़िलैण्डका पाउन्ड १ = २.८० डालर ;स्टेटस् सेटलमेन्ट का डालर १ = ३२.५ सेन्ट (पुराना दर ४६.७५ सेन्ट) ; वर्मा ४ ७६ रु० = १ डालर ; डेनमार्क ६.९०७१४ क्रोनर (पुराना दर ४ ८१) = १ डालर ; नारवे ७.१४२८६ (पुराना दर ४ ९६) क्रोनर = १ डालर ; आयरलैण्ड १ पाउन्ड = २ ८० डालर ; इज़रैल पाउन्ड = २.८० डालर ; मिश्रका पाउन्ड = २ .८७१ डालर ।

पाकिस्तानके साथ विनिमय दर निम्न प्रकारका हुआ है :—

पाकिस्तानी रुपया = २५.९ पे;

पाकिस्तानी ९.२६ रु० = १ पाउन्ड ;

पाकिस्तानी १०० रु० = भारतका १४४ रु० ;

पाकिस्तानी ६९.५० रु०=भारतका १०० रु० ।

हमारे रुपयेके विनिमय दरमें यह परिवर्तन हमारे विदेशी व्यापारको किस प्रकारसे प्रभावित करेगा ? इस विषयको समझनेके लिये हमारे विदेशी व्यापार की गति पर ध्यान देनेकी आवश्यकता है। इससे यह बात स्पष्ट होगी कि बीते हुए कई वर्षों में हमारे विदेशी व्यापार में एक मौलिक परिवर्तन हो रहा

है। हमारे आयात तथा निर्यात इन दोनों व्यापारोंमें बृटिश साम्राज्यसे बाहरके देशोंका हिस्सा दिन पर दिन बढ़ रहा है। सन १९१३-१४ में हमारी आयात सामग्रियोंका प्रतिशत ६४.१ हिस्सा इंगलैण्डसे आता था; सन् १९१८-१९ में यह ४५.५ तथा सन् १९३२-३३ में ३६.८ हुआ एवं सन् १९४९ के मार्च महीने में यह कुलमें ३१% था। इस महीनेमें हमारे आयात वाणिज्य में अमेरिका तथा बृटिश साम्राज्य के बाहर के देशों का हिस्सा प्रतिशत लगभग ५० था। हमारे निर्यात व्यापार में सन १९१८-१९ में इंगलैंड का हिस्सा कुल में २९.२% तथा सन् १९३५-३६ में यह ३१.५% था; वह अब कुलमें २५% रहा है। इस व्यापार में इंगलैंड तथा साम्राज्य के दूसरे देश वर्तमान समय में प्रतिशत ५२ हिस्सा लेते हैं; अमेरिका तथा दूसरे देशोंका हिस्सा ४८% है। सामग्रियों की ओर से भी अमेरिका तथा दूसरे देशों के साथ हमारा व्यापारिक सम्बन्ध दिन पर दिन गम्भीर होता जा रहा है। हमारे आर्थिक पुनर्गठन, जीर्णोद्धार तथा संगठन के लिये जिन साधनों की आवश्यकता है तथा हमारे अन्नसंकट को टालने के लिये जो खाद्य सामग्रियां हमें मंगानी पड़ती हैं वह भी ज्यादातर अमेरिका से या साम्राज्य के बाहर के दूसरे देशों से मंगायी जाती हैं। भारत सरकार ने इनकी आयात बन्द करने का निश्चय कर लिया है लेकिन हमारी वर्तमान आर्थिक स्थिति में जबकि नये उद्योग-धन्धों को कायम करने की विशेष आवश्यकता है, जबकि हमारे पुराने उद्योग-धन्धों का जीर्णोद्धार करना एकदम जरूरी है, क्योंकि खाद्य सामग्रियों को पैदा करनेवाली योजनायें सरकारी दफ्तरों में सीमित हैं तब अचानक इनका आयात बन्द कर देना खतरनाक होगा। आज हमारा आर्थिक पुनर्गठन तथा विकास का प्रश्न सबसे बड़ा है और इसी दृष्टिसे ही हमारी वाणिज्य नीति प्रभावित होनी चाहिये लेकिन हमारी सरकार इस दृष्टिको छोड़ चुकी है। पहले ही डालर सम्बन्धित देशोंसे २५% आयात घटाने का निश्चय सरकार ने किया था अब इससे भी अधिक का निश्चय कर

२०% घटा दिया गया है। इन दोनोंके प्रभाव से अमेरिका से अनाज तथा औजारों का निर्यात भारत के लिये बन्द हो जायगा और इंगलैंड की स्थिति ऐसी नहीं है जिसके जरिये हम अपने अभाव को पूरा कर सकें। इसलिये हमारी वर्तमान मुद्राविनिमय नीति हमारे स्वार्थ के प्रतिकूल होगी।

हमारी आर्थिक समस्यायें इंगलैंडकी समस्याओं से पृथक है—इनमें मौलिक अन्तर है। सन् १९२४-३१ की तरह आधुनिक समय में भी इंगलैंड में उत्पादन-व्यय बहुत बढ़ चुका है और उन्हें घटाने की कोई सम्भावना नहीं है। अतः ये सामग्रियां दूसरे देशों की सामग्रियों के साथ पृथ्वीके बाजारोंमें प्रतिस्पर्द्धा नहीं कर सकती। इसलिये इंगलैंड का अन्तर्राष्ट्रीय लेनदेन दिन पर दिन प्रतिकुल होता जा रहा है। इसको रोकनेके लिये इंगलैंडने डालर सम्बन्धित देशों से आयात वाणिज्य घटाने का निश्चय किया तथा साम्राज्यके दूसरे देशों को भी इस तरह की वाणिज्यनीति ग्रहण करने की सलाह दी ताकि साम्राज्य का सारा वाणिज्य जहांतक हो सके बाहरी देशों से न रहे। इस तरहसे इंगलैंड पाउन्डकी मूल्य ह्रासके पीछे आत्म-रक्षा की चेष्टा कर रही थी। पाउन्डकी कीमत घट जाने पर यह प्रतिकूल स्थिति सहज में सुधर जायगी। सर स्टेफोर्ड क्रीपसने बताया कि हमें डालर आमदनी करने की ताकत बढ़ानी होगी; यही हमारी समस्याका एक मात्र स्थायी समाधान है, विशेषतः वर्त्तमान स्थितिमें जबकि मार्शल योजना, जिसके द्वारा हमें कुछ डालर मिल रहे हैं वह १९५२ साल में खतम होनेवाली है। इंगलैंड का साम्राज्यिक बाजार इस तरह से सुरक्षित हो गया। अब इंगलैंड को न तो उत्पादन व्यय घटाने की ही आवश्यकता है और न जीवन का दर्जा नीचा करने की। साम्राज्य के सुरक्षित बाजार में इंगलैंडको अपनी बहुमूल्य सामग्रियों को बेचनेका सुयोग प्राप्त हो गया।

हमारी आर्थिक समस्यायें दूसरी ही कुछ हैं। हमारी आर्थिक समस्या

अभी तक बाल्यावस्थामें है, इसमें आवश्यकीय सामग्रियोंकी कमी है, असंगतियोंसे भरी हुई है। इसमें एक ओर तो संगठनकी आवश्यकता है और दूसरी ओर जीर्णोद्धारकी। सरकारने रुपयेकी कीमत घटानेके समर्थनमें जो भी कुछ कहा है वह न तो आर्थिक स्थितिसे ही सम्बन्ध रखता है और न हमारे हृदयको स्पर्श ही करती है। एक सरकारी एलानमें बताया गया है कि भारतका आयात वाणिज्य नियन्त्रित होनेके कारण विक्रेंट मूल्यह्रासके द्वारा सामग्रियोंकी अन्तर्वर्ती कीमत बढ़ानी न तो जरूरी होगी और न होनी ही चाहिये। हमारा निर्यात वाणिज्य संकोचन-प्रसारण रहित होनेके कारण रुपयेकी कीमत घटा कर हमारे निर्यात वाणिज्यको तथा डालरकी आमदनीको बढ़ानेकी सम्भावना भी ज्यादा नहीं है परन्तु जब इंगलैण्ड तथा दूसरे कई देश अपने सिक्कोंकी कीमत घटानेका निश्चय किया तो हमारे लिये स्थिति ऐसी हो गई कि भारतको भी अनुरूप कदम उठाना पड़ा। अगर हम ऐसा नहीं करते तो हमारे व्यापारिक अनुमानोंपर इसका बुरा असर होता। क्या सरकार की इस युक्तिका कोई नैतिक आधार भी है? इंगलैण्डकी तरह हमें आज विदेशमें व्यापार बढ़ानेकी आवश्यकता नहीं है। हमारे खाद्यान्नकी कमी हटानेके लिये तथा आर्थिक विकास तथा औद्योगीकरण के लिये आवश्यकीय औजार मंगवानेमें जितने विदेशी सिक्कोंकी आवश्यकता है, हमारा विदेशी व्यापार उतनेमें ही सीमित रह सकता है। हमारी वर्तमान स्थितिमें अमेरिकासे औजार तथा अनाजका आयात बन्द कर देना आत्मघात होगा। इंगलैण्डको बचानेके लिये हमारी सरकार गलत रास्तेपर चल रही है। स्टार्लिंगके साथ सम्बन्धित होनेके कारण हमें जितनी हानियां पहुंची हैं उनका इतिहास इतना आधुनिक है कि उसको दोहराना निष्प्रयोजन है। बीस वर्ष पहले हमारे देशकी विदेशी हुकूमतने जिन शब्दोंमें स्टार्लिंग-सम्पर्ककी ताईद की थी आज हमारी अपनी सरकार भी उन्हीं शब्दोंको दोहरा रही है। इस संयोगके कारण भारतको "कष्ट-संचित" खोनेको विवश हुई थी जिससे

रोकनेकी ताकत सरकारमें न थी। आज हमारी सारी शक्ति देशके आर्थिक विकाश पर विनियुक्त करनेकी आवश्यकता है।

अब प्रश्न यह है कि क्या हम रुपयेकी कीमत घटा कर निर्यात वाणिज्य को बढ़ा सकते हैं? शायद नहीं। क्योंकि एक ओर तो औद्योगिक उत्पादन बन्द होनेके कारण हमारे आर्थिक संगठनमें असुविधाएँ पहुँचेगी और दूसरी ओर देश विभक्त होनेके कारण हमारे हाथमें निर्यात योग्य सामग्रियोंकी कमी हो गई है। पहले पाट तथा रुई ये दोनों हमारे निर्यात वाणिज्यमें मुख्य थे और इनसे हमें काफी विदेशी सिक्के मिलते थे। १९४६-४७ ईसवीमें भारत से १६ लाख गांठ कच्चा पाट तथा ४६ लाख गांठ पाटसे बनी हुई सामग्रियोंका निर्यात हुआ था जिनकी कीमत ८९ करोड़ रुपया थी और यह हमारे निर्यात व्यापारमें २६% था। अब पाटकी पैदावारकी प्रतिशत ७५ पाकिस्तानके हिस्सेमें आ चुकी है। पाटकी तरह रुई, ऊन, चमड़ा आदि काफी तायदादमें हमारे हाथसे निकल चुके हैं। भूतपूर्व अर्थमंत्री श्री सी० एच० भाभाके मतानुसार विभाजनसे हमें वार्षिक नुकसान लगभग २५ करोड़का पहुँचा। इस स्थितिमें रुपयेकी कीमत घटाकर हम किस तरहसे निर्यात वाणिज्य बढ़ा सकते हैं। आज हमारे उद्योग-धन्धोंमें जो कच्चे मालकी खपत होती है वे बाहरसे मंगाये जाते हैं। पाट पाकिस्तानसे आता है लेकिन पाकिस्तानके रुपयेकी कीमत न घटी। इस स्थितिमें हमारे उद्योग-धन्धोंमें लगनेवाले कच्चे मालको हम कहाँ तक ज्यादा भाव पर मंगा सकते हैं और उनसे बनी हुई शिल्प सामग्रियों को विदेशमें कमती भावपर बेच सकते हैं? इस स्थितिमें हमारे अन्तर्राष्ट्रीय लेन-देनकी प्रतिकूलता रुपयेकी कीमत घटानेसे जानेवाली नहीं है। साथ-ही-साथ अनाजकी आमदनी बन्द होनेके कारण हमारी खाद्य-स्थिति और भी नाजुक होनेकी सम्भावना है। हम अभी तक ऐसी कोई कृषि योजनाको कार्यरूपमें नहीं ला सके हैं जिससे निकट भविष्यमें हमारी खाद्य-स्थिति अपनी तरहसे सुधर सके।

लिया जाय कि हमारी सामग्रियों का मूल्य स्तर पर रुपयेके मूल्य ह्रासका पूरा असर हो रहा है तो वह प्रतिशत ३० बढ़ जायेगा। सामग्रियोंकी कीमत बढ़ जाने के कारण प्रत्येक उत्पादन-प्रावन के पीछे लागत भी बढ़ जायगी जिसको रोकना सरकार के लिये सहज-साध्य नहीं होगा। ऐसे दो बीते हुए दस वर्षोंमें हमारी आर्थिक व्यवस्था पर बहुतसी चोटें आई हैं; अब फिर से सामग्रियोंकी कमी होगी एवं श्रमिक असंतोष बढ़ता चलेगा। जब सरकार रचनात्मक कार्यों पर भी व्यय-संकोच कर रही है तब मूल्यवृद्धिका यह सुयोग देना किस प्रकार से उचित होगा? विनिमय दर ह्रास घोषित होनेके साथ ही साथ बाजार में अनिश्चयता फैल गई और हमारी आर्थिक व्यवस्थाके सामने अन्धेरा छा गया। इस तरहसे भविष्यमें सामग्रियों की कमी बढ़नेवाली है और सारी जनता के लिये, विशेषतः मध्यम वर्गके लिये और भी दुर्दिन आने-वाले हैं। अध्यापक भक्तिलके शब्दोंमें, हमारे आन्तर्वर्ती मूल्यस्तर स्टालिंग मूल्य तथा डालर मूल्योंसे अधिक है; इस दृष्टिसे अगर देखा जाय तो मूल्यस्तर घटाने के लिये हम रुपये को क्रयशक्ति बढ़ाने की बात समझ सकते हैं। पर यह जब असम्भव था तो रुपये का विनिमय कीमत घटाकर हमें मूल्यवृद्धि के झुकाव को मदद देनी उचित नहीं थी।

इस स्थिति में स्टालिंगके साथ रुपयेका सम्बन्ध फौरन तोड़ देना चाहिये। स्टालिंग के साथ रुपये को सम्बन्धित रखने में विशेष महत्व नहीं है, कारण हमारी स्टालिंग रकम का ३/४ हिस्सा खतम हो चुका है। अब जो स्टालिंग रकम बची है वह नाममात्र है। इसका वह हिस्सा जिसको हम डालर में बदल सकेंगे रुपये का मूल्य कम होने के कारण कम हो जायेगा। इंग्लैंड में सामग्रियों की कीमत बढ़ने पर हमारे स्टालिंग रकम के विनिमय में हमें कम सामग्रियां मिलेंगी। दूसरी ओर संयुक्तराष्ट्र अमेरिका जिसके साथ हमारा सम्बन्ध गभीर होता जा रहा था वह नष्ट हो जायगा। पाकिस्तानकी रुपयेकी कीमत नहीं घटाने के कारण हमें और भी कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा।

जानकारों का कहना है कि पाकिस्तानकी यह नीति ज्यादा दिन तक कायम नहीं रह सकती एवं भारत भी पाट की पैदावार बढ़ाने का प्रबन्ध कर रहा है ताकि वह पाकिस्तान पर निर्भर न रहे। परन्तु इस युक्तिसे हमें संतोष नहीं होता। दीर्घकालीन स्थिति में जो भी कुछ क्यों न हो वर्तमान समयमें देश का आर्थिक संगठन करना ही हमारी सबसे बड़ी समस्या है जिसके लिये डालर के साथ रुपये का पूर्वदर कायम रखना ही अधिक उचित होता। इसमें अमेरिका तथा पाकिस्तान इन दोनों देशों के साथ हमारा आर्थिक सम्बन्ध ठीक रहता एवं हमारी रचनात्मक आर्थिक नीति सफलसिद्ध हो सकती। पैदावार बढ़ाने के साथ साथ हमारी वर्तमान स्थिति एवं रुपये की अन्तर्देशी एवं विदेशी क्रयशक्ति की असमानता भी दूर हो जाती।

पाउन्ड तथा दूसरे देशोंके सिक्का-विनिमय दर ३०% घटाने जाने पर अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा संस्थाकी मर्यादामें हानि पहुंचेगी। यह संस्था अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक सहयोग बढ़ाने के लिये तथा सिक्का विनिमय दर स्थिर करने के लिये कायम की गई थी। लड़ाई खतम होने के बाद फ्रैंक तथा दूसरे कई सिक्कों की विनिमय कीमत घटाई गई थी; अब पाउन्ड तथा स्टार्लिंग सम्बन्धित सिक्कोंकी कीमत घटाई गई है। प्रत्येक देश यदि इस तरह से अपने सिक्के की कीमत मनमानी तौरपर घटाता रहे तो इन अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओंकी मर्यादा क्या होगी? भविष्यमें यदि इसी तरहसे डालर की कीमत भी घट जाये तो सारी कार्यवाइयों पर पानी फिर जायगा। वर्तमान स्थितिमें भारत के लिये सोचने की बात यह है कि भारत अन्तर्राष्ट्रीय बैंकसे जो डालर कर्ज लिया है उसके लिये भारतको प्रतिशत ३० रुपया अधिक देना पड़ेगा यानी इस हिसाब से इस कर्जका बोझा हमारे ऊपर बढ़ जायेगा। सिर्फ यही नहीं बल्कि अमेरिकाकी सामग्रियां जब भारत तथा दूसरे स्टार्लिंग सम्बन्धित देशोंमें नहीं आ सकेंगी तब अमेरिकाके पूंजीपतिगण इन देशोंमें रकम लगाकर व्यापार बढ़ानेकी कोशिश करेंगे। यह स्थिति हमारे उद्योग धन्धों के लिये और भी भयानक

होगी। रुपये की कीमत घटानेके पहले भारत सरकारको इन पर पड़नेवाली हानियों पर गहरी तौरसे ध्यान देनेकी आवश्यकता थी।

भारतीय बैंक व्यवस्था—बैंक व्यवस्थाका सुधार

भारतीय बैंकव्यवस्थाकी विशेषता—भारतीय बैंकव्यवस्थामें ऐसी कुछ विशेषतायें नजरमें आती हैं जोकि दूसरे देशोंमें नहीं पाई जाती। भारतमें एक ओर तो विभिन्न प्रकारसे संगठित बैंक हैं और दूसरी ओर इनकी व्यापार पद्धतिमें बहुत ही विभिन्नतायें हैं। हमारी बैंक व्यवस्थाको दो हिस्सोंमें बांटा जा सकता है—एक तो पुरानी और दूसरी आधुनिक। पुरानी व्यवस्थामें महाजन साहुकार, सराफ, चेट्टी आदि हैं और आधुनिक व्यवस्थामें कुछ तो भारतीय बैंक हैं और कुछ विदेशी जिनके बीच पारस्परिक सहयोग कम है। साथ ही साथ इम्पिरियल बैंककी तरह एक बड़ी बैंक भी इस व्यवस्थामें शामिल है जोकि व्यापारिक बैंक होते हुए भी अभीतक केन्द्रीय बैंकका कुछ कुछ अधिकार रखती है। हमारी केन्द्रवर्त्ती बैंक यानी रिजर्व बैंक अफ इण्डिया एक नवीन संस्था है और इसे अभीतक इतनी सफलता नहीं प्राप्त हो सकी है जिससे कि यह प्राचीन व नवीन सारी बैंक व्यवस्था पर प्रभुत्व कर सके।

प्राचीन बैंक व्यवस्था—हमारी बैंक व्यवस्थामें प्राचीन बैंक व्यवस्था अधिक महत्व रखती है। इसमें दो प्रकारके कारबारी दिखाई पड़ते हैं—एक तो महाजन जो कि देहातोंमें किसानोंको रुपया कर्ज देते हैं और दूसरे साहूकार जोकि वास्तवमें बैंकव्यवसायी हैं। इन बैंकव्यवसायियोंका व्यापार बहुत ही पुराना है। जबकि पाश्चात्य देशोंमें बैंकोंका अस्तित्व तक न था और न इसका कोई नाम तक जानते थे तबहीसे भारतीय बैंक व्यवसायीगण सिर्फ [illegible] [illegible]

ही नहीं बल्कि विदेशी व्यापारमें भी पूरा हिस्सा लेते थे। आधुनिककालके दबावसे आज इनका व्यापारक्षेत्र संकुचित हो रहा है लेकिन इस पर भी भारतके आभ्यन्तरीय व्यापारमें इनका हिस्सा ही मुख्य है। अनुत्पादक किसी निर्दिष्ट मतलबके लिए कर्ज नहीं देते लेकिन साधारणतः फसल कट जानेके बाद इनकी रकम लौट आती है। इनकी रकम ज्यादातर बराबर होती है; क्योंकि कर्ज देना या अमानत स्वीकार करना इनकी व्यापार पद्धतिमें स्थान नहीं पाता। आज कल व्यापार बढ़ जानेके कारण ये लोग एक दूसरेसे हवाला कर्ज देते हैं और कभी-कभी बैंकोंसे भी कर्ज लेते हैं। बैंकोंसे कर्ज लेनेके लिए ये लोग हुण्डी बेचते हैं। कर्जपर ब्याजदर बहुत रक्खा जाता है कारण इन्हें अनेक समय ऐसे कामोंमें रकम लगानी पड़ती है जिसमें काफी जोखिम है। हमारी प्राचीन बैंकव्यवस्थाका संगठन, इसकी आर्थिक संगति, मर्यादा तथा व्यापारिक साख, व्यापारियोंसे इसका वैयक्तिक सम्बन्ध, इतना गंभीर तथा प्रशंसनीय है जोकि किसी भी बैंकव्यवस्थामें नहीं पाया जाता। भारतीय अर्थ व्यवस्थाके साथ बैंकव्यवस्थाका विकास गहरीतौरसे जकड़ा हुआ है। इनकी व्यापार पद्धति बहुतही सरल होती है तथा व्यापारियोंके प्रयोजनके साथ ही साथ इसमें आवश्यकीय परिवर्तन भी किया जाता है। बैंकव्यवस्थाके आधुनिक विकासका इनमें अभाव होते हुए भी इनके पास इतनी संचित अभिज्ञता है जोकि किसी से ज्यादा महत्वपूर्ण है। आधुनिक समयमें इनका व्यापार आभ्यन्तरीय वाणिज्य तथा घरेलू उद्योग-धन्धोंमें आर्थिक सहायता करनेमें ही सीमित है। सन १९३५ में जब भारतमें रिज़र्व बैंककी प्रतिष्ठा हुई थी तब उम्मीद किया गया था कि इस केन्द्रीय व्यवस्थाके साथ भारतीय बैंकव्यवस्थाका गम्भीर सम्बन्ध स्थापित हो जायेगा कारण इसके अभावमें केन्द्रीय बैंक अपनी पूरी सफलता नहीं प्राप्त हो सकती है। इसी उद्देश्यको सफल करनेके लिए रिज़र्व बैंकने दो प्रस्ताव रक्खा था जिसमें कहा गया था कि देशी बैंकव्यवसायियोंको बैंकव्यवसायके अतिरिक्त दूसरे किसी व्यापारसे सम्बन्ध नहीं रखना चाहिए

तथा उनको अपनी आर्थिक स्थितिका पूर्णविवरण प्रकाशित करना न दिए। यह प्रस्ताव साहुकारोंको मंजूर न था। उनका कहना यह था कि दिन पर दिन उनका बैंक व्यवसाय जिस प्रकारसे सीमित होता जा रहा है उसमें दूसरे व्यवसायको अपनाने के अलावा और कोई रास्ता भी नहीं है। इस लिए आज तक केन्द्रवर्त्ती बैंकके साथ प्राचीन बैंकव्यवस्थाका सम्बन्ध नहीं स्थापित हो सका और यह हमारी बैंकव्यवस्थाकी सबसे बड़ी कमजोरी है। अगर इन दोनोंको सम्बन्धित करना हो तो रिजर्व बैंक को उचित होगा कि जिनमें इनका बैंक विषयक व्यापार बड़े उसपर ध्यान दे तथा यदि ये लोग दूसरे व्यापारसे बैंक सम्बन्धी व्यापारको अलग रक्खें तो उन्हींमें ही संतुष्ट हो जाय क्योंकि किसी भी व्यवस्थामें अचानक परिवर्तन करना सम्भव नहीं हो सकता।

आधुनिक बैंक व्यवस्था—(१) रिजर्व बैंक आव इण्डिया (रिजर्व बैंक विषयक निबन्ध देखिये)।

(२) इम्पीरियल बैंक आव इंडिया—सन् १९२० में बंगाल, बम्बई तथा मद्रासकी प्रेसीडेन्सी बैंकों को सम्मिलित करके इम्पीरियल बैंककी प्रतिष्ठा हुई थी। इम्पीरियल बैंक भारतीय बैंक व्यवस्थामें एक विशिष्ट प्रतिष्ठान है। भारतमें सन् १९३५ में रिजर्व बैंक की प्रतिष्ठा होने के समय तक केन्द्रीय बैंक का कुछ कुछ अधिकार, जैसेकि कर्ज नियंत्रण आदि इस बैंक पर था लेकिन यह बैंक पूर्णतया केंद्रवर्त्ती बैंकका अधिकार नहीं रखती थी जैसे कि नोट जारी करने का अधिकार सरकारी मुद्राविभाग पर था। साथ ही साथ यह बैंक व्यापारिक बैंकोंके साथ प्रतियोगिता करनेवाले कामोंमें ही लिप्त थी। इन कारणों से दूसरी बैंकें इम्पीरियल बैंक पर न तो पूरा भरोसा ही करती थीं और न इसके साथ सहयोग ही करती थीं। केन्द्रवर्त्ती बैंक के कुछ अधिकारों के अतिरिक्त बैंक विषयक सारे कामोंका अधिकार भी इम्पीरियल बैंक पर था एवं सरकारी आमदनी भी इस बैंकके हाथ में रहती थी। सन् १९२१ में इस बैंककी एक शाखा लन्दनमें कायम की गई। इस बैंक पर सरकारी

नियंत्रण भी कुछ हदतक जारी था। इसलिये जब भारत में केन्द्रीय बैंक स्थापित करने का सवाल पहले पहल आया तब अनेकों का सिद्धान्त ऐसा रहा कि इम्पीरियल बैंकको ही केन्द्रीय बैंकका पूरा अधिकार दे दिया जाय। अपने सिद्धान्त के समर्थनमें इनका कहना यह था कि भारतमें न तो व्यापारिक हुन्डी का बाजार ही है और न काफी तायदादमें हुन्डीयां ही पाई जाती हैं जिस से कि एक नई केन्द्रवर्त्ती बैंककी स्थापन की जाय। इसके अलावा इम्पीरियल बैंक की तरह एक बड़ी बैंकके पास एक नई केन्द्रवर्ती बैंककी स्थापना करना उचित नहीं होगा। परन्तु हिल्टनयंग कमीशन के ज्यादातर सदस्यों ने बताया कि वास्तवमें इम्पीरियल बैंक एक व्यापारिक बैंक, ही है केन्द्रीय बैंक नहीं। इसके पास इतनी अभिज्ञता, इतनी रकम, इतना प्रभाव, इतनी शाखायें हैं जो कि व्यापार को तरह तरह से फायदा दे सकती है। इसलिए इनकी राय ऐक पृथक केन्द्रवर्ती बैंक स्थापित करने के पक्षमें रही। अन्तमें जब रिजर्व बैंक अव इण्डिया की स्थापना की गई तब इस बैंक के हाथमें केन्द्रवर्ती बैंकका जितना अधिकार था उन सब का अन्त कर दिया गया। परन्तु जिन सब जगहों में इम्पीरियल बैंककी शाखायें हैं वे आज भी रिजर्व बैंक की ओर से केन्द्रवर्ती बैंक का बहुत काम करती हैं। इस विषयमें रिजर्व बैंकके साथ १५ वर्षके लिये एक समझौता हुआ था वह आज भी जारी है एवं भविष्यमें भी जारी रहेगा। यदि इन दोनों में से कोई भी एक दूसरे से सम्बन्ध तोड़ना चाहे तो ५ वर्ष पहले सूचना देनी पड़ेगी। इस प्रकारसे इम्पीरियल बैंक एक व्यापारिक बैंक होते हुये भी दूसरी व्यापारिक बैंकोंसे अधिक अधि-कार रखती है तथा भारतकी मुख्य व्यापारिक बैंक भी यही है लेकिन इसकी बात तो यह है कि दूसरी बैंकोंके साथ सहयोग करना या भारतीय बैंक व्यवस्था को संगठित करने में इम्पीरियल बैंकको जितना हिस्सा लेना था उससे वह आज भी अलग रही है।

(३) विदेशी बैंक—भारतीय बैंक व्यवस्था में विदेशी बैंकों का विशेष

महत्वपूर्ण स्थान एवं अधिकार है। दूसरे किसी भी स्वतन्त्र देशमें विदेशी बैंकों को इतना अधिकार नहीं दिया जाता जितना कि उन्हें भारत में दिया गया है। इन्हें हम दो हिस्सोंमें बांट सकते हैं एक तो वे बैंकें जिनकी [illegible] प्रतिशत २५ या उससे अधिक हिस्सा भारतीय जन साधारण से प्राप्त किया गया है और दूसरी वे बैंकें जिनको [illegible] प्रतिशत २५ हिस्से से भी कम भारतसे प्राप्त किया गया। भारतके विदेशी व्यापार में रकम लगाना ही इन बैंकों का मुख्य कारबार है। सन् १९३५ तक इम्पीरियल बैंकों को विदेशी हुन्डी का कारबार करनेका अधिकार न था और भारतीय बैंक व्यवसायमें इतनी अभिज्ञता तथा शक्ति न थी जिससे वह इस क्षेत्रमें हाथ बढ़ा सकती थी। इसलिये भारतके विदेशी व्यापार का आर्थिक प्रबन्ध पूरी तौरसे इन विदेशी बैंकों पर था और अभी भी इस व्यवस्था में कोई उल्लेखनीय परिवर्तन नहीं हुआ। इसके अलावा विदेशी बैंकें, बैंक सम्बन्धी हर तरहके कारबार करती हैं और बड़े बड़े शहरों में जैसे कि दिल्ली, कानपुर, अमृतसर आदि शहरों में इनकी शाखायें फैल चुकी हैं। वर्तमान समयमें ये हमारे आन्तरिक व्यापार तथा गृह-उद्योग में भी रकम लगाती हैं। जो भी कुछ हो भारतीय व्यापार तथा उद्योग पर अतीतमें इनको सहानुभूति तथा सहयोग प्राप्त हो गया होनेके कारण भारतीय जनमत बराबरसे इन बैंकों पर सरकारी नियन्त्रण चाहती है। विदेशी बैंकोंका भारतीय सिक्का बाजारमें कारबार करने पर भी इनका सम्बन्ध ज्यादातर अपने अपने देशों की केन्द्रवर्ती बैंकोंसे लगा हुआ रहता है और इनसे हमारी अर्थव्यवस्था प्रभावित होने पर भी इन पर हमारी रिज़र्व बैंकका कुछ भी हाथ नहीं है, यहांतक कि अनेक समय ये भारतीय स्वार्थोंके खिलाफ काम करती रही हैं। इसलिए १९२९ में केन्द्रीय बैंक जांच कमिटीने यह सलाह दी थी कि इन बैंकों पर नियंत्रण लगा दिया जाय, लेकिन यह परामर्श अभी तक कार्यान्वित नहीं हुआ। इसलिए अभी भी भारतीय बैंक इस विदेश क्षेत्रमें स्थान नहीं पाती तथा विदेशी व्यापार या [illegible]

एकाधिकार जमा हुआ है। स्वतंत्र भारतमें इस एकाधिकारको तोड़ देनेकी आवश्यकता है ताकि प्रत्येक बैंकको हरतरहके कारबार करनेका सुयोग मिले। विदेशी बैंकोंके बारेमें हमारी नीति ऐसी होनी चाहिए कि हम विदेशी बैंकोंको उतना ही सुविधा दें जितना कि वे हमारी बैंकोंको उन देशोंमें कारबार करनेके लिए दे रही हैं।

(४) भारतीय सम्मिलित पूंजी बैंक—इन बैंकोंका इतिहास बहुत ही आधुनिक है। उन्नीसवीं शताब्दीके अन्त समयमें कुछ देशी बैंक स्थापित हुई थी लेकिन १९०५ के स्वदेशी आन्दोलनके बादसे इनका व्यापक विस्तार हुआ। इस समय भारतीय जनसाधारणको बैंकोंके बारेमें अभिज्ञता न रहने के कारण बहुतसी बैंकों को कारबार बन्द कर देना पड़ा और इससे बैंक व्यवस्था के बारेमें जन-साधारणके मनमें डर बैठ गया। भारतीय बैंक व्यवस्थाके कई विशेषतायें हमारे नजरमें आती हैं। पहली, भारतीय बैंकव्यवस्था कायम होनेके पहले भारतमें आधुनिक उद्योग-धन्धोंकी स्थापना होने लग गई थी; इसलिए जर्मनीकी औद्योगिक बैंकोंकी तरह भारतीय बैंक व्यवस्था उद्योग-धन्धों के विस्तारमें हाथ न बटा सकी। इसकी दूसरी विशेषता यह है कि यह बृटिश बैंकव्यवस्थाका अनुकरण की है। इसलिए इनका कारबार अल्पमियादी कर्ज देनेमें ही सीमित है, दीर्घमियादी कर्ज देनेमें नहीं। तीसरी विशेषता यह है कि हमारी बैंक व्यवस्था विदेशी व्यापारमें अभीतक उल्लेखनीय हिस्सा नहीं लेती तथा आभ्यन्तरीन, व्यापारमें भी इन्हें महाजन साहूकार विदेशी बैंक तथा इम्पीरियल बैंककी प्रतियोगिताका सामना करना पड़ता है। चौथी विशेषता यह है कि हमारी बैंक व्यवस्थाके संगठनमें इतनी कमजोरियां हैं जिनसे यह इतना आगे नहीं बढ़ पाती तथा हरसाल ही कुछ न कुछ बैंकोंका कारबार बन्द हो जाता है। पांचवी तथा अन्तिम विशेषता यह है कि हमारी बैंकव्यवस्था पर केन्द्रस्थी बैंकका नियंत्रण समान नहीं है। शिड्यूल्ड बैंकोंके ऊपर जितना घनिष्ट है दूसरे बैंकोंके उतना नहीं। सन १९१३-१८ के बैंक

दुर्घटनाके बादसे बैंकव्यवस्था बहुत कमजोर हो चुकी थी। इसको सुधारनेके लिए एक पृथक बैंक सम्बन्धी कानून बनानेके लिए सन १९२९की बैंक जांच समितिने सलाह दी थी। सन १९३६ में जब कम्पनी कानूनमें संशोधन हुआ तब उसमें भी बैंक सम्बन्धी कई धाराएँ जोड़ी गईं। सन १९३८ में फिरसे बैंक दुर्घटना की सम्भावना दिखाई देने लगी तथा बैंक सम्बन्धी कानूनकी आलोचना फिरसे शुरू होनेके कारण यह आगे न बढ़ सकी। इसके बाद बैंककी पूंजी तथा शाखा विस्तारके बारेमें कम्पनी कानूनमें कुछ संशोधन किये गये हैं। सन १९४९ में बैंक सम्बन्धी एक कानून बना है जिसमें बैंक व्यवस्थाको पूरी तौरसे सुधारने पर ध्यान दिया गया है। बैंक की पूंजीकी तरलता, पूंजीका विनियोग, संचालकोंसे बैंकोंका सम्बन्ध, प्रबन्धकोंका दायित्व आदि विषयों पर इतनी नवीन धाराएं संशोधित हुई हैं जिनसे अनुमान किया जाता है कि भविष्यमें बैंक दुर्घटना बहुत कम हो जायेंगी। बैंक व्यवस्था को यदि पूरी तौरसे सुधारनी हो तो सिर्फ व्यापार कानून बनाने से ही नहीं होगा बल्कि साथ ही साथ बैंकोंकी व्यापार पद्धति, बैंकोंका प्रबन्ध, बैंकोंका संगठन, आदिमें भी यथोचित परिवर्तन करना होगा ताकि इसकी कमजोरियाँ दूर हो जाएँ और हमारी बैंकव्यवस्था सबल, स्वस्थ होकर आगे बढ़ सके।

भारतीय रिजर्व बैंककी महत्ता—रिजर्व बैंकका राष्ट्रीयकरण

आधुनिक समय में एक भी देश ऐसा नहीं है जहाँ केन्द्रीय बैंक न हो। यहाँतक कि छोटा से छोटा और नया से नया देश भी अपना केन्द्रीय बैंक स्थापित कर चुका है। आधुनिक आर्थिक व्यवस्थामें केन्द्रीय बैंक विशेष स्थान

रखता है कारण दिन पर दिन हम व्यक्तिवादी आर्थिक व्यवस्था को छोड़कर केन्द्रवर्ती योजनाओं के द्वारा परिचालित आर्थिक व्यवस्था की ओर जा रहे हैं और इस नई आर्थिक व्यवस्था में जोकि केन्द्रीय योजनाओं पर अवलम्बित है, केन्द्रीय बैंक का एक विशिष्ट स्थान है।

केन्द्रीय बैंक के बारे में पुरानी दृष्टिवाले अर्थशास्त्रियोंका प्रस्ताव यह था कि संस्था को जहांतक हो राजनैतिक प्रभावों से मुक्त रखना चाहिए और इसलिए वे शेयरधारी तथा सदस्य बैंकों के द्वारा केन्द्रीय बैंक की संचालक मंडली के चुनाव का समर्थन करते थे। आधुनिक समय में आर्थिक स्थिति इतनी बदल गई है कि कोई भी केन्द्रीय बैंक अपने को राष्ट्रीय प्रभावों से मुक्त नहीं रख सकता लेकिन इस पर भी दूसरी लड़ाई के पहले तक केन्द्रीय बैंकों को जहां तक हो सकता था निर्लिप्त रखा जाता था। सन् १९३४ की रिजर्व बैंक कानून भी इसी सिद्धान्तके आधार पर बनाई गई थी ताकि रिजर्व बैंकके संचालकगण व शेयरधारियोंके द्वारा निर्वाचित हों। इसके अलावा विभिन्न प्रान्तोंमें शेयरोंके यथार्थ वितरणके लिए भी इस कानूनमें प्रबन्ध किया गया था ताकि रिजर्व बैंक किसी भी एक प्रान्तके मुट्ठीमें न आ जाय। परन्तु वास्तवमें ये कार्रवाइयां सफल नहीं हुईं कारन एक ओर तो सरकारी मनोनीत संचालकोंकी संख्या दूसरे संचालकोंके बराबर रही तथा रिजर्व बैंकके गवर्नरको अतिरिक्त कानूनी अधिकार दे दिया गया तथा दूसरी ओर रिजर्व बैंकके अधिकतर शेयरें बम्बईके पूंजीपतियोंके कब्जेमें आ गईं। इस प्रकार से कानूनी दृष्टिसे रिजर्व बैंक राष्ट्रीय प्रभावोंसे मुक्त होते हुए भी अपना व्यावहारिक रूप न रख सका और कुछ दिन पहले जब रिजर्व बैंकका राष्ट्रीयकरन हुआ तो उससे रिजर्व बैंककी व्यावहारिक नीतिमें कोई गम्भीर परिवर्तन करनेकी आवश्यकता नहीं हुई।

रिजर्व बैंक स्थापित होनेसे पहले भारतमें पूर्ण दृष्टिसे कोई केन्द्रीय बैंक नहीं था। भारतमें केन्द्रीय बैंक स्थापित करनेका प्रस्ताव बहुत ही पुराना

है। भारतकी तरह एक महादेशमें मुद्रा-नीति तथा कर्ज-प्रसार तथा नियंत्रण के लिये एक केन्द्रीय बैंककी आवश्यकता सन १८३६ से ही सुस्पष्ट है। सन १८५६ में भारत सरकारके अर्थ-सदस्य सर जेम्स विल्सनने भारतमें एक केन्द्रीय बैंक स्थापित करनेका प्रस्ताव किया था। पहली लड़ाईके समय में जब केन्द्रीय बैंकके अभावसे आर्थिक व्यवस्थाका काम चलना असम्भव हो उठा तब बंगाल, बम्बई तथा मद्रास प्रान्तोंके केन्द्रीय बैंकोंको सम्मिलित करके सन १९२० में इम्पीरियल बैंककी स्थापना की गई तथा कर्ज नियंत्रणका पूरा दायित्व इसी बैंकके हाथमें सौंप दिया गया लेकिन मुद्रा-नियंत्रणका काम सरकारके हाथमें रहनेसे तथा इम्पीरियल बैंक दूसरे बैंकोंके साथ व्यावसायिक विषयोंमें प्रतिस्पर्द्धा करनेके कारण केन्द्रीय बैंकका पूरा दायित्व न वहन कर सका अतः इसकी कर्ज-नियंत्रण नीति असफल रही। सन १९२७ में सर बेसिल ब्लैकेटने भारतमें केन्द्रीय बैंक स्थापित करनेके लिये एक कानूनका मसविदा केन्द्रीय महासभामें रक्खा था लेकिन वह भी विभिन्न कारणोंसे पास नहीं हो सका। अन्तमें सन १९३४ में जब रिजर्व बैंक कानून बना तब हमारी आर्थिक व्यवस्थाको एक बहुत पुरानी मांगका सुधार हुआ।

रिजर्व बैंक तथा मुद्रा व्यवस्था—रिजर्व बैंक स्थापित होनेके बाद मुद्रा-व्यवस्थाका पूरा काम सरकारने रिजर्व बैंकके हाथमें सौंप दिया। कागजी मुद्रा जारी करनेकी नीतिमें भी परिवर्तन किया गया। इससे पहिले तक हमारी मुद्रा-व्यवस्था इंगलैंडकी मुद्रा-व्यवस्थाके आधारपर चलती थी लेकिन अब इसमें गंभीर परिवर्तन हुआ। इस नयी व्यवस्थामें प्रति १०० रुपयेके कागजी सिक्केके पीछे ४० रुपये कीमतकी स्वर्णमुद्रा, सोनेका पासा या स्टर्लिंग मुद्रा रखनी होगी। लड़ाई शुरू होनेके बाद रिजर्व बैंक कानूनकी मुद्रा-नियंत्रण धाराओंमें कुछ परिवर्तन कर दिया गया है जिससे सिर्फ इंगलैंड तथा भारत सरकारके ऋणपत्रोंके आधारपर ही कागजी मुद्रा जारी किया जा सकेगा।

इसके फलस्वरूप हमारे देशमें जो मुद्रास्फीति हुई थी उसके दुष्परिणामोंसे हम परिचित हैं। (मुद्रास्फीति विषयक निबन्ध देखिये)।

रिजर्व बैंकमें दो दफ्तर हैं—एक तो नोट जारी करनेका दफ्तर और दूसरा बैंक विषयक काम करनेका दफ्तर। नोट जारी-दफ्तरकी पूंजी निम्न प्रकार होगी : स्वर्ण मुद्रा तथा सोनेका पासा, स्टर्लिंग कागजात, रुपया तथा भारत सरकारके कागजात। इनमेंसे प्रतिशत ४० स्वर्णमुद्रा या सोनेका पासा होंगे और इनकी सर्वनिम्न कीमत ४० करोड़ रुपये होंगे। लड़ाई शुरू होनेके बादसे इस धारामें परिवर्तन कर दिया गया है। रुपयेकी बाहरी कीमत यानी विदेशी सिक्कोंमें इसका विनिमय दर स्थिर रखनेका दायित्व भी इस दफ्तरपर सौंपा गया है। रिजर्व बैंक कानूनकी धारा ४० के अनुसार रिजर्व बैंक १ रुपया=१ शिलिंग ५ ४९/६४ पे० दर पर स्टर्लिंग विक्रय करेगी तथा १ रु०=१ शिलिंग ६ ३/१६ पे. दर पर स्टर्लिंग खरीदेगी। भारत सरकारकी विदेशी सिक्केकी आवश्यकता पूरा करनेका दायित्व भी रिजर्व बैंकपर रक्खा गया है। रिजर्व बैंककी बैंक दफ्तरकी देनी निम्न विषयों पर है : पूंजी संचित तथा विभिन्न प्रकारकी अमानतें जोकि सरकार तथा विभिन्न बैंकोंसे प्राप्त होती हैं। इस दफ्तरकी जायदाद निम्न प्रकार है : रुपयों तथा चालान सिक्का, खरीदी हुई हुण्डियां और विदेशमें रक्खी हुई अमानतें व सरकार को दिया हुआ कर्ज आदि।

रिजर्व बैंक भारत सरकार तथा प्रान्तीय सरकारोंका सारा काम करती है। सन् १९३७ के अप्रैल महीनेसे प्रत्येक प्रान्तीय सरकार अपने नामसे इसमें हिसाब खोली है तथा निश्चित रकम जमा रखती है। रिजर्व बैंक विभिन्न सरकारोंकी तरफसे रुपयेका प्रबन्ध करना, सरकारी कर्ज लेना तथा कर्ज चुकाना, विभिन्न सरकारोंको अल्पकालीन कर्ज देना आदि सारा काम करती है। भारतीय बैंक व्यवसायमें रिजर्व बैंकका एक विशिष्ट स्थान है। बैंक व्यवसाय पर नियंत्रण रखना, आर्थिक संकटके समय कर्ज मदद पहुँचाना, [illegible]

आदि सारा काम रिजर्व बैंक पर है। इसके अलावा मिश्रा बाजार को नियंत्रित करनेका दायित्व भी रिजर्व बैंक पर है। देशके बीते हुए २० वर्षोंमें मिश्रा बाजारको नियंत्रित करनेकी आवश्यकता रिजर्व बैंक को नहीं हुई [illegible] सन् १९२९ से ब्याज दर इतना कम हो गया है तथा बैंकोंके हाथमें इतनी नकद पूंजी इकट्ठी हो रही है कि उन्हें रिजर्व बैंकसे अधिक सहायता लेनेकी आवश्यकता नहीं हुई। परन्तु यह बात माननी पड़ेगी कि जरूरत पड़ने पर रिजर्व बैंक मिश्रा बाजार तथा कर्ज व्यवस्थाको नियंत्रित कर सकता है।

रिजर्व बैंकका राष्ट्रीयकरण—रिजर्व बैंकके राष्ट्रीयकरणका प्रश्न उतना ही मुख्य है जितना कि रिजर्व बैंकका था। यह बात पहले ही कही गई है कि रिजर्व बैंक एक स्वतंत्र संस्था होते हुए भी व्यवहारमें सरकारी नियंत्रण के अन्दर रहा जिससे इसकी नीति पूरी तौरसे स्वतंत्र न रही। अन्य देशोंमें भी गत कई वर्षोंमें केन्द्रीय बैंकका राष्ट्रीयकरण करनेकी प्रवृत्ति जोर पकड़ रही है। कुछ दिन पहले ही इंगलैण्ड तथा फ्रांसकी केन्द्रीय बैंकोंका राष्ट्रीयकरण हो चुका है। भारत स्वतंत्र होनेके बाद हमारे देशमें भी यह प्रश्न शुरू हुआ। सन १९४९ के जनवरी महीनेसे रिजर्व बैंकका राष्ट्रीयकरण हो चुका है। रिजर्व बैंकके राष्ट्रीयकरणके पक्षमें कारण निम्न प्रकार हैं। (1) किसी भी संस्थाको सरकार दो कारणों से हाथमें लेती है—पहला, यदि उससे समाजको पूर्ण लाभ न हो और दूसरा उस संस्थाका लाभ मुनाफा राजकोषमें लेने के लिए। रिजर्व बैंकके मुनाफेका बड़ा भाग [illegible] अभीतक सरकारके हाथमें जाता रहा लेकिन इसके कामसे भारतीय व्यापारी वर्ग, बैंकव्यवस्था तथा ग्रामीण जनताको जो आशायें थीं वे पूरी नहीं हुईं। कुछ खास [illegible] में भी रिजर्व बैंक का दायित्व रहा। यद्यपि कानूनके अनुसार यह सरकार की नीतिमें [illegible] करनेमें [illegible] था परन्तु फिर भी देशके केन्द्रीय बैंक होनेके नाते सरकार को सलाह देना इसका

कर्तव्य था। (२) सरकार के सामने जो आर्थिक योजनायें हैं उन्हें सफल बनानेके लिए सरकार तथा रिजर्व बैंकमें पूर्ण सहयोग की आवश्यकता है जो कि राष्ट्रीयकरण के द्वारा ही प्राप्त हो सकता है। (३) रिजर्व बैंकके शेयर बम्बई प्रान्तके कई एक पूंजीपतियोंके हाथमें इकट्ठे होनेके कारण इस सार्वजनिक संस्थामें कुछ हानी पहुंचती थी। इसे रोकनेके लिए भी राष्ट्रीयकरणकी आवश्यकता थी। राष्ट्रीयकरणके बाद रिजर्व बैंकमें जितने परिवर्तन हुए वे निम्न प्रकारके हैं :—

(१) वर्तमान शेयरधारियों को १०० रु० के शेयर के बदलेमें ११८।≈) कीमत के स्थायी ३% ब्याजके ऋणपत्र दिये जायेंगे।

(२) निर्दिष्ट दिन में गवर्नर तथा सहकारी गवर्नरों को छोड़कर संचालक मंडली के सारे सदस्य पदत्याग करेंगे। नई संचालक मंडली में गवर्नर तथा सहकारी गवर्नरों के अतिरिक्त ११ सरकारी मनोनित संचालक होंगे, जिन में एक तो सरकारी पदाधिकारी होंगे, ४ संचालक ४ प्रान्तीय शाखाओं से भेजे जायेंगे तथा ६ सदस्यों को सरकार विभिन्न उद्योग धन्धों आदि से मनोनीत करेगी।

(५) रिजर्व बैंक की प्रान्तीय शाखाओं में ५ संचालक रहेंगे।

(४) केन्द्रीय सरकार भी जरूरत पड़ने पर जनसाधारण के स्वार्थ को सुरक्षित करने के लिए रिजर्व बैंकको निर्देश देगी।

(५) रिजर्व बैंक के गवर्नर को सारे काम के बारे में पूर्ण अधिकार रहेगा।

राष्ट्रीयकरण के बाद यदि रिजर्व बैंक को ठीक आर्थिक व्यवस्था को इसी ओर से मदद दे सके तभी राष्ट्रीयकरण सार्थक होगा।

भारतमें बीमा व्यवसाय

बीमा व्यवसाय की महत्ता-आधुनिक व्यवसाय में व्यापारियों को हर तरहसे जोखिम उठाना पड़ता है। इन्हें हम ३ भागोंमें बांट सकते हैं—(१) अदृश्य तथा बीमा के अयोग्य जैसे कि अचानक लाभ या क्षति; (२) दृश्यमान लेकिन बीमा के अयोग्य जैसे कि सामग्रियों की कीमत में घट-बढ़ या मांग पर जनसाधारण की रुचि में परिवर्त्तन का प्रभाव; तथा (३) दृश्यमान एवं बीमायोग्य। सिर्फ शेषोक्त जोखिम पर ही बीमा व्यवसाय लाभदायक होता है। इस प्रकार से बीमा व्यवसाय जो जोखिम उठाता है उसका भार बोझ उसके अपने कंधेपर नहीं रहता कारण बीमाव्यवसायी प्रत्येक बीमाकृत व्यक्ति या संस्थासे प्रिमियम या किस्त ले लेता है जिसके द्वारा वह क्षति पूरण कर सकता है। जोखिम तो साथ ही साथ प्रत्येक व्यक्ति या संस्था पर नहीं आती इसलिए क्षतिपूरण देनेपर भी ज्यादातर क्षेत्रोंमें बीमा व्यवसायी को बचत होती है एवं साथ ही साथ जोखिमका सारा बोझा एक ही जगह पर नहीं आकर सारी समाज पर, बीमाकृत सारे व्यक्ति तथा संस्थाओं पर आ जाता है जिससे किसीपर असहनीय बोझा नहीं आता। बीमा व्यवसायका मुख्य सूत्र क्षतिपूरण देना है—बीमाकृत व्यक्ति या संस्था इससे मुनाफा न कर सकती यानी जोखिम आनेपर जितना नुकसान पहुंचता है ठीक उतना क्षतिपूरण देना ही बीमा व्यवसायका मूल सूत्र है।

भारतमें बीमा व्यवसाय—बीमा व्यवसाय भारतीय व्यापारमें कोई नई वस्तु नहीं है। प्राचीन कालमें जब दूर देशोंमें भारतका व्यापार चलता था तब भी सामग्रियों को जोखिम देनी जाती थी। व्यापारिक बीमा प्राचीन समयसे प्रचलित होनेपर पर भी जीवन बीमाके साथ लोगों का परिचय न था; कारण भारतीय समाज व्यवस्थामें प्रत्येक व्यक्तिको इस तरह से स्वयं

स्थापित हुई जिन में से अनेकों की जड़ मजबूत न थी। बीमा व्यवसाय में दुर्घटना को रोकने के लिए कानून बनाने की आवश्यकता हुई जिसके फल-स्वरूप भारत सरकार ने सन् १९१२ में दो कानून बनाये। इन में एक तो इन्स्योरेन्स एक्ट थी और दूसरी प्रोभिडेन्ट इन्स्योरेन्स एक्ट। बीमा व्यवसाय पर इनका अच्छा असर हुआ। विदेशी कम्पनियां सरकार को अपना कार्य्य विवरण देना पसन्द नहीं करती थीं ; इसलिए इनके विस्तार के रास्ते पर रुकावटें पहुंचने लगीं। बहुत सी कमजोर देशी कम्पनियां भी बन्द हो गईं। परन्तु बची हुई कम्पनियोंकी जड़ मजबूत होने के कारण बीमा व्यवसाय सुप्रतिष्ठित हुआ। पहली लड़ाई शुरु होनेके बाद बीमा कम्पनियों की परीक्षा शुरु हुई। एक ओर लड़ाई के समय मृत्यु संख्या बढ़नेके कारण अधिक क्षतिपूरण देना पड़ा तथा दूसरी ओर बीमा व्यवसायमें मंदी आ गई तथा प्रतिभूतियों की कीमत घट जानेके कारण भी इन्हें नुकसान पहुंचा। सन् १९१८ में इन्फ्लुएन्जा से भी बहुतसे लोग मारे गये। सन् १९१९ से जीवन बीमा व्यवसायमें फिरसे तेजी आई तथा बहुतसी नई कम्पनियां स्थापित की गईं जिनमें कुछ कुछ कमजोर कम्पनियां भी प्रतिष्ठित हो चुकी थीं। सन् १९३८ में कमजोर कम्पनियों का विस्तार रोकने के लिए एक नई कानून बनाई गई जिसके अनुसार प्रत्येक बीमा कम्पनी को सरकारी अनुमोदन लेनी पड़ेगी तथा आरम्भमें ५० हजार रुपये की प्रतिभूति जमानत देनी पड़ेगी एवं निर्दिष्ट समयमें इस प्रतिभूतिका कीमत दो लाख रुपया कर देना होगा। लड़ाईके बाद बीमा कानूनमें कुछ सुविधायें दी गईं। इस कारण फिरसे बीमा व्यवसायमें कमजोरियां आने लगी हैं। इन्हें रोकने के लिए नई कानून बनाने की बात सोची जा रही है।

जीवन बीमा व्यवसाय का भविष्य—आधुनिक व्यापारमें जीवन बीमा विशेष महत्व रखती है। इसलिए इस व्यवसायके भविष्यके बारेमें विचार

करने की आवश्यकता है। वर्तमान समयमें इस व्यवसायमें निम्न प्रकारकी बातें मुख्य हैं—कम्पनियों की पूंजी विनियोग पर रुकावटें, इस व्यवसाय पर सरकारी राजनीतिक प्रभाव, व्यवसाय कम होनेका प्रभाव, लागत कम करना तथा कम्पनियों में पारस्परिक सहयोग कायम करने की आवश्यकता। सन् १९३८ के कानूनके अनुसार बीमा कम्पनियों की पूंजी विनियोग पर कुछ रुकावटें लगाई गई हैं ताकि ज्यादातर पूंजी सरकारी प्रतिभूतियोंमें लगाई जाएं। बीमा व्यवसाय सम्बन्धी जो नई कानून बनने वाली है उसमें इस विषयमें और भी कठिन व्यवस्था की जायगी।

बीमा-व्यवसाय—भारत की प्राचीन वाणिज्य व्यवस्थामें हमें बीमा व्यवसाय के उदाहरण मिलते हैं। भारतका व्यापार बहुत व्यापक होनेके कारण ही बीमा का प्रबन्ध करने की आवश्यकता हुई थी। यह बीमा व्यवसाय बैंक व्यवसाय के साथ संयुक्त था। आधुनिक रूप में बीमा व्यवसाय को आरम्भ करने का श्रेय विदेशी कम्पनियों को है। उन्नीसवीं शताब्दी में कलकत्ता ही बीमा व्यवसायका केन्द्र था तथा वहां पर जहाजी बीमा व्यवसाय करने वाली १ भारतीय तथा १२ विदेशी कम्पनियां थीं। बम्बई में बीमा व्यवसाय का आरम्भ कुछ दिन बाद होने पर भी वर्तमान समय में बम्बई ही बीमा व्यवसाय का मुख्य केन्द्र है। पहली लड़ाई के बाद कुछ कुछ भारतीय कम्पनियां व्यापार के इस नये क्षेत्र में आने लगीं। सन् १९४५ में बीमा कम्पनियों की संख्या ३९४ थी जिनमें १९८ कम्पनियां भारत में स्थापित हुई थीं, ६४ बाहरकी कम्पनियां थीं तथा [illegible] के साथ सम्मिलित थीं। अग्नि बीमा का प्रारम्भ और भी आधुनिक समय में हुआ। औद्योगिक क्रान्ति के पहले अग्नि बीमाकी आवश्यकता नहीं समझी जाती थी लेकिन इसके बाद से भयानक दुर्घटनाओं की संख्या बढ़ जाने के कारण अग्नि बीमा की महत्ता बढ़ गई। जो कम्पनियां अग्नि बीमा व्यवसाय करती हैं उनका एक प्रधान अंग है तथा इस अंग में [illegible]

है। भारत में अग्नि बीमा व्यवसायमें निर्दिष्ट समयके लिए निर्दिष्ट जोखिम को एक-पालिसी बेची जाती है। इसके अलावा जटील तरह के व्यापार भी कुछ हदतक होता है।

बीमा व्यवसाय का भविष्य—जीवन बीमा व्यवसाय को छोड़कर दूसरे बीमा व्यवसाय में हम अभी भी बहुत पिछड़े हुए हैं। इनका वाणिज्य कुछ हद तक बीमा कम्पनियों का होने पर भी सारा वाणिज्य इनका नहीं है। सरकारी उदासीनता, विदेशी बैंकों की घातक नीति तथा हमारे विदेशी व्यापार पर परदेशियों का अधिकार हमारी बीमा कम्पनियों को व्यवसाय के इस क्षेत्र में प्रवेश करने से रोक रही हैं। सन् १९३८ में जब बीमा कानून बनने वाली थी उस वक्त कहा गया था कि भारतीय कम्पनियों को संरक्षित करने का प्रबन्ध इस कानून में होना चाहिए लेकिन १९३५ की भारत शासन कानून के अनुसार भारत सरकार को ऐसा कोई अधिकार नहीं था जिससे वे ब्रिटिश कम्पनियों को छोड़ कर भारतीय कम्पनियों को संरक्षित कर सकती थी। भारत का विदेशी व्यापार परदेशी कम्पनियां तथा विदेशी बैंकों के अधिकार में रहने के कारण भी भारतियों को मदद नहीं मिलती थी। इसके अलावा विदेशस्थित बीमा संस्थायें भी भारतीय कम्पनियों से सहयोग नहीं करती हैं। इस स्थिति को अगर सुधारना है तो भारत सरकार को इस विषय में हस्तक्षेप करने की विशेष आवश्यकता है। भारतीय बीमा कम्पनियोंके संगठन में भी कई कमजोरियां हैं। इन्हें चाहिए कि इनका संगठन और पुष्ट हो ताकि व्यापारी वर्ग इस पर निर्भर कर सकें। भारतीय कम्पनियों को सिर्फ भारतीय बाजार में ही सीमित रहना उचित नहीं होगा। भारत के आस पास में जो सब देश हैं जहां पर व्यापार का विस्तार हो रहा है, लेकिन प्रयोजन के अनुसार बीमा व्यवसाय का प्रबन्ध नहीं है वहां इसका विस्तार होना चाहिए और इस के लिए सरकारी मदद की आवश्यकता होगी। विदेश में यदि हमारी कम्पनियोंको सफलता प्राप्त करनी है तो एक ओर तो हमारी सरकार

नीति आधुनिक तथा सुन्दर होनी चाहिए तथा दूसरी ओर इन्हें विदेशियों की सहानुभूति आकर्षित करना पड़ेगा। बीमा व्यवसाय संघ मजबूत करने के लिए संघशक्तिकी भी आवश्यकता है। कुछ दिन पहले बम्बईमें इस प्रकारके दो एक संघ कायम किये गये हैं लेकिन इंगलैण्डके चार्टर्ड इन्स्योरेन्स इन्सटिट्यूटकी तरह एक अखिल भारतीय संस्था कायम होनेकी आवश्यकता है। अन्तमें यह कहना उचित होगा कि व्यापारके जिन क्षेत्रोंमें अभी तक व्यापारका प्रारम्भ नहीं हुआ है लेकिन बीमा प्रबन्ध होनेकी आवश्यकता है जैसे कि फसल बीमा, सामाजिक बीमा आदि इन पर भी हमारी बीमा कम्पनियोंको ध्यान देना चाहिए। और एक प्रश्न हमारी बीमा कम्पनियोंके सामने आ रहा है; वह बीमा कम्पनियोंके राष्ट्रीयकरणका सवाल है। हमारे देशमें साधारण दृष्टिसे राष्ट्रीयकरणकी गंभीर आवश्यकता दिखाई पड़ती है कारण सिर्फ राष्ट्रीयकरणके द्वारा जनसाधारणकी सहानुभूति आकर्षित करनी सहज होगी तथा विदेशी कम्पनियोंकी अनुचित प्रतिस्पर्धा भी हट जायेगी लेकिन वास्तविक दृष्टिसे राष्ट्रीयकरणमें कुछ असुविधायें भी हैं। बीमा व्यवसाय दूसरे व्यापारकी तरह नहीं है। इसमें परिस्थितिके परिवर्तनके साथ साथ नूतन सिद्धान्त ग्रहण करनेकी आवश्यकता पड़ती है और इसके लिए यथेष्ट व्यावहारिक अभिज्ञताकी भी आवश्यकता है। इसीलिए वर्तमान स्थितिमें हम राष्ट्रीयकरणकी बात नहीं सोचकर बीमा कम्पनियोंके साथ सरकारके पूर्ण सहयोगकी बात सोचें तो बड़ी अधिक उपयोगी होगा।

धनका असम विभाजन और उसका परिणाम—आधुनिक राष्ट्रोंकी कर-नीति

आर्थिक विचारोंमें धनके असम विभाजनका प्रश्न बहुत ही महत्वपूर्ण है। प्राचीन अर्थशास्त्रीगण इस विषय पर गहरी तौरसे ध्यान नहीं देते थे। उनका कहना यह था कि देशमें बनी हुई सामग्रियां उत्पादनके विभिन्न साधनोंमें उनकी उत्पादनशक्तिके अनुपातसे बांट दी जाती हैं। वितरण-नीतिकी यह व्याख्या बहुत ही सरल थी लेकिन इसके द्वारा धन वितरणकी विषमताको रोकना सम्भव न था। एक ओर तो धनिक अधिक धनशाली बनते रहे एवं दूसरी ओर दरिद्रताकी तीव्रता दिन पर दिन बढ़ती रही, यहां तक कि समाज में बनी हुई सम्पत्तियोंका ज्यादातर हिस्सा अल्पसंख्यक लोगोंके हाथमें आ गया और अधिक संख्यक लोग बिना क्रयशक्तिके कष्ट पाने लगे। धनका असम-विभाजन पूंजीवादी अर्थ व्यवस्थाका धर्म है। परन्तु यह स्थिति ज्यादा दिन तक स्थायी नहीं रह सकती। पूंजीवादी अर्थव्यवस्थाके बारेमें गम्भीर समालोचना शुरू हुई; समाजवादीगण इसे जड़ मूलसे उखाड़नेके लिए आन्दोलन करने लगे। अर्थशास्त्रके दृष्टिकोणमें भी परिवर्तन आ रहा है; राष्ट्रीय सम्पत्तिके विभाजनके बारेमें आलोचना करते हुए अर्थशास्त्रीगण अब अस्पष्ट काल्पनिक उत्पादन साधनोंकी बात छोड़कर व्यक्तिकी ओर ध्यान दे रहे हैं यानी जातीय विभाज्य सम्पत्तिका कितना हिस्सा जमींदार पा रहा है और कितना हिस्सा पूंजीपति, कितना हिस्सा मजदूर पाता है और कितना [illegible], यही विचार आज सबसे प्रधान हो रहा है। इसमें धन वितरणकी असमानता स्पष्ट नजरमें आती है।

इस असमानताका क्या कारण है? यह असमानता कितनी गंभीर है,

विभिन्न सामाजिक वर्गों के भोग व्यवहारमें यह स्पष्ट नहीं होती; लेकिन इसमें शक नहीं कि आर्थिक दृष्टिसे उच्चवर्गके लोग भोग व्यवहारातिरिक्त सम्पत्तिका संचय करते हैं और निम्नवर्गके लोग संचय नहीं कर पाते। यह संचित अर्थ उत्तराधिकार कानूनके द्वारा इकट्ठा होता रहता है और धनवितरणकी विषमता भी बढ़ती रहती है। जबसे पूंजीवादी अर्थव्यवस्थाकी शुरुआत हुई तबसे यह विषमता और भी बढ़ गई कारण पूंजीवादी अर्थव्यवस्था श्रमिकोंके शोषण पर ही प्रतिष्ठित है। इस विषमताके प्रभावसे आज सामाजिक जीवन पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है। ज्यादातर समाजोंमें जातीय सम्पत्तिका ३/४ हिस्सा १/४ अंश जनताके हाथमें है और १/४ अंश सम्पत्तिसे ३/४ अंश जनताका जीवन निर्वाह होता है। हमारी अर्थव्यवस्था ऐसी है कि इसमें उत्पादन साधनोंका स्वामित्व अल्पसंख्यक पूंजीपतियोंके हाथमें छोड़ दिया गया है; इस समाजमें सम्पत्तिहीन व्यक्ति आजादीके साथ नहीं रह सकता; उसे जीवन निर्वाह करनेके लिए अपनी श्रमशक्तिको बेच देनी पड़ती है और यदि इस श्रमशक्तिको खरीदनेवाला नहीं मिला तो उसे बेकार ही रहना पड़ता है। इस समाज व्यवस्थामें कानून तथा विचार स्वतन्त्रता पूंजीपतियोंका मदद ही करती है। यह व्यवस्था तब तक ही कायम रह सकती है जब तक कि जनता शिक्षणके [illegible] निर्बल हो, दरिद्रताके कारण संगठित न हो [illegible] लिये नहीं।

उत्तराधिकार कानून धनके असमान वितरणको मदद पहुँचा रही है। अतीत समयमें [illegible] किसीको [illegible] सम्पत्तिका स्वामित्व मिला था वही आज तक उत्तराधिकार कानून पर आश्रित होकर चला आ रहा है और इस अधिकारमें [illegible] व्यवस्था पर भी इसका स्वामित्व बना हुआ है। इस दृष्टिसे आज पूंजीपतियोंकी शक्ति [illegible] है। इसके अलावा उत्तराधिकारके कारण समाजके विभिन्न वर्गोंके आमदनीमें भी असमानता दिखाई पड़ती है। पूंजीपति अपनी पूंजी बढ़ाते [illegible] हैं लेकिन श्रमिक केवल अपनी श्रमशक्ति

पर ही अवलम्बित हैं। धन वितरणकी विषमतासे हमें और एक समस्याका सामना करना पड़ता है ; वह दरिद्रता है। दरिद्रता जब समाजके निर्दिष्ट हिस्सेमें सीमित रहती है तब कोई गभोर समस्या दिखाई नहीं देती लेकिन दरिद्रताकी व्याप्ति होने पर समाजमें अस्थिति आनेकी सम्भावना बढ़ जाती है। दरिद्र लोगोंको दान देनेका निर्देश सभी समाजोंमें दिया गया है लेकिन दानसे असमानता दूर नहीं होती। इसके अलावा दान एक वस्तु है और अधिकार दूसरी। दान देना तथा लेना दोनो ही प्रगति-विरोधी हैं। इसलिए समाजवादियोंने अधिकारका प्रश्न उठाया है।

इस व्यापक दरिद्रताके तीन कारण हमारे नजरमें आते हैं। पहला उत्पादन-व्यवस्थामें ऐसी कुछ त्रुटियां हैं जिससे विभिन्न उत्पादन साधनोंको उचित मजदूरी नहीं मिलती; दूसरा वर्त्तमान उत्पादन-व्यवस्थामें मजदूरों को इतना जोखिम उठाना पड़ता है तथा उनके शरीर व मनपर इतना प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है जिससे भी दरिद्रता बढ़ती है तथा तीसरा वर्त्तमान समाज व्यवस्थामें निम्नस्तरसे उन्नतस्तरमें आनेका सुयोग सुविधा कम होनेके कारण मजदूरों की आर्थिक उन्नति नहीं होती। आर्थिक दृष्टिसे उन्नत देशोंमें भी धन विरतरणकी विषमता तथा दरिद्रता कम नहीं है। वर्त्तमान समयमें जोखिम इतनी अधिक होती है जिससे श्रमिकों के जीवनपर हर तरहके खतरे आते रहते हैं और इससे समाज कमजोर होती है। इस बर्बादीको रोकनेके लिए संगठन तथा सुधारकी आवश्यकता है। सामाजिक बीमाके द्वारा श्रमिकों का जीवन सुरक्षित करना भी उचित होगा। इनके अलावा निम्नवर्गके लोगोंकी आर्थिक दुरवस्था दूर करनेके लिए साधारण शिक्षा तथा व्यावहारिक शिक्षाकी आवश्यकता है एवं साथ ही साथ विभिन्न धन्धोंमें श्रमिकोंका यथोचित वितरण करना भी उचित होगा। इस प्रकारसे दरिद्रता कुछ हदतक दूर हो सकती है लेकिन धनवितरण की विषमता नहीं क्योंकि जबतक धनोत्पादि सम्पत्ति पर व्यक्ति स्वामित्व रहेगा तबतक विषमतायें भी रहेंगी।

तक नहीं पहुंचे, तब तक मार्क्सवादी सिद्धान्त उपयोगी नहीं हो सकता। बहुतसे विचारक अन्य सिद्धान्तोंसे मार्क्सवादकी इस भिन्नता पर ध्यान नहीं देते हैं। मार्क्सके बड़े-बड़े समर्थकों और विचारकोंने भी यह भूल की है। फलतः मार्क्सवादी सिद्धान्तके सम्बन्धमें अनेक भ्रमात्मक बातें फैल गयीं।

मार्क्स अपनी समकालीन आर्थिक परिस्थितिको देखकर सम्भवतः निराश हो गये थे और शायद उनको अपने सिद्धान्तकी भावी सफलताके बारेमें शंका भी थी। परन्तु, यदि बादकी घटनाओंका ठीकसे विचार किया जाए, तो यह बात माननी ही पड़ेगी कि यह निराशा भ्रान्तिपूर्ण थी। मार्क्सवादी सिद्धान्त आर्थिक इतिहासके विश्लेषणका फल है और वह आर्थिक विकास अवस्था-विशेष में ही सत्यसिद्ध हो सकता है। गत सौ वर्षोंकी आर्थिक घटनाओंका अध्ययन करने पर ही मार्क्सवादी सिद्धान्तकी सत्यता प्रतीत होगी और तभी पूर्णरूपसे मार्क्सवाद समझा जा सकता है। सौ वर्षके बाद आज हम सम्भवतः मार्क्स-वादको अधिक स्पष्टतासे अध्ययन कर सकते हैं और भावी अर्थशास्त्री हमसे भी अधिक विस्तारसे समझ सकेंगे।

मार्क्सकी रचनाएँ प्रकाशित होनेके बादसे उनके सिद्धान्तोंका असर सिर्फ दूसरे दार्शनिकों पर ही नहीं, बल्कि बहुत-से राजनीति और कूटनीति विशारदों पर भी हुआ। वे लोग मार्क्सके सिद्धान्तोंको कार्यान्वित करनेके उपाय सोचने लगे, परन्तु ये सब प्रयास व्यर्थ सिद्ध हुए। अर्थात् वे मार्क्सवादको स्थापित करनेमें विफल हुए, क्योंकि वे सिर्फ जनसाधारणकी किसी एक आर्थिक समस्या के संशोधनके लिए किये गये थे। वर्तमान राष्ट्र—उसका रूप और नाम जो कुछ भी क्यों न हो—वह जनताकी हार्दिक सहानुभूति और समर्थनके बिना प्रतिष्ठित नहीं हो सकता। वर्तमान स्थितिमें जनताका दर्द और उसका आर्थिक कल्याण प्रत्येक राष्ट्रको सोचना ही पड़ता है; परन्तु इन सब बातोंसे मार्क्स-वादी समाजवादका कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। आर्थिक कल्याणकी बातें मार्क्सवादके सामने गौण हैं—इसका तुच्छ पहलू मात्र है। राजनीति तो

बहुत आगे बढ़ गया है ; पुरानी राष्ट्र-व्यवस्थामें यह कभी शायद सम्भव नहीं होता। अर्थात् आर्थिक परिस्थितिमें अचानक कोई भी परिवर्तन होना सम्भव नहीं है। इसी क्रान्तिको यदि इस दृष्टिसे देखा जाय तो निराशाका कोई भी कारण प्रतीत नहीं होता लेकिन समाजवादके विकासकी कई सीढ़ियां हैं। पहली सीढ़ीमें देशके आधुनिक शिल्प और व्यापारका विस्तार और एक शोषित श्रमिक वर्गकी उत्पत्ति अवश्यम्भावी है। दूसरी सीढ़ीमें श्रमिकोंपर किये गये अत्याचारोंके फलस्वरूप उनमें वर्गचेतना दिखाई पड़ती है। जागृतिसे प्रभावित होकर वे अपनी शक्ति संगठित करते हैं और पूंजीवादी उत्पादन व्यवस्थाको जड़से उखाड़ देनेका निश्चय करते हैं। इसके लिये सदैव विप्लवकी जरूरत नहीं पड़ती; लेकिन विप्लवके द्वारा श्रमिक शीघ्र ही अपने लक्ष्य तक पहुँच सकते हैं। मार्क्स अपनी दूरदर्शिताके कारण इन सब बातोंका अनुमान लगा सकते थे। उनका सिद्धान्त पूंजीवादी उत्पादन-शक्तिके विश्लेषणपर आधारित है। परन्तु पूंजीवादके समाप्त होनेपर समाज व्यवस्था कैसी होगी, इसका अनुमान मार्क्सके समकक्ष दार्शनिक भी नहीं बता सके। इसलिये वे साम्यवादी समाजका एक साधारण चित्र खींचनेके अतिरिक्त कुछ भी न कर सके। साम्यवादी समाजके बारेमें मार्क्सका कहना है कि इस समाज-व्यवस्था में सब कोई अपनी-अपनी सामर्थ्यके अनुसार काम करेंगे, परन्तु प्रत्येकको अपनी अपनी आवश्यकतानुसार सामग्रियां उपयोग करनेका अधिकार रहेगा।

"गोथा प्रोग्रामकी समालोचना" नामक ग्रन्थमें मार्क्सने लिखा है—'साम्य-वादी समाज अपने-आप आविर्भूत नहीं होता ; उसका विकास पूंजीवादी समाजसे ही होता है। फलतः आर्थिक, नैतिक और मानसिक दृष्टिसे इस समाजपर इसकी जन्मदातृ पूंजीवादी व्यवस्थाके चिन्ह अब तक शेष हैं। ......साम्यवादी समाजके प्रारम्भिक कालमें इन दुर्बलताओंसे मुक्ति पाना असम्भव है ; क्योंकि पूंजीवादी समाजसे ही इसकी उत्पत्ति हुई है।...... साम्यवादी समाजकी उन्नत अवस्थामें जब कि व्यक्तिका पूरा विकास हो

जायेगा और जब उत्पादन शक्तिका विस्तार हो जायेगा और जब सामाजिक सम्पत्ति झरनेकी धाराकी तरह वेगवती हो जायगी, केवल तभी पूंजीवादकी संकीर्ण सीमाका हम पूरी तौरसे उल्लंघन कर सकेंगे।" मार्क्सके इस कथनसे स्पष्ट है कि पूंजीवादी उत्पादन-रीतिका अकस्मात अन्त कर देनेसे ही साम्यवादी समाज कायम नहीं हो सकती। साम्यवादी सामाजिक व्यवस्था पूंजीवादी समाज के क्रान्तिके द्वारा या स्वयं मन्दगतिसे आविर्भूत होगी, और कुछ दिनों तक इन दोनों प्रकार की व्यवस्थाओंमें इतना सम्बन्ध रहेगा कि इनका पार्थक्य भी स्पष्टतः दिखाई नहीं देगा। एक समाजका अन्त होकर दूसरेके आविर्भावके सन्धिकालमें दोनों समाजका मिश्रण हो जायगा और वह तबतक कायम रहेगा जबतक कि पूंजीवादी समाजका चिन्ह तक लुप्त न हो जाय। मार्क्सने वास्तविकता का चित्र हमारे सामने उपस्थित किया है। परन्तु प्रश्न उठ सकता है कि पूंजीवादी व्यवस्था कबतक कायम रहेगी? इसका काल निर्णय करना असम्भव है; पूंजीवादी समाजकी अपने आदिमें उसकी प्रगति ही इसका निर्णय करेगी; लेकिन इतना कहा जा सकता है कि जब उत्पादन-शक्ति बढ़ेगी और सामाजिक सम्पत्तिकी वृद्धि होगी तब ही समाजवाद सम्भव हो सकता है, उसके पहले नहीं।

आधुनिक पूंजीवादी अर्थशास्त्रमें समाजवाद की चर्चा नहीं की गयी है; लेकिन यह तो बताया जाता है कि उत्पादनके लिए अधिक से अधिक पूंजी लगानी पड़ती है और इसको तबतक आगे रखना पड़ता है जबतक कि उत्पादनके साधनोंका परिमाण पर्याप्त न हो जाय। पूंजीवादी अर्थशास्त्र की भाषामें पूंजी-संचय और मार्क्स की भाषामें उत्पादन-वृद्धि यह दोनों शब्द पर्यायवाची हैं। इसीलिये [illegible] कहता है कि 'किफायत' [illegible] के भाव हैं। यदि हम ऐसा विचार करें कि [illegible] [illegible] हैं, और [illegible] [illegible]

उचित ध्यान देना पड़ेगा। मेरे विचार में समाजकी ओरसे उत्पादन साधनोंकी इतनी वृद्धि होनी चाहिए कि किसी भी समय उनकी कमी न आवे। यह समाजवादका वह स्तर है, जहांपर पूंजीवादी उत्पादन लुप्त हो जाता है। इस स्तरमें पूंजीवादी उत्पादनका इतना विस्तार हो चुका है, कि उत्पादन साधनोंका परिमाण अशेष बन जाता है। फिर इनसब साधनों को कितना ही उपयोगमें क्यों न लाया जाय, इनके परिमाणमे कमी नहीं पड़ेगी। समाजवादके केवल इस स्तरमें पहुँचने से ही उपभोग्य वस्तुएं प्रचुर मात्रामें उपलब्ध हो सकती हैं और प्रत्येक को उसकी आवश्यकतानुसार मिल सकती हैं।

भारतीय-जीवनमें समाजवाद की उपयोगिता—ऊपरके विश्लेषण से यह स्पष्ट हो रहा है कि समाजवाद समाजके आर्थिक विकासके एक विशेष स्तरमें सम्भव होता है और इसके लिए सबसे पहले उद्योग-धन्धोंका विस्तार होना आवश्यक है। भारतीय जीवनकी वर्तमान स्थितिमें समाजवाद उपयोगी होगा या नहीं इसके बारेमें निश्चय करनेके पहले हमें रूसी क्रान्तिकी शिक्षा से लाभ उठाना चाहिए। क्रान्तिके पहले रूसी आर्थिक स्थिति हमारी स्थितिसे कोई अच्छी नहीं थी। इसलिए लेनिनने जो समाज व्यवस्था स्थापित की थी वह समाजवाद न हो सका। मार्क्सके समाजवादी आदर्शोंका कुछ हिस्सा जोकि लेनिनतंत्रमें रह गया था वह भी नई आर्थिक नीतिके पश्चात् लुप्त हो गया। इसके बाद पंचवर्षीय आर्थिक योजना कार्यान्वित की गई। भोग सामग्रियां बनाने वाले उद्योग-धन्धों को इस योजनामें गौण स्थान दिया गया क्योंकि रूसके उत्पादन-साधन उस समय तक इतने गिरे हुए थे कि उन परिस्थितिमें भोग सामग्रियोंकी उत्पादनमें वृद्धि करनेमें थोड़ेसे दिनोंमें ही उत्पादनसाधनों का अन्त हो जाता। जिन अर्थशास्त्रियोंने भोग-सामग्री बनानेवाले उद्योगोंको अधिक महत्व दिया है, उन्होंने गलती की है। भोग-सामग्री बनाने वाले उद्योग तभी हमेशाके लिए कायम हो सकते हैं जबकि आर्थिक व्यवस्था उन्नत अवस्थामें हो और उत्पादन साधन

आवश्यकतानुसार बिना किसी रुकावटके बन सकते हों। इसके पहले अगर भोग-सामग्रियां बनानेकी कोशिश की जाय और उनपर अपनी सारी शक्तियें लगा दी जाय तो भी ये सदाके लिए नहीं बन सकतीं। आर्थिक विकास के एक विशेष स्तर तक उत्पादन साधन पैदा करने वाले उद्योगों को अधिक बढ़ाना पड़ेगा। उसके बाद इनके साथ साथ भोग-सामग्रियोंके उत्पादनमें वृद्धि करनी होगी। इस प्रकारसे आर्थिक विकासके एक विशेष स्तरके पश्चात् उत्पादन-साधन-उद्योगोंको बचानेके लिए ही भोग-व्यवहार बढ़ाना पड़ेगा लेकिन उस स्तर तक उत्पादन-साधन-उद्योगोंको ही अधिक महत्त्व देना होगा। भारतीय जीवनमें अभी तक उत्पादन-साधन-उद्योगोंकी प्रतिष्ठा नहीं हुई तथा भोग-सामग्रियां पैदा करनेवाले उद्योग-धन्धे भी काफी तादादमें नहीं हैं। इसलिए वर्तमान स्थितिमें आर्थिक समाजवाद हमारे लिए असम्भव है। यह तो तभी सम्भव हो सकता है जबकि अनेक उद्योग-धन्धे देशमें स्थापित हो चुके हों तथा उत्पादन साधन भी काफी तादादमें देशमें ही बनने लगें। इस स्तर तक हमें पूंजीवाद पर ही अवलम्बित रहना पड़ेगा, चाहे वह व्यक्तिगत पूंजीवाद हो और चाहे राष्ट्रीय पूंजीवाद। बहुतसे लोग आर्थिक व्यवस्थाके राष्ट्रीय करण को ही समाजवादी व्यवस्था समझते हैं लेकिन यह गलत है कारण जबतक पूंजीवादका पूर्ण विकास न होगा, जबतक उद्योग-धन्धे काफी तादादमें स्थापित न होंगे तबतक पूंजीवादकी उपयोगिता नष्ट न होगी एवं साथही साथ राष्ट्रीय नीतिपर पूंजीपतियोंका अधिकार बना हुआ रहेगा। इसलिए राष्ट्रीयकरण तथा समाजवाद एकार्थ बोधक नहीं हैं। पहले तो हमें आर्थिक विकास पर गंभीर ध्यान देना होगा। यह जब सम्भव होगा, देशमें जब यथेष्ट सामग्रियां पैदा होने लगेंगी तब अपने आप भोग व्यवहार बढ़ाने की बात सोचनी पड़ेगी। उस दिन समाजवाद रोकने पर भी न रुकेगा। उस दिन ही भारतीय जीवनमें समाजवादकी प्रतिष्ठा होगी, उस दिन पूंजीवाद अपने आप नष्ट हो जायेगा।

पारिभाषिक शब्द

Above par—निर्धारित मूल्यसे ऊपर, अंकित कीमतसे ऊपर, अधि मूल्य पर (वर्धा)।

Acceptance—स्वीकृति, मंजूरी

„ General—साधारण स्वीकृति या सकारना

„ for Honour—महाजनी रक्षाके लिए स्वीकृति

„ Qualified—विशेषित स्वीकृति, शर्तसहित सकारना।

Account, Capital—पूँजी खाता

„ Cash—रोकड़ खाता

„ Cost—लागत खाता

„ Current—चालू खाता

„ Deposit—अमानत खाता, जमा खाता

„ Fixed—स्थायी खाता

„ Sale—बिक्री खाता, बिक्री का हिसाब

„ Suspense—उचन्ती खाता

Advalorem duties—मूल्यानुसार कर

Allotment—(शेअरोंकी) बटनी, वितरण

Amalgamation—मिश्रण, एकीकरण, सम्मेलन

Annuity—वार्षिक वृत्ति (Consolidated)—ठोस, Deferred—स्थगित या विलम्बित, Perpetual—चिरस्थायी, Reversionary—उत्तराधिकार, Terminable—समाप्य या सावधि।)

Arbitrage—मध्यस्थ लाभ, अन्तर पणन (वर्धा)

Articles of Association—संघ नियमावली, कम्पनी के नियमादि, फर्मके अन्तर्नियम (बहु)

Assets—पूंजी, जायदाद, दौलत, सम्पत्ति (Fixed—स्थावर, Floating or Circulating—व्यावहारिक, अस्थायी या चल, Frozen—बद्ध, Intangible—अस्पर्श या अमूर्त, Tangible—मूर्त, Movable—अस्थावर।

At par—निर्धारित मूल्यानुसार, अंकित मूल्यपर

At Sight—दर्शनी, दर्शनोत्तर

Auctioneer—नीलाम करनेवाला

Average General—साधारण जहाजी नुकसान पर दावा।

" Particular—खास हानि, आकस्मिक दुर्घटनासे होने वाले जहाजी नुकसान पर दावा।

Aviation Civil—नागरिक उड्डयन विभाग

Backwardation—[illegible]

Balanced Economy—सन्तुलन या संतुलित अर्थव्यवस्था

Balance Favourable—व्यापारिक अनुकूल स्थिति

" of Payment—(विदेशियोंके साथ) आर्थिक लेन देनकी समानता

" " Trade—आयात-निर्यात की समानता, आयात-निर्यात सन्तुलन

" Sheet—तलपट, स्थिति-विवरण

Bank—बैंक, अधिकोष (बहु)। (Central—केन्द्रीय, Charge—बैंक की रकम या बैंक शुल्क, Credit—साख पर दिया हुआ कर्ज, Clearing—बैंकका निकास, Commercial—व्यापारमें कर्ज देने वाले या वाणिज्य बैंक, Exchange—विदेशी बैंक, Industrial—औद्योगिक बैंक, Joint Stock—सम्मिलित पूंजी बैंक, Private—निजी बैंक, Rate—केन्द्रीय बैंकका ब्याजदर, Scheduled—अंकित हुए बैंक)।

Bankers, Indigenous—साहूकार, महाजन, देशी बैंक व्यवसायी
Banking Crisis—बैंकके कारबारमें संकट
,, Nationalisation of—बैंकोंका राष्ट्रीयकरण
Bargaining, Collective—सम्मिलित सौदा, समूही विपणन (वर्धा), सामूहिक मोल भाव
Bear,—मन्दी वाला, मूल्यपाती (वर्धा)
Bilateralism—दो देशोंका परस्पर व्यापार
Bill, Accomodation—सिफारिशी हुन्डी, (Clean—खुली, Documentary—जोखमी, of Exchange हुन्डी, of Lading—बिल्टी,)।
Bimetallism—द्विधातुमुद्रा पद्धति
Blocked—रोका हुआ (सिक्का), रोकी हुई (रकम)
Board of Directors—संचालक मंडल
Body Corporate—अनुमोदन प्राप्त कम्पनी
Bond—बंधक पत्र, दस्तावेज, इकरारनामा
Bonded Warehouse—शुल्क बाकी रखनेको गुदाम। तिल पर
Bonus—अतिरिक्त लाभांश
Boom—तेजी, व्यापारिक धूम
Bottomary—जहाज गिरवी रखकर कर्ज देना
Brokerage—दलाली
Bucket Shop—जुआड़ियों की कोठी
Budget—आय व्ययका अन्दाजपत्र या सालाना ब्यौरा, बजट, आय-व्ययक (वर्धा)
Bull—तेजी वाला, मूल्यारोपी (वर्धा)
Bullion—सोने चांदी की सिल

Business Cycle—व्यापारिक चक्र

Business Organisation—व्यापार संगठन

By-product—छुटकारी या गौण द्रव्य

Call—शेयरों का शेष रुपया जमा कराने की मांग (Money—मंगनी रुपया, तत्काल चुकाये जाने योग्य रकम।)

Capital—रकम, पूँजी, मूलधन, (Authorised—अनुमोदित, Called up—मांगी हुई, Circulating—अस्थायी या फिरती हुई, Issued—जारी की हुई, Paid-up—प्रदत्त, Subscribed—खरीदी हुई, Watered—कृत्रिम या बनावटी, अतिपूँजी (करना), Working—कार्यशील, कार्यवाहक या चालू।)

Capitalisation—पूँजीकरण

Capitalism—पूँजीवाद

Cash Register—रोकड़ बही

Centralisation—केन्द्रीय करण

Certificate of Origin—उद्गम प्रमाण पत्र

Chamber of Commerce—व्यापारी मंडल

Cheap money—सस्ता ब्याज दर

Cheque—चेक, धनादेश (पत्र), (Ante-dated—पिछली तिथि, Bearer—धनी जोग, Marked—चिन्हित, Mutilated—फटी हुई, Order—शाहजोग, Post-dated—अगली तिथि, Stale—नष्ट।)

Clearing House—निपटारा केन्द्र, चेक शुद्धि भवन, समाशोधन गृह

Coinage—मुद्रण, टंकण (करना) Free—स्वच्छंद, (करना) Brassage—टकाई के खर्च शुल्क, Gratuitous—निःशुल्क, Seigniorage—टकाई के खर्च से अधिक खर्च शुल्क, मुद्रांकन)

Combination—एकीकरण, संयोजन, सम्मेलन, संयोग (वर्धा), Horizontal—एक ही प्रकार कारखानों का एकीकरण, क्षैतिज-संयोग (वर्धा), Vertical—शिल्पके विभिन्न कामोंका एकीकरण, उदग्र-संयोग (वर्धा ।)

Commercial Treaties—व्यापारिक संधियां

Company—कम्पनी, प्रमण्डल (वर्धा) : (Holding—सूत्रधारी, Limited—परिमित दायित्व, Promoter—मूलसंस्थापक, Public—सार्वजनिक लोक प्रमण्डल । (वर्धा)

Competition—प्रतियोगिता, स्पर्धा (Cutthroat—हानिकारक, कंठच्छेदी, Fair—उचित, Free—बाधाहीन, अबाध, Imperfect-बाधायुक्त, Perfect—शुद्ध, प्रतिस्पर्धा ।)

Concentration—समावेश, गुट्ट

Confirmed Banker's Credit—शाह-स्वीकृत-साख

Consideration—मुरव्वती (Money—साई, बयाना)

Consignee—माल पानेवाला, परेषणी (वर्धा)

Consignment—चलान, रवन्ना, परेषण (वर्धा)

Consignor—चालान करने या भेजनेवाला

Consular Invoice—राष्ट्र दूतके द्वारा जारी की हुई चालान

Consumer—उपभोक्ता, ग्राहक, (Consumption—उपभोग, खपत)

Contango—हरजाना, क्षति पूरण

Convertibility—विनिमय साध्यता, परिवर्त्तन योग्यता

Co-operative Credit Society—सहकारी कर्जदान समिति

Coparceners—भागीदार, हिस्सेदार, पांतीदार

Cornering of Market—बाजारको हाथमें या मुट्ठीमें करना

Cost—व्यय, खर्च, लागत (Free—मुफ्त, बिना लागत, of Living—रहन सहन का खर्च, Overhead—ऊपरी खर्च; Price—लागत मूल्य, Prime—प्रथम या प्रमुख लागत, Supplementary—ऊपरी लागत

Cottage Industries—गृह-उद्योग

Credit—जमा, साख, उधार, कर्ज प्रतिष्ठा, जमाखर्च (खाता)। Book,—कर्ज खाता, Control—कर्ज नियंत्रण, Creation—कर्ज सृष्टिकरण, Letter of—साखपत्र, Policy—कर्ज दान नीति Note—जमा की चिट्ठी, Sale—उधार पर बिक्री।)

Creditor—ऋणदाता, उत्तमर्ण (Judgement,—डिग्री के लेनदार)

Crisis—संकट (Commercial—व्यापारिक)

Crossing—रेखांकन, रेखन (चेक)। General—साधारण, Special—विशेष, Not negotiable—हस्तांतर रहित, अ-परक्राम्य (चेक)।

Cross Rate—विनिमय दर

Cultivation—कृषि (Extensive—विस्तृत, Intensive—गहन)

Currency—प्रचलित या चालू सिक्का, चलार्थ (पत्र)। (Depreciation—मूल्य ह्रास, Managed—राष्ट्र नियंत्रित मान प्रणाली,

Pegging—बाहरी मूल्य बांधना, Standard—मुद्रा मान

Cycle, Trade—व्यापार चक्र

Cypher Code—संकेत लिपि

Days of Grace—रियायती दिन

Death duty—मृत्यु कर

Debenture—ऋणपत्र, (Irredeemable—स्थायी या अशोध्य, Mortgage—बंधक, Redeemable—निश्चित या शोध्य

Debit Note—नामे खातेकी चिट्ठी

Debt—कर्ज, ऋण, उधार (Bad or Deadweight—अनादायी, External—विदेशी, Floating—अल्पकालीन या थोड़ी Conciliation—कर्ज समझौता, Consolidated—संघनित, Conversion—परिवर्त्तन या रूपांतर, Funded—दीर्घकालीन, स्थायी, Productive—सार्थक, Public—सरकारी, Redeemable—शोध्य ।)

Decimal System—दशमलव प्रणाली

Deficit Financing—आर्थिक कमी पूरी करने का प्रबन्ध, हीनार्थ प्रबन्धन (वर्धा)

Deflation—मुद्रा संकोचन, अपस्फीति

Demand—मांग, अभियाचन (वर्धा) । (Draft—दर्शनी हुण्डी)

Demonetisation—निमुद्रीकरण

Demurrage—(माल उठाने में) देरी या रुकावट का हर्जाना, विलम्बशुल्क

Deposit Account—अमानत खाता । (Fixed—मियादी या स्थायी जमा ।)

Depreciation—अपकर्ष, घिसावट

Depression—मन्दी

Devaluation—मुद्रा मूल्य ह्रासकरण, विनिमय दर घटाना

Deviation—विचलन

Discount—बट्टा (Discounting of a Bill—हुण्डी भुनाना)

Dishonour—नामंजूर करना, अस्वीकार करना

Discrimination—पक्षपात । (Discriminating Protection—शुल्क पक्षपात) ।

Disequilibrium—अस्थिति।

Disinflation—मुद्रा प्रसार सुधारना

Distribution—वितरण

Dividend—लाभांश (Cum-dividend—लाभांशसहित, Ex-dividend—लाभांश रहित।)

Draft—पैठनी हुण्डी, सरकारके पहले व्यापारिक हुण्डीको भी ड्राफ्ट कहते हैं।

Draw Back—वापस दी हुई महसूली रकम।

Dumping—लागत से कम मूल्य पर विदेश में बेचना।

Earmarked sum—निर्धारित रकम।

Effective charges—क्रियात्मक व्यय।

Elasticity of Demand—मांगकी लोच।

Endorsement—बेचान। (Blank—खाली या आपत्ति हीन, Facultative—इच्छाधीन, Restrictive—प्रतिबन्ध युक्त, Special—विशेष आदेश युक्त।)

Entrepreneur—उद्योगपति, जोखिम उठाने वाला

Equilibrium—स्थिति

Excess Profits Tax—अतिरिक्त मुनाफा कर

Excise duty—उत्पादन कर

Exchange Control—विदेश विनिमय दर नियंत्रण (Rate—विनिमय दर।)

Export—निर्यात

Ex-Right—अधिकार रहित

Factor of Production—उत्पादन साधन

Favourable balance of trade—अनुकूल वाणिज्य परिमाण

Fiat money—सरकारी हुक्मपर प्रचलित कागजी मुद्रा, अपरिवर्त्य कागजी मुद्रा।

Fiduciary issue—बगैर जमानतकी या विश्वासाश्रित कागजी मुद्रा।

Financial agreement—आर्थिक समझौता

Fire Insurance—अग्नि बीमा

Firm—कारबारी संस्था, व्यापारिक प्रतिष्ठान। (Equilibrium—स्थिति सूचक कारबारी संस्था, Optimum—सबसे बढ़ी हुई कारबारी संस्था, Representative—प्रतिनिधि कारबारी संस्था।)

Fiscal Policy—संरक्षण-राजस्वनीति।

Fluctuations, Cyclical (चक्राकार उत्थान-पतन)

Foreign exchange—विदेशी सिक्का विनिमय

Forward Contract—सौदा, Purchase, अगाऊ खरीद

Forwarding—माल भेजना

Free on Rail—रेलपर चढ़ने तक बिना व्यय

Freight—मालका किराया

Fund, Sinking—ऋण परिशोध कोष

Futures Market—मुद्दती सौदेका बाजार

Garnishee—रोकना, (Order—अदालत से रोकने का निर्देश, प्राधमर्ण-निर्देश (वर्धा), सुपुर्दगीदारके नाम अदालती हुक्म)

Geometrical Progression—असमान्तर गति

Gilt-edged Bill—उत्तम या साहूकारी हुन्डी।

Glut of Capital—पूँजी की भरमार, (of market—बाजारमें मालकी प्रचुरता।)

Gold Bullion Standard—स्वर्ण पिंडमान, (Currency Standard—स्वर्ण मुद्रामान, Exchange Standard—स्वर्ण-विनिमयमान, Stand Reserve—स्वर्ण-मान-कोष

Good, Economic—वाणिज्य या विनिमेय सम्पत्ति, (Will—
    नेकनामी, ख्याति, साख)

Graduated tax—वर्धमान कर

Handicraft—हस्त-उद्योग

Handsel—जमानत रकम, बयाना, साई

Hard Currency—दुर्लभ्य विदेशी वित्त

Hire Purchase System—किराया मूल्य-देय क्रय-व्यवस्था।

Holder in due course—नियमानुसार हुण्डी स्वामित्व

Holding uneconomic—बेमुनाफेका खेत, (Fragmentation
    and subdivision of—छोटे और बिखरे हुए खेत, Consoli-
    dation of—खेतोंकी चकबन्दी

Hydro-electricity—जलविद्युत, जलशक्ति

Hypothecation—बन्धक, (Letter of—बन्धक पत्र

Imperial preference—साम्राज्यान्तर्गत रियायत, साम्राज्यिक
    पक्षपात।

Impact of Taxes—कर संघात, करापात (पड़ना)

Incidence of Taxes—कर भार, करापात (पड़ना)

Income—आय, (Inequality of—आयकी असमानता, Natio-
    nal राष्ट्रीय, Per capita—प्रतिव्यक्ति आय।)

Incorporation—कम्पनी स्थापन या संघटन

Indebtedness, Rural—कृषि ऋण।

Indemnity—हर्जाना, बीमा, क्षतिपूरक।

Indent—पत्रादेश, आदेश (देना), माल भेजने की आज्ञा।

Index Number—सूचनांक, सूचक अंक।

Industrialisation—औद्योगिक विकास, औद्योगीकरण।

Inflation—स्फीति, मुद्रा प्रसार (Galloping—द्रुतस्फीति, Hyfer—अति स्फीति)

Insurance—बीमा

Investment—पूँजी-विनियोग ।

Invoice—बीजक

Kartell—विक्रय संघ, संयुक्त विक्रय व्यवस्था ।

Law of Diminishing Return—घटती उपज का नियम ।

" " " Utility—ह्रसमान उपयोगिता का नियम

" " Increasing Return—वर्धमान उत्पादन नियम ।

" " Marginal utility—सीमान्त उपयोगिता विधान ।

" " Total utility—कुल उपयोगिता का नियम ।

Letter of Credit—साखपत्र, of Indemnity—हर्जाना पत्र, क्षतिपूर्ति का पत्र ।

Liability—दायित्व, देनी, (Limited—परिमित दायित्व ।)

Liquidator—दिवालिओंका ऋण चुकाने का प्रबन्ध

Localisation of Industries—उद्योग धन्धोंका स्थानीय करण

Managing Agent—मैनेजिंग एजेन्ट, प्रधान प्रबन्धक, प्रबन्ध अभि-कर्त्ता (Director—प्रबन्ध संचालक ।)

Marginal—सीमान्त

Marine Insurance—जहाज़ी बीमा

Market rate of discount—बट्टा का बाजार दर

Memorandum of Association—कम्पनी का संगठनपत्र

Merger—व्यापार संघ

Mint price of bullion—धातुकी सरकारी कीमत

Mobility—गति शीलता

Money Convertible—(विनिमय साध्य मुद्रा, Token—सांके-तिक मुद्रा ।)

Monopoly—एकाधिकार, (Discriminating—भेदात्मक मूल्य)

Moratorium—कर्ज चुकाने को बढ़ी हुई मियाद

Most-Favoured-Nation (M. F. N.) Clause—विशेष अनुग्रह व्यापारिक धारा

Negotiable instruments—विनिमय साध्य या हस्तांतर योग्य कागज या दस्तावेज

Nationalisation—राष्ट्रीयकरण

Notary Public—नामंजूर की गई हुण्डी को तसदीक करने वाला अफसर ।

Noting—नामंजूर की गई हुण्डी को तसदीक कराना ।

Optimum—अनुकूलतम, पूर्णतम, सर्वोत्तम ।

Option deal—तेजी मंदी का व्यापार ।

Overcapitalisation—अधिक पूँजी विनियोग, अतिपूँजीकरण (करना)

Overdraft—अमानतातिरिक्त कर्ज

Overhead Charges—ऊपरी खर्च (Costs—ऊपरी लागत)

Owner's Risk—मालिक की जोखिम

Partition Economics—विभाजन का अर्थशास्त्र

Partnership—साझेदारी (Agreement—साझेदारी का समझौता पत्र

Permanent settlement—स्थायी बन्दोबस्त ।

Planning, Economic—आर्थिक योजना

Power of Attorney—मुख्तारनामा

Price—कीमत, मूल्य, (Ceiling—उच्चतम मूल्य, Floor—निम्न दर, Level—मूल्यस्तर ।)

Principle of Substitution—बदल सिद्धान्त
Produce Exchange—उपज का सट्टा-बाजार
Profiteer—मुनाफा खोर
Profit Sharing—नफ़ा बांटना
Progressive taxation—वर्धनशील कर
Prospectus—परिचायक पत्र, विवरण पत्र
Protective tariff—शिल्प संरक्षण शुल्क
Public ownership—(उद्योगपर) राष्ट्रीय कर्तृत्व ।
Purchasing Power Parity theory—(सिक्का विनिमय दरमें) क्रयशक्ति की समता सिद्धान्त ।
Quantity theory of money—(क्रयशक्ति के बारेमें) सिक्केका परिमाण विषयक सिद्धांत
Quota System—अंश निर्देश व्यवस्था, आयात नियंत्रण व्यवस्था
Rate of Exchange—विनिमय दर
Reciprocity—परस्पर बाध्यता
Reflation—नियंत्रिय मुद्रास्फीति
Ring—जहाजी कारवारिओंका गुट्ट
Rural reconstruction—ग्रामोद्धार, गांव सुधार
Sans recourse—दायित्व रहित
Scientific management—वैज्ञानिक परिचालन या संचालन
Security—तमस्सुक, जमानत
Shares, Debenture—ऋणसूचक हिस्सा या शेयर, (Deferred—विलम्बित हिस्सा, मुद्दती शेअर, Preference—रिआयती शेअर ।)
Single Standard—एक मुद्रा पद्धति
Sliding Scale—न्यूनाधिक क्रम

Specimen Signature—नमूनेका दस्तखत
Speculation—सट्टा
Subsidy—सरकारी मदद
Surrender value—छोड़ने पर बीमाका मूल्य
Stock exchange—हिस्सा बाजार
Tenancy Legislation—किसानी अधिकार संरक्षण कानून
Textile Protection Bill—वस्त्र संरक्षण बिल
Trade discount—दस्तूरी, कमीशन, (Union—मज़दूर संघ)
Trial balance—कच्चा चिट्ठा
Utility, Marginal—सीमांत उपयोगिता
Underwriting—हिस्से या बीमाका जिम्मा लेना
Wages, Piece—कामके हिसाब से मजदूरी, (Time—समयके हिसाब से।)
Warehouse, Bonded—चुङ्गीके लिए माल रोकने का गुदाम
Wear & tear—घिसावट
Wholelife assurance policy—आजीवन बीमा पत्र।